ISSN-0971-8397

विशेषांक

योजना

अक्टूबर 2014 विकास को समर्पित मासिक ₹ 20

असंगठित क्षेत्र

भारतीय असंगठित अर्थव्यवस्था की भूमिका
बारबरा हैरिस-व्हाइट

असंगठित क्षेत्र और लोकविद्या
अमित बसोले

गंगा स्वच्छता
आस्था, आजीविका व पारिस्थितिकी के सवाल
सुभाष शर्मा

विशेष आलेख
आर्थिक समावेशन की राह: प्रधानमंत्री जन धन योजना
प्रभाकर साहू

फोकस
गाँधी और स्वच्छता
सुदर्शन अय्यंगार

मुक्त विद्यालय-छुए मन, बदले जीवन

आओ पढ़ें! आगे बढ़ें!

अपनी शिक्षा आगे बढ़ायें...
मुक्त विद्यालय को अपनायें

पाठ्यक्रम	प्रवेश शुल्क (बिना विलम्ब)			प्रवेश के लिए तिथियां
	पुरुष	महिलायें	छूट प्राप्त वर्ग	
• मुक्त बेसिक शिक्षा कक्षा-III, V एवं VIII	–	–	–	30 जून (प्रत्येक वर्ष)
• सेकेण्डरी (कक्षा - X) (i) पाँच विषयों के लिए (ii) प्रत्येक अतिरिक्त विषय के लिए	₹ 1350 ₹ 200	₹ 1100 ₹ 200	₹ 900 ₹ 200	ब्लाक-1 : 16 मार्च-31 जुलाई (बिना विलम्ब शुल्क) 1 अगस्त-15 सितम्बर (विलम्ब शुल्क के साथ) ब्लाक-2 : 16 सितम्बर-31 जनवरी (बिना विलम्ब शुल्क) 1 फरवरी-15 मार्च (विलम्ब शुल्क के साथ)
• सीनियर सेकेण्डरी (कक्षा - XII) (i) पाँच विषयों के लिए (ii) प्रत्येक अतिरिक्त विषय के लिए	₹ 1500 ₹ 230	₹ 1250 ₹ 230	₹ 975 ₹ 230	ब्लाक-1 : 16 मार्च-31 जुलाई (बिना विलम्ब शुल्क) 1 अगस्त-15 सितम्बर (विलम्ब शुल्क के साथ) ब्लाक-2 : 16 सितम्बर-31 जनवरी (बिना विलम्ब शुल्क) 1 फरवरी-15 मार्च (विलम्ब शुल्क के साथ)
• व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम (6 माह से 2 वर्ष)	पाठ्यक्रमों एवं अवधि के आधार पर			सत्र - 1 : 30 जून (प्रत्येक वर्ष) सत्र - 2 : 31 दिसम्बर (प्रत्येक वर्ष)

प्रवेश के लिए अपने निकटतम अध्ययन केंद्र अथवा संबंधित क्षेत्रीय कार्यालय में संपर्क करें।
विलम्ब शुल्क, अध्ययन केंद्रों, क्षेत्रीय कार्यालयों आदि की विस्तृत जानकारी के लिए वेबसाइट www.nios.ac.in देखें।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार का एक स्वायत्त संस्थान)

ए-24/25, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर-62, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर (उ.प्र.)

टोल फ्री नं. 1800-180-9393; ईमेल : lsc@nios.ac.in वेबसाइट : www.nios.ac.in

विश्व की सबसे बड़ी मुक्त विद्यालयी शिक्षा प्रणाली

योजना

वर्ष 58 ● अंक 10 ● अक्टूबर 2014 ● आश्विन-कार्तिक, शक संवत 1936 ● कुल पृष्ठ 80

प्रधान संपादक
राजेश कुमार झा

संपादक
जय सिंह
ऋतेश पाठक

संपादकीय कार्यालय
538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष: 23717910, 23096738
टेलीफैक्स: 23359578
ईमेल: yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट: www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
http://www.facebook.com/योजनाहिंदी

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
वी. के. मीणा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा

दूरभाष: 26100207
फैक्स: 26175516
ईमेल: pdjucir@gmail.com

आवरण: **जी. पी. धोपे**

इस अंक में

संपादकीय	-	5
भारतीय असंगठित अर्थव्यवस्था की भूमिका	बारबरा हैरिस व्हाइट	6
अनौपचारिक क्षेत्र और लोकविद्या	अमित बसोले	11
उद्यमिता को प्रोत्साहन के साथ हो आर्थिक समावेशन	शिशिर कुमार	15
विशेष आलेख		
आर्थिक समावेशन की राह: प्रधानमंत्री जन धन योजना	प्रभाकर साहू	19
फोकस		
गांधीजी और स्वच्छता	सुदर्शन अय्यंगार	23
देशज कॉल सेंटर में रोजगार असुरक्षा	बाबू पी रमेश	27
हाशिए से उठकर अर्थव्यवस्था का केन्द्र बनने की क्षमता	प्रवीण शुक्ला	31
गंगा स्वच्छता		
आस्था, आजीविका और पारिस्थितिकी के सवाल	सुभाष शर्मा	40
रेहड़ी पटरी कारोबारियों को कानूनी संरक्षण की पहल	विनोद कुमार	45
पलायन, महिलाएं और असंगठित क्षेत्र	नीता एन	49
टीएफए पर क्या हो भारत का निर्णय?	नीलाब्ज घोष	53
स्वावलंबन का सहज पथ	चैतन्य प्रकाश	57
असंगठित क्षेत्र: समस्याएं एवं कानूनी उपचार	अमित त्यागी	61
क्या आप जानते हैं	-	65
अंसगठित क्षेत्र में महिला कामगारों की स्थिति	सुभाष सेतिया	66
पलायन: मजबूरी या सहारा	तरुण कुमार शर्मा	69
सामाजिक-आर्थिक वितरण में समानता जरुरी	सत्य प्रकाश	73

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें। व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड IV, तल VII, आर. के. पुरम, नयी दिल्ली-66 दूरभाष: 26100207, 26105590

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं: सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष: 24367260, 5610), हाल सं, 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष: 23890205) *701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष: 27570686) *8, एसप्लानेड, ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष: 22488030), *'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष: 24917673) *प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुअनंतपुरम-695001 (दूरभाष: 2330650) *ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष: 24605383) *फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष: 25537244) *बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष: 2683407) *हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-एच, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष: 2225455) *अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर अहमदाबाद-380007 (दूरभाष: 26588669) के. के. बी. रोड, नयी कॉलोनी, कमान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष: 2665090)

चंदे की दरें: वार्षिक: ₹ 100 द्विवार्षिक: ₹ 180, त्रैवार्षिक: ₹ 250, विदेशों में वार्षिक दरें: पड़ोसी देश: ₹ 530, यूरोपीय एवं अन्य देश: ₹ 730

योजना का लक्ष्य देश के आर्थिक विकास से संबंधित मुद्दों का सरकारी नीतियों के व्यापक संदर्भ में गहराई से विश्लेषण कर इन पर विमर्श के लिए एक जीवंत मंच उपलब्ध कराना है। योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए योजना उत्तरदायी नहीं है।

आपकी राय

रोजगारोन्मुखी अर्थव्यवस्था की दरकार

विगत कुछ वर्षों से मैं 'योजना' का नियमित रूप से अध्ययन करता रहा हूँ। मुझे इसके प्रत्येक अंक का बड़ी बेसब्री से इंतजार रहता है। केन्द्रीय बजट 2014-15 पर आधरित योजना का अगस्त 2014 अंक पढ़ा इसमें बजट से सम्बंधित तमाम महत्वपूर्ण पहलुओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श और चर्चा करते हुए विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी है।

भारतीय अर्थव्यवस्था आज विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुकी है। इस क्रम में अमेरिका आज भी पहले स्थान पर काबिज है जबकि दूसरे स्थान पर चीन का कब्जा है। भारतीय अर्थव्यवस्था को नई सरकार का काफी उम्मीदें है। इस कड़ी में केन्द्र में पूर्ण बहुमत वाली एक स्थायी सरकार का गठन सबसे अनिवार्य शर्त है। जिस पर मोदी सरकार खरा उतरती है।

जैसा हम सभी जानते हैं कि पिछले कुछ वर्षों में भारत की आर्थिक विकास की गति मंद पड़ी है। जिसका मुख्य कारण विश्व बाजार में रुपये की बढ़ती साख, विनिर्माण क्षेत्रों की अनदेखी विदेशी पूंजी का अभाव, औद्योगिक घरानों का उदासीन रवैया, श्रम साधनों व प्राकृतिक संसाधनों के बीच सामन्जस्य की कमी, सुदृढ़ मानकों का निम्न स्तर, पर्यावरणीय एवं जलवाष्पीय असंतुलन तथा आर्थिक योजनाओं तथा नीतियों के कार्यान्वयन को लेकर नौकरशाहों में सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, कर्मपरायणता, कर्त्तव्यबोध, दृढ़संकल्प की कमी और आर्थिक विकास के प्रति उनका अलगाववादी अपेक्षित नजरिया आदि कुछ ऐसे द्रष्टव्य कारक हैं जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वर्णिम भविष्य के मार्ग में सबसे ज्यादा संकट पैदा करते हैं। लगभग एक दशक बाद जनता के विश्वास पर खरा उतरने के वायदे के बलबूते व्यापक जनादेश लेकर आयी सरकार देश की अर्थव्यवस्था को नयी ऊंचाइयों पर ले जाने रोजगारपरक आर्थिक नितियों के संचालन और वित्तीय अनियमितताओं जैसी शिकायतों से निपटने के लिए प्रणबद्ध है और आशय सम्बन्धित मंत्रालयों, विभिन्न जांच समितियों, योजना आयोग व नीति नियंताओं को समस्त दिशा-निर्देश जारी किये जा चुके हैं। विभिन्न आर्थिक परियोजनाओं के समय पर पूरा नहीं हो पाने की स्थिति में देश का आर्थिक भविष्य तो चौपट होता ही है साथ ही अर्थव्यवस्था संकटपूर्ण दौर से गुजरते हुए बदहाली के कगार तक पहुंच जाती है जैसा कि पिछली सरकार के कार्यकाल में हमें देखने को मिला।

भारतीय अर्थव्यवस्था अभी भी अनेक प्रकार की शंकाओं से ग्रस्त है। अमूमन इसका तात्पर्य आर्थिक विकास के सन्दर्भ में वित्तीय सुदृढ़ीकरण रोजगारोन्मुख कौशल विकास सार्वजनिक निजी भागीदारी मानकों की विश्वसनीयता नीतियां तथा उनका क्रियान्वयन, राजस्व वृद्धि और राजकोषीय घाटे में कमी से सम्बद्ध है।

केन्द्रीय बजट 2014-15 में की गयी घोषणाओं पर यदि हम विचार करें तो रोजगार बहुल क्षेत्रों की संरचना बहुत हद तक निजी निवेश के दायरे में सिमटती प्रतीत होती है और तब यह प्रश्न उठाना लाजिमी ही है कि एफडीआई की सीमा में वृद्धि को लेकर बजट में किये गये प्रावधनों से देश की अर्थव्यवस्था कैसे और किस हद तक सुदृढ़ बन सकती है? आगे इसका सकल घरेलू उत्पाद पर क्या असर पड़ेगा? इससे देश के युवाओं को रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो सकेंगे या नहीं? तथा सबसे अहम व्यवहारिक तौर पर आम जनता के हितों के मद्देनजर मंहगाई कम करने में यह किस प्रकार सहायक है? देश में आज भी रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध न होने के कारण युवाओं का यहां से बदस्तूर पलायन जारी है। इसे रोकने के लिए सरकार को अपनी आर्थिक नीतियों को निर्धारित करते समय रोजगारोन्मुखी आर्थिक विकास व युवाओं के हित के सान्निध्य उनके लिए देश में ही रोजगार के पर्याप्त अवसर सुनिश्चित करते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था के ढांचे के सुदृढ़ीकरण को लेकर समुचित प्रयास करना होगा और इसके लिए सरकार द्वारा बदलते आर्थिक परिदृश्य में अपने लक्ष्य व प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए ताकि पर्याप्त मात्रा में रोजगार का संचय किया जा सके।

राकेश रंजन, 127 बी, गौतमनगर
नयी दिल्ली-49

उपयोगी पत्रिका आकर्षक अंक

मैं योजना का तीन वर्षों से नियमित पाठक हूं। जुलाई अंक बहुत ही आकर्षक लगा, जिसमें लोकसभा चुनाव 2014 के परिणामों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। ''चुनाव बनाम अपराधीकरण'' आलेख विशेष रूप से आकर्षक था, जिसमें विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

योजना में हमें सरकार द्वारा चलायी जा

रही लाभप्रद योजनाओं के बारे में जानकारी मिलती रहती है।

अवनीश कुमार
चित्रकूट (उ. प्र.)

दमदार प्रस्तुति

पत्रिका में इस बार के संपादकीय में जनता का अधिकार है शीर्षक से बड़ी ही सादगी से एक शासक और प्रजा के बीच अवरोध बने तत्वों को सामने लाकर उनके निराकरण के उपाय बताये गये जो सराहनीय हैं। आपने सही लिखा है कि मर्ज गंभीर और पुराना है इससे निजात पाने के लिए अपने नैतिक आत्मबल का प्रयोग दवा के रूप में करना जरूरी है भले ही दवा कड़वी क्यों न हो। इस अंक में 'चुनाव सुधार का अतीत और भविष्य' 'चुनाव बनाम अपराधीकरण' तथा 'जनमत और चुनावी नतीजों का फर्क' भी दमदार प्रस्तुति है।

छैल बिहारी शर्मा इन्द्र
छाता उ.प्र.

उपेक्षित क्यों है उत्तराखंड

मैंने अगस्त माह की 'योजना' पत्रिका पढ़ी जो बजट विशेषांक थी। जिसे पढ़कर आम बजट व रेल बजट सम्बंधी काफी सारी और महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त हुई।

हर वर्ष इतना भारी भरकम बजट निकलता है लेकिन उत्तराखंड को हर बार कुछ खास नहीं मिलता। इस बार भी रेल बजट में कुछ खास बात उत्तराखंड के लिये नहीं दिखी। इक्का दुक्का ट्रेन राज्य को मिली। टनकपुर बागेश्वर रेल लाइन के लिए कुछ भी नहीं किया गया।

उत्तराखण्ड में स्वास्थ्य सुविधाओं का बुरा हाल है। अस्पतालों, पीएचसी, सीएचसी किसी में भी स्टाफ पूरा नहीं है। डॉक्टर पहाड़ पर ड्यूटी करने को तैयार नहीं हैं। पोस्टिंग होने पर छुट्टी लेकर गांव जाते हैं। पिछले दिनों नैनीताल जिले की खैरना सीएचसी में स्थिति अस्पताल में छापा पड़ा तो वहां छः डॉक्टर काम से गायब पाये गये। रोगियों का जमावड़ा लगा था। जब पीपीपी मोड पर चल रहे चिकित्सालयों का यह हाल है, तो सरकारी चिकित्सालयों की क्या दशा होगी? इसका अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है। उत्तराखंड में कई ऐसे स्वास्थ्य केन्द्र हैं जो कि केवल वार्ड संख्याओं के भरोसे ही छोड़ रखे हैं। या फिर इक्का दुक्का डॉक्टरों के भरोसे चल रहे हैं। पहाड़ी क्षेत्रों के लिए स्वास्थ्य सुविधा बेहतर करने के लिए बजट में विशेष ध्यान देना चाहिए।

शिक्षा के क्षेत्र में उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों के गर्म इलाकों का बुरा हाल है। कई भवनों की हालत जर्जर है, शौचालयों की ठीक व्यवस्था नहीं है, पीने के पानी की ठीक व्यवस्था नहीं है, कई टीचर समय पर नहीं आते हैं। गिनती के टीचरों के भरोसे स्कूल चल रहे हैं।

पहाड़ों पर स्वास्थ्य सुविधा, शिक्षा व्यवस्था, पेयजल व्यवस्था, परिवहन व्यवस्था सभी का बुरा हाल है। उत्तराखंड बनने के बाद भी कोई खास सुधार नहीं हुआ है। गांव में ना तो लाईट है, ना ही सड़क है, ना ही स्वास्थ्य व्यवस्था। सोलर लाइट के भरोसे काम चलता है। उसी से मोबाइल फोन चार्ज होते हैं। मोबाइल सिग्नल भी कभी आते हैं कभी नहीं आते हैं। सरकारें बड़े-बड़े दावे तो करती हैं, परन्तु उन दावों की हकीकत जैसे गांवों में ही देखने को मिलती है।

महेन्द्र पताप सिंह
मेहरा गांव अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

स्वतंत्रता सेनानियों पर हो एक अंक

भारतीय स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त 2014 के समुपलक्ष्य में हार्दिक अभिनन्दन एवं शुभकामनाएं।

कहने को अब रहा नाम आजादी का पर्व,
लोकतंत्र की हत्या होती, सच को कुचला जाए,
संसद तक आवाज कभी भी पहुंच नही है पाए,
करें बताओ नई सदी में किस पर जी भर गर्व?

अतः भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सभी अमर शहीदों को सतत नमन करते हुए योजना हिंदी मासिक में भारतीय स्वतंत्रता के अनगिनत वीर-वीरांगनाओं पर एक विशेषांक अवश्य प्रकाशित करें।

खुशहाल सिंह कोली
फतेहपुर सीकरी, उ. प्र.

राष्ट्रहित में बजट का महत्व

अगस्त 2014 की 'योजना' पत्रिका पढ़ी जिसमें बजट से संबंधित काफी महत्वपूर्ण जानकारियां दी गई थीं। मैं योजना का नियमित पाठक हूं। बजट विशेषांक मुझे बेहद पसंद आया।

बजट राष्ट्र रूपी शरीर के लिए ऑक्सीजन रूपी तत्व की तरह है क्योंकि किसी भी राष्ट्र की रूप-रेखा बजट के आधार पर ही निर्भर होती है। बजट वैसे आईना की तरह होता है जिसमें राष्ट्र संचालक की मंशा और योजनाएं स्पष्ट दिखाई देती हैं। सत्र 2014-15 के बजट प्रस्तावों में 5,75,000 करोड़ रुपये के योजना व्यय का प्रावधान रखा गया है जो पूर्ववर्ती बजट से 20.9 प्रतिशत ज्यादा है। इस बजट में कुल राजस्व प्राप्तियां 11,89,763 करोड़ रहने का अनुमान लगाया गया है। इस प्रकार से राजस्व घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 2.9 प्रतिशत है। जनगणना 2011 के अनुसार 25 से 30 वर्ष के आयु वाले वर्ग लगभग 4.7 करोड़ युवा बेरोजगार है लेकिन इस बजटीय प्रस्ताव में इस मसले पर विशेष दृष्टिपात न करके लघु एवं कुटीर उद्योग के लिए प्रावधान किया गया है, जो कहीं न कहीं रोजगार सृजन में बजटीय उदासीनता दिखाई देती है। हमारे देश की जीडीपी में कृषि का हिस्सा 25 प्रतिशत से घटकर 13.5 प्रतिशत पर आ गया है जो राष्ट्रीय अस्वस्थता का संकेत माना जा रहा है। वही सेवाओं का हिस्सा 60 प्रतिशत के आस-पास पहुंच गया है।

मंहगाई के दलदल में बजट ने एक अच्छी खुशी दी कि नए कर लगाकर बोझ बढ़ाने का प्रस्ताव नहीं हुआ तथा खर्च की गति को थामते हुए राजकोषीय घाटे को जीडीपी के 4.1 प्रतिशत पर सीमित रखने का संकल्प लिया गया। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के लिए 21912 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है शिक्षा पर 83771 करोड़ रुपये का भी प्रावधान किया गया है। जो पिछले साल से 12.13 प्रतिशत अधिक है। इससे पता चलता है कि बजटीय प्रस्ताव (2014-15) जनहित के पक्ष में है। राष्ट्रीय समावेशी विकास के लिए बजट को और सुदृढ़ बनाया जाए ताकि हमारा राष्ट्र विकसित हो सके।

नीरज कुमार आजाद (शिक्षक)
टिकारी, गया (बिहार)

IGNITED MINDS IAS

इस वर्ष हमारे द्वारा प्रशिक्षित कुल 22 चयन, दर्शनशास्त्र एवं एथिक्स (हिन्दी/अंग्रेजी माध्यम)

2014

शीतला पटले	Rank 22	डॉ. चिंतन पटेल	Rank 496	डॉ. राहुल परमार	Rank 767
मनुज गोयल	Rank 71	विशाल हर्ष	Rank 592	ओमप्रकाश मीना	Rank 866
निधि तिवारी	Rank 96	डॉ. अखिल नैयर	Rank 623	विमल शाह	Rank 979
डॉ. पर्थराज गोहिल	Rank 126	केतन गजार	Rank 658	विजय कु. यादव	Rank 1055
राजा बांथिया	Rank 149	श्यामलाल रेघर	Rank 696	सुधम्बिका आर	Rank 1061
डॉ दिव्यांग पटेल	Rank 205	धीरज कुमार	Rank 711	नाथाभाई नानगस	Rank 1107
अनिल रानावासिया	Rank 434	अक्षय मकवाना	Rank 740	अमित वासव	Rank 1110

नीतिशास्त्र सत्यनिष्ठा एवं अभिरूचि

एथिक्स

द्वारा v fer dqekj flg

एथिक्स के वास्तविक विशेषज्ञ जो दिल्ली विश्वविद्यालय में एथिक्स पढ़ा चुके हैं

दिल्ली केन्द्र
दो दिवसीय निःशुल्क कार्यशाला के साथ नया बैच प्रारम्भ
11 vDVwcj **4.00** PM

इलाहाबाद केन्द्र
दो दिवसीय निःशुल्क कार्यशाला के साथ नया बैच प्रारम्भ
5 vDVwcj **6.30** PM

पिछले वर्ष हमारे द्वारा एथिक्स में प्रशिक्षित 66 विद्यार्थियों ने सिविल सेवा मुख्य परीक्षा में भाग लिया, इनमें से

11 को 100+ अंक
22 को 90+ अंक
32 को 80+ अंक

100+ प्राप्त करने वाले अभ्यर्थियों के एथिक्स में अंक

डॉ. दिव्यांग पटेल	112	महेन्द्र देसाई	105
अनिल रानावासिया	112	भावेश धनानी	105
डॉ. राहुल परमार	110	डॉ. पर्थराज गोहिल	103
डॉ. अनिल थामेलिया	107	आशा गौड	101
प्रदीप	106	व्योमेश सेठ	101
		डॉ. कुरनाल राठौर	100

हिन्दी माध्यम में कोई भी संस्थान या शिक्षक यदि एथिक्स के विशेषज्ञ होने का दावा करता है, तो आपने पिछले वर्ष जिन विद्यार्थियों को पढ़ाया है उनके अंक छापिये। आखिर विद्यार्थियों को भी पता चलना चाहिये कि इतने बड़े-बड़े दावे करने वाले संस्थान का परीक्षा परिणाम क्या है?

(दर्शनशास्त्र का पूरा पाठ्यक्रम स्वयं पढ़ाने वाले शिक्षक)

दर्शनशास्त्र

द्वारा v fer dqekj flg

दर्शनशास्त्र के एकमात्र शिक्षक जिन्होंने पिछले पाँच वर्षों के सभी हिन्दी माध्यम के टॉपर्स को पढ़ाया है।

दिल्ली केन्द्र
दो दिवसीय निःशुल्क कार्यशाला के साथ नया बैच प्रारम्भ
11 vDVwcj **6.30** PM

इलाहाबाद केन्द्र
दो दिवसीय निःशुल्क कार्यशाला के साथ नया बैच प्रारम्भ
5 vDVwcj **4.00** PM

पिछले पाँच वर्षों के सर्वोच्च अंक एवं रैंक (हिन्दी माध्यम) प्राप्तकर्त्ता हमारे संस्थान से

विशाल मलानी	– 378	(2009)	कर्मवीर शर्मा	– 28
कर्मवीर शर्मा	– 371	(2010)	शिवसहाय अवस्थी	– 34
अमर बहादुर	– 377	(2011)	मिथिलेश मिश्र	– 46
सुजाता	– 362	(2012)	प्रियंका निरंजन	– 20
मनोज कुमार	– 305	(2013)	धर्मेन्द्र कुमार	– 25
गौरव भारील	– 308	(2013)		

खुली चुनौती
दर्शनशास्त्र पढ़ाने वाले किसी भी संस्थान को हमारी खुली चुनौती है कि यदि वह दर्शनशास्त्र का श्रेष्ठ संस्थान होने का दावा करता है तो उपर्युक्त तालिका में दिये गए अंकों से बेहतर अंक प्रस्तुत करके दिखायें। दर्शनशास्त्र ही नहीं किसी अन्य विषय में लगातार पाँच वर्षों में किसी एक ही संस्थान के विद्यार्थी को किसी विषय में सर्वोच्च अंक आये हों, ऐसा दूसरा उदाहरण आपको नहीं मिलेगा। यह दिखाता है कि सभी वैकल्पिक विषय पढ़ाने वाले संस्थानों में भी हम सर्वश्रेष्ठ है।

Only Delhi Centre

TEST SERIES

ETHICS G.S. VI Paper (अंग्रेजी/ हिन्दी माध्यम)

प्रारम्भ **5** vDVwcj **11.00** AM

केवल 4 टेस्ट
कुल 75 सीट
नामांकन जारी

PHILOSOPHY अंग्रेजी हिन्दी माध्यम

प्रारम्भ **5** vDVwcj **11.00** AM

केवल 4 टेस्ट
कुल 75 सीट
नामांकन जारी

CRASH COURSE + Q.I.P

11 प्रारम्भ vDVwcj **9.00** AM

10 दिवसीय

इस कार्यक्रम में **अवधारणात्मक** कक्षाओं के साथ **केस स्टडी** हल कराने का तरीका और **उत्तर लेखन अभ्यास** भी सिखाया जायेगा।

11 प्रारम्भ vDVwcj **11.00** AM

15 दिवसीय

1. दर्शनशास्त्र के प्रत्येक खण्ड पर अवधारणात्मक कक्षाएें
2. इस वर्ष के लिए सम्भावित प्रश्न 3. उत्तर लेखन अभ्यास कार्यक्रम।

Delhi Centre :- Mukherji Nagar, Delhi-09
PH. 08744082373, 09643760414, 011-27654704

ALLD. CENTRE :- H-1 , First Floor, Madho Kunj, Katra, Alld.
Ph. 09389376518, 09793022444

website : www.ignitedmindsias.com

YH - 187/2014

संपादकीय

भारत निर्माता के प्रति

सबेरे-सबेरे दरवाज़े की घंटी बजती है। अख़बारवाला अख़बार का बंडल फेंकता हुआ तेजी से निकल जाता है। हम जल्दी-जल्दी तैयार होते हैं और अपने अपने कार्यालय, कारख़ाने या दुकान जाने के लिए रिक्शा, ऑटो या बस पकड़ने निकल जाते हैं। अपने कार्यस्थल पर पहुंचकर हम पाते हैं कि चौकीदार सम्मानपूर्वक हमारे कार्यस्थल की सुरक्षा में लगा हुआ है और सफाईकर्मी भी अपने कार्यों को बख़ूबी अंजाम दे रहे हैं। एक ठेठ सरकारी कार्यालय में हम अपने साथ काम करने वाले निजी स्टाफ और सहयोगियों से मिलते हैं। इन सभी तरह के कामगारों, अखबारवाला, ऑटो ड्राइवर या बस ड्राइवर, रिक्शेवाला, चौकीदार, अरदलियों, सफाईकर्मियों, कंप्यूटर संचालकों के बीच एक समानता है, और वह है इन सभी का असंगठित क्षेत्र से संबद्ध होना। सही मायने में, चाहे वह रोज़गार से सम्बन्धित हो या फिर जीवन से जुड़ा हुआ कोई भी पक्ष हो, असंगठित क्षेत्र हमारी सबसे बड़ी सचाई है। हालांकि अपनी संरचना में बहुआयामी इस सेक्टर के महत्व को हम नज़रअंदाज़ करते हैं और कमतर आंकते हैं।

असंगठित क्षेत्र की अवधारणा घाना में कार्यरत ब्रिटिश मानववैज्ञानिक कीथ हार्ट के अध्ययन से निकली है। इसके बाद 1970 के दशक में आईएलओ ने इस अवधारणा में सम्मानीय कार्य का अवयव समाहित किया और फिर काम के अधिकार, कार्य करने वालों के अधिकार, श्रम संगठनों के अधिकार और सामाजिक सुरक्षा के अधिकार भी इस अवधारणा के साथ संलग्न होते गए लेकिन कुछ विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि 'असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र' की अवधारणा को सिर्फ़ आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित रखना ठीक नहीं है। सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर यह अवधारणा अपने निहितार्थ में अत्यंत व्यापक है। इसका केवल आर्थिक विश्लेषण समाज के अंदर व्याप्त 'अनौपचारिक' वास्तविकता के एक महत्वपूर्ण दायरे की अनदेखी करता है।

'असंगठित श्रेणी एक व्यापक अवधारणा है, जिसका तात्पर्य सामाजिक रूप से बेहद महत्वपूर्ण उन कार्यों से है जो औपचारिक निगरानी और नियामक ढांचे के बाहर आते हैं।' उदाहरणस्वरूप, बिना आर्थिक लेनदेन के संपन्न किए जाने वाले पारिवारिक कार्य आर्थिक श्रेणी में नहीं आते, लेकिन इस तरह के कार्यों को असंगठित क्षेत्र के अंतर्गत शामिल किया जाना चाहिए और इसी आधार पर आवश्यक नीतिगत उपायों का खाका खींचा जाना चाहिए। इन्हें सिर्फ़ इसलिए कम महत्व नहीं मिलना चाहिए क्योंकि ये आर्थिक नहीं हैं।

फिर भी, व्यापकता और प्रभाव के कारण असंगठित क्षेत्र के आर्थिक पक्ष पर विद्वानों और नीति निर्माताओं का ध्यान खींचना अत्यंत ज़रूरी है। एनएसएसओ के आंकड़े के मुताबिक़ वर्ष 2009-10 के लिए कृषि क्षेत्र का 90 प्रतिशत से ज्यादा रोज़गार और कृषीतर क्षेत्र में लगभग 70 प्रतिशत रोज़गार असंगठित श्रेणी के अंतर्गत पाया गया था। जाहिर है, असंगठित क्षेत्र अर्थव्यवस्था का अवशिष्ट क्षेत्र नहीं है। वास्तविकता में, यह प्रमुख क्षेत्र है। यद्यपि, हाल ही में असंगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर संतोषजनक नहीं रही है, तथापि यह अर्थव्यवस्था में सबसे गतिशील क्षेत्र बना हुआ है। यहां तक कि संगठित क्षेत्र के विपरीत, असंगठित क्षेत्र में उत्पादकता, वास्तविक मजदूरी, निवेश और पूंजी संचय में सुधार देखा गया है।

असंगठित क्षेत्र को कमतर तथा ठहरा हुआ और खराब प्रदर्शन करने वाला क्षेत्र मानना ग़लत होगा। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस क्षेत्र की परिधि में 'लोक-विद्या' यानी प्राचीन एवं सुस्थापित 'ज्ञान निर्माण और उसके हस्तांतरण वाले संस्थान' जैसी पारंपरिक एवं देसी प्रणाली भी शामिल है, जो अब भारी परेशानी में है।

असंगठित क्षेत्र को हमें मुख्यधारा के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा जिसके लिए एक उचित नियामक की आवश्यकता है जिसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इस क्षेत्र में अपना खून पसीना लगाने वाले लोगों को सम्मानपूर्ण जीवन जीने और 'गरिमामय कार्य' के वातावरण में काम करने का अवसर प्राप्त हो। यह गंभीर चिंता का विषय है कि असंगठित क्षेत्र तकरीबन पूरी तरह से सामाजिक सुरक्षा की परिधि से बाहर है। इस क्षेत्र में काम करने वाले लोग अपनी आय की अस्थिरता से त्रस्त और श्रमिकों के रूप में अपने बुनियादी अधिकारों से वंचित हैं। हालांकि स्वरोज़गार असंगठित क्षेत्र के एक बड़े हिस्से का निर्माण करता है लेकिन प्रायः स्वरोजगार मजबूरी में अपना श्रम बेचने जैसी स्थिति के समान होता है जो किसी त्रासदी से कम नहीं। आज अगर हम *मेक इन इंडिया* के आह्वान को हक़ीकत में बदलना चाहते हैं, भारत को विनिर्माण के एक केंद्र के रूप में स्थापित करना चाहते हैं, तो स्पष्ट रूप से हम उन लोगों की उपेक्षा नहीं कर सकते जो सही मायने में 'भारत निर्माता' हैं। ❑

भारतीय असंगठित अर्थव्यवस्था की भूमिका

बारबरा हैरिस व्हाइट

भारत की असंगठित अर्थव्यवस्था कुल अर्थव्यवस्था का छोटा या मामूली हिस्सा नहीं है, जैसा कि अन्य ब्रिक्स देशों व यूरोपीय संघ के देशों में देखा गया है। यह स्पष्टतः व्यापक है, अनुमानित तौर पर यहां 92.5 प्रतिशत लोगों की आजीविका अपंजीकृत है, जो देश की जीडीपी में लगभग दो तिहाई योगदान देती है और इसमें बदलाव के कोई संकेत नहीं दिख रहे हैं। असंगठित क्षेत्र केवल छोटी आर्थिक इकाइयों के इर्द गिर्द नहीं देखा जाना चाहिए, असंगठित लक्षण तो बड़ी इकाइयों और यहां तक कि राज्य में भी जड़ें जमाये हुए हैं

अपनी असंगठित अर्थव्यवस्था के आकार और महत्व के हिसाब से भारत पूरे विश्व में संभवतः अद्वितीय है। जहां एक ओर इस सिद्धांत की अकादमिक जगत में काफी आलोचना हुई है कि असंगठित होने का संदर्भ उस विशाल पैमाने पर चल रही अपंजीकृत गतिविधियों की वास्तविकता से है (सुंदरेशन, 2013) जो न तो राज्य के नियंत्रण में होते हैं और न ही तदनुरूप उसकी विधियों के नियंत्रण में, वहीं जनसामान्य में इसे बखूबी समझा जाता है और इस कारण इसमें सैद्धान्तिक तौर पर इतनी गहराई है कि नियोजकों का ध्यान इस विषय पर जाए। प्रस्तुत आलेख में, हाल के शोध जिसमें आर्थिक एवं जैव भौतिक दोनों विषयों से संबंधित एक भारतीय-ब्रिटिश परियोजना शामिल है, (मोदी, मणि और एस कुमार, द्वारा: प्रकाश, द्वारा: हैरिस-व्हाइट और रोड्रिगो तथा द्वारा: हैरिस व्हाइट और प्रॉस्परी) उसका संदर्भ लेते हुए असंगठित अर्थव्यवस्था की भूमिका और नीति तथा नियोजन पर उसके परिणामों पर चर्चा की जाएगी।

भारतीय असंगठित अर्थव्यवस्था का ढांचा

सर्वप्रथम, असंगठित अर्थव्यवस्था क्षणभंगुर नहीं है। इस अवधारणा का विकास 1970 के दशक में पश्चिमी व पूर्वी अफ्रीका की परिस्थितियों को देखते हुए हुआ था जब ऐसी आशंका थी कि अपंजीकृत गतिविधियां शहरीकरण, बैंकिंग और औद्योगिकीकरण (कृषि समेत) के जरिए राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के तहत संगठित क्षेत्र में समाहित हो जाएंगी। 'विकास दशकों' की समाप्ति के बाद यह स्पष्ट हो गया कि असंगठित अर्थव्यवस्था वास्तव में एक ऐसा मजबूत ताना बाना है जो कई अर्थव्यवस्थाओं को अपने में मिलाये हुए है और जिसमें औपचारिक संगठित गतिविधियों ने सबकॉन्ट्रैक्टिंग के जरिए न केवल अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का दोहन किया बल्कि उसमें उत्पादित सस्ते उत्पादों और सेवाओं से भी खूब लाभ कमाया। आगे चलकर असंगठित (अपंजीकृत) दिहाड़ी मजदूरों (हैंसमेन, 2010) ने तमाम आलोचनाओं (सुंदरेशन, 2013) के बावजूद इस अवधारणा का दायरा बढ़ा दिया। लक्षित लाभार्थी स्वयं लाभार्थी न रह कर कैसे पीड़ित हो जाते हैं, इस पर एक शोध में पाया गया कि नीति निर्माण और अनुप्रयोग के उपस्कर खुद ही बहुत हद तक असंगठित (फर्नांडीज, 2012/प्रकाश, 2014) माने जा सकते हैं। चुनावी धनप्रबंधन पर शोध (झा, 2013) से भी स्पष्ट है कि किस तरह असंगठित तथा कालाधन अर्थव्यवस्था भारतीय प्रातिनिधिक राजनीति के अभिन्न अंग बन गये हैं।

दूसरी बात, भारत की असंगठित अर्थव्यवस्था कुल अर्थव्यवस्था का छोटा या मामूली हिस्सा नहीं है, जैसा कि अन्य ब्रिक्स देशों व यूरोपीय संघ के देशों में देखा गया है। यह स्पष्टतः व्यापक है, अनुमानित तौर पर यहां 92.5 प्रतिशत लोगों की आजीविका अपंजीकृत है, जो देश की जीडीपी में लगभग दो तिहाई योगदान देती है और इसमें बदलाव के कोई संकेत नहीं दिख रहे हैं। (महेन्द्र देव, 2014/आईएचडी समीक्षा, 2014) आंकड़े तैयार करने वाली सांख्यिकीय आकलन प्रक्रिया को आंकड़ा संग्रहण के लक्ष्य और गुणवत्ता पर वित्तीय दबाव से चुनौती मिल रही है (भल्ला, 2014) वहीं छोटे सर्वेक्षणों और विशिष्ट पारिस्थितिक अध्ययन के परिणाम अधिक दुरुस्त करने के माध्यम से तैयार आकलन की वैकल्पिक विधि *ज्ञानमीमांसा* के सिद्धांतों में अर्द्धविराम ला देते हैं। ज्ञानार्जन के ये दो अलग रास्ते ऐसी अवधारणाओं और श्रेणियों का प्रयोग कर रहे हैं जिन्हें राष्ट्रीय मुख्य-धारा के साथ हमेशा मिलाकर देखना संभव नहीं। (सिन्हा, 2007) लेकिन इस तथ्य से कोई

लेखिका आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अंतर्अनुशासन अध्ययन विद्यालय में वरिष्ठ शोधवेत्ता एवं विकास अध्ययन की अमीरात प्रोफेसर हैं। उन्होंने प्राथमिक क्षेत्रगत कार्य के आधार पर भारत के विकास पर गहन शोध किया है। कृषि क्षेत्र में परिवर्तन, ग्रामीण विकास, अनौपचारिक पूंजीवाद आदि उनके शोध विषय हैं। *इंडिया वर्किंग: रूरल कॉमर्शियल कैपिटलिज्म* तथा *दलित्स एंड आदिवासीज इन इंडियाज बिजनस इकॉनोमी* जैसी पुस्तकों के लिए चर्चा में रहीं हैं। ईमेल: barbara.harriss-white@qeh.ox.ac.uk

इन्कार नहीं कर सकता है कि असंगठित क्षेत्र न केवल व्यापक है बल्कि यह संवृद्धि का वाहक भी है और वैसे रोजगार उपलब्ध कराता है जो *'रोजगारहीन संवृद्धि'* की ओर जाते हैं। (ओपी सिट) इसलिए, स्वातंत्रयोत्तर नियोजन के बावजूद यह स्वयंप्रमाणित रूप से भारत के प्रतियोगी लाभ का मूल तत्व है।

तीसरे, असंगठित क्षेत्र का मतलब केवल गरीब भर नहीं हैं, यह अलग बात है कि हर तरह की गरीबी और हर तरह के वे काम जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ (आईएलओ) गरिमाहीन (वे काम जिनमें काम के दौरान संगठन या सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने के प्रभावी अधिकार हासिल नहीं हैं) कार्यों की श्रेणी में रखता है, ऐसे सभी इस क्षेत्र में शामिल हैं। कामगारों की विपन्नता दूर करने के जो भी उपाय किये गये हैं, वे अधिकांशत: उन्हें और उनके परिवारों को केवल नागरिक के तौर पर कल्याण योजनाओं के रूप में मिले हैं न कि एक कामगार के तौर पर। (प्रकाश और हैरिस व्हाइट, ऑक्सफैम) मनरेगा पर अलग से चर्चा की जाएगी। असंगठित अर्थव्यवस्था में संपत्ति सृजित भी की जाती है और भंडारित भी (रॉय 1996) और असंगठित अर्थव्यवस्था ही वह क्षेत्र है जहां पर गरीबी का संपदा से संबंध, गरीबी के कारक आदि (हैरिस व्हाइट 2006) स्पष्ट तौर पर हैं।

चौथा, असंगठित क्षेत्र अनौपचारिक भी है। हालांकि, आंकड़ों और आधिकारिक दस्तावेजों में यह असंगठित ही है (असंगठित उद्यमों पर राष्ट्रीय आयोग, 2005-06) लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि यह अर्थव्यवस्था कुसंगठित है, वास्तव में जिस रूप में यह संगठित है, उससे इसमें किसी भी भावी उत्पादन सुधार दशा के लिए बड़ी संभावना बन जाती है। असंगठित बाजार का नियमन सरकार द्वारा नहीं लेकिन समाज द्वारा जरूर होता है। हजारों चैम्बर आफॅ कॉमर्स, 10 हजार से ज्यादा व्यावसायिक संघ, आदि इस क्षेत्र उद्यमों, विभिन्न कार्यक्षेत्रों में प्रवेश कार्यस्थल तक पहुंच, आदि पर सामाजिक निगमिक नियंत्रण बनाये रखते हैं। वे अनौपचारिक तौर पर क्षमता व दक्षता प्रमाणित भी करते हैं, वे अनुबंध के विवाद सुलझा लेते हैं, मूल्य निर्धारण पर प्रभाव रखते हैं और परिणामी बाजारों में खासकर श्रम बाजार को वे अपने अनुसार संचालित करते हैं, वहां सामूहिक बीमा सुनिश्चित करते हैं, राज्य से मिल रही चुनौतियों के समक्ष इस अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व और उसका बचाव करते हैं, किराया तय करते हैं और राज्य के अधिकारियों के साथ उसे साझा करते हैं, पुनर्वितरण योग्य संसाधनों को उन लोगों की तरफ बढ़ाते हैं जिन्हें वे इसके लिए अनुमति देते हैं, प्रौद्योगिकी व मांग के संबंध में अभिनव सूचनाएं भी सब तक पहुंचाते हैं और इसके अलावा भी अनेकानेक कार्य (बासिल 2013/हैरिस-व्हाइट एवं रोड्रिगो 2014) करते हैं। कथित मृदु पहचान वाली संस्थाएं यथा लिंग, नस्ल, धर्म, स्थान, भाषा व जातियां (पेशे की पहचान के रूप में जाति का अस्तित्व खत्म हो रहा है पर कई स्थानीय संगमों की जातीय जड़ें अधिक गहरी हैं) आदि ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ खुद को उस स्तर से अधिक सक्षम साबित किया है जिसे विकास के सिद्धान्तकर्ता स्थापित करने में दिलचस्पी दिखाते रहे हैं। इसके लिए काफी काम हो रहा है कि वास्तव में वे मृदु नहीं रह जाएं बल्कि अर्थव्यवस्था में अवसरों, प्रवेश व प्रथाओं के कठोर नियामक बन कर उभरें, वे पूंजी और श्रम दोनों की गतिशीलता को सीमित करते हैं लेकिन उसी समय संरचनाएं उपलब्ध कराने के साथ आर्थिक संवृद्धि को भी स्थायित्व देते हैं (हैरिस-व्हाइट 2003)।

असंगठित कारोबारी छोटे सरप्लस, उधारी, विनिमय विनियोग, खानदानी प्राप्तियां आदि के रास्ते एक ही पूंजी की कई रूपों में गणना कर बढ़ते हैं, एकदिष्ट संवर्द्धन से नहीं। यह आधुनिक भारतीय पूंजीवाद की विशिष्ट पहचान है।

पांचवा, असंगठित क्षेत्र छोटी आर्थिक इकाइयों की चहुंओर मौजूदगी के बावजूद केवल इतने तक सीमित नहीं है। अनुमानत: 95 प्रतिशत से अधिक फर्म 5 से कम वेतनभोगियों को रखती हैं, प्रति फर्म वेतनभोगियों का औसत जो 1990 में 2.9 था, 2005 में गिरकर 2.4 हो गया। उदारीकरण ने छोटी फर्मों की बाढ़ ला दी है। छोटे आकार, श्रमिक कानूनों में वर्णित सामाजिक सुरक्षा हासिल करने की अयोग्यता और कई अन्य कारणों से ऐसी फर्मों के मालिक भी श्रमिक कहलाते हैं। इस तरह नियोक्ता स्वयं औपचारिक तौर पर वे अधिकार हासिल करने के लायक बन जाते हैं जो उनके कर्मचारियों को उपलब्ध हैं। (शंकरन, 2008ए)। एक संगठित फर्म जो असंगठित उपसंविदा के आधार पर चल रही है, उसे मौजूदा श्रम विधि अदालतों में प्रत्यक्ष उत्पादकों का नियोक्ता नहीं माना जा सकता है। ऐसे में स्वरोजगार वाले पीसीपी नियोक्ता ढूंढ नहीं सकते हैं, इससे न केवल पीसीपी के श्रमिक के तौर पर अधिकार छिन जाते हैं बल्कि किसी विवाद की स्थिति में नियमित वेतनभोगी भी उपसंविदा वाले स्वरोजगारी नियोक्ताओं के विवाद नहीं ला सकते हैं। ऐसे फर्म मालिकों में से 95 प्रतिशत में भी बड़ी संख्या उनकी है जो थौक व खुदरा विक्रेता हैं या फिर मामूली कमोडिटी उत्पादक (पीसीपी)। (पीसीपी भारत की संपूर्ण अर्थव्यवस्था, चाहे वह संगठित हो या असंगठित, उसमें जीविकोपार्जन का सबसे आम स्वरूप है। यह छोटा लेकिन जटिल है, प्राथमिक तौर पर, स्वतंत्र, स्वायत्त आर्थिक गतिविधियों तथा परमुखापेक्षी वेतनभोगियों के बीच संबंधों और प्रारूपों में विविधता लिये हुए है (श्रीनिवासन 2010 / हैरिस-व्हाइट 2013), साथ ही ये गतिविधियां संयुक्त पूंजी एवं श्रम के स्वैच्छिक निवेश के बीच झूलती रहती हैं और प्राय: संत्रासपूर्ण या तनावपूर्ण भी होती हैं। इन दो धाराओं के बीच मौजूद इन छोटी फर्मों के वितरण का कोई आधिकारिक आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। चूंकि छोटी इकाइयों में श्रम और पूंजी सूक्ष्म रहती है, उनके उत्पादन तक भी बहुविध होते हैं, हो सकता है कि वे अस्तित्व बचाने तक ही लक्ष्य केन्द्रित रखें या संभव है कि वे लाभ की अनदेखी कर केवल उत्पादन बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित करें, और पारिवारिक श्रम की बाजार दर से गणना नहीं कर वे कम पूंजी लागत अनुमान के पूर्वाग्रह में आ सकते हैं। उनके तर्क जो भी हों लेकिन इस कारण उन्हें पूर्व-पूंजीवादी नहीं मान लिया जाए, वे बाजार अर्थव्यवस्था के विभिन्न हिस्सों में बड़े पैमाने पर शामिल हो गये हैं और उन्हें बाहर नहीं किया जा सकता है। वे शायद ही कभी समस्त पूंजी का संवर्द्धन (अर्थात् प्राप्त लाभ को पुनरोत्पादक रूप में पुनर्निवेश करना) और पूंजी का विस्तार करते जाना करते हैं। असंगठित क्षेत्र के कारोबारी छोटे सरप्लस, उधारी, विनिमय विनियोग, खानदानी प्राप्तियां आदि के रास्ते एक ही पूंजी की कई रूपों में गणना कर आगे बढ़ते हैं, एकदिष्ट संवर्द्धन से नहीं। यह निगम से अलग आधुनिक भारतीय पूंजीवाद की बिल्कुल विशिष्ट पहचान है।

फिर भी असंगठित क्षेत्र केवल छोटी आर्थिक इकाइयों के इर्द गिर्द नहीं देखा जाना चाहिए, असंगठित लक्षण तो बड़ी इकाइयों और यहां तक कि राज्य में भी जड़ें जमाये हुए हैं। यहां भी विषमता के प्रमाण मिलते हैं, कारपोरेट क्षेत्र का 40 से 80 प्रतिशत तक श्रम असंगठित है, (हैरिस-व्हाइट, 2003) बहुत थोड़ा सा एकीकृत है (वह भी तेजी से बदल रहा है) (मेनन 2013) और अधिकांश या तो काम के दौरान अपने अधिकारों से पूरी तरह नावाकिफ है, या नियोक्ताओं से इस तरह डरा हुआ है कि वह अपने अधिकारों का इस्तेमाल करेगा तो पता नहीं नियोक्ता

क्या रवैया अपनाएंगे (मोदी व अन्य 2014)। कोयला क्षेत्र में हाल में किये गये शोध से पता चला कि पंजीकृत एवं वैध गतिविधयों के साथ ही न केवल अवैध/असंगठित कोयला साइकिल वालों की बड़ी फौज बल्कि राज्य निगमों के वेतनभोगी कामकाजियों का बड़ा और क्षति उठाने वाला वर्ग भी मौजूद रहता है, जिसमें बड़ी संख्या पहरेदारों, बिचौलियों और अपंजीकृत उपसंविदाकारों की होती है, इनमें निजी उगाही और निजी सुरक्षा देने वालों की जमात सबसे ऊपर रहती है, इसका उदाहरण समानांतर अथवा छद्म सरकारों (सिंह 2014) का अस्तित्व है, जिन्हें नियोजन दस्तावेजों में कोई जगह नहीं मिलती है।

केवल उन स्थितियों को छोड़कर जबकि कोई गहरी राजनीतिक चाल चरम पर हो, भारत के असंगठित क्षेत्र के संचालक हमेशा रडार पर बने रहते हैं। फिर भी, उदीयमान कारपोरेट क्षेत्र के प्रति मीडिया के लगाव के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था का बड़ा हिस्सा अब भी असंगठित है। क्या यह ऐसा ही रहेगा, या फिर नीति व नियोजन के माध्यम से यह राज्य के नियंत्रण के दायरे में लाया जा सकेगा, इन प्रश्नों पर अब अधिक चर्चा होगी।

प्रभाव/नीति-नियोजन के प्रश्न

प्रश्न ये है कि क्या भारतीय राज्य व्यवस्था के पास असंगठित क्षेत्र की छोटे फर्मों के लिए कोई आर्थिक परियोजना है? इस पर बहुत चर्चा हुई है। कुछ लोगों का मत है कि ऐसा कुछ नहीं है क्योंकि चरम तक प्रभावित किये जाने और रोजगारहीन संवृद्धि के प्रमाण मौजूद रहे हैं या फिर ऐसे भी तथ्य मिले हैं कि छोटे पैमाने के उत्पाद असंगठित हैं तथा नीति निर्माण की प्रक्रिया से कहीं बाहर हैं। (पटनायक 2012/चक्रवर्ती एवं अन्य 2008) वहीं दूसरी ओर, असंगठित अर्थव्यवस्था को 'आधिपत्य त्याग के जरिए एकत्रीकरण' (डेविड हार्वी की अवधारणा पर अदनान की आलोचना) के कारण विस्थापन एवं निर्धनीकरण शिकारों के लिए 'गैर-पूंजीवादी' तथा 'आवश्यकता आधारित अर्थव्यवस्था' मानने वाले इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि हां राज्य के पास कोई परियोजना है। (चटर्जी 2008ए, सान्याल 2007) हरित क्रांति एवं कृषि लोकप्रियता, सुरक्षित उद्योगों, समेकित विकास आदि के छात्र हालांकि तर्क देते हैं कि विकास परियाजोनाओं में कई बार पुनरावृत्ति है और ये हमेशा सफल नहीं होते हैं। (हाजेल 2007, मोहन 2002, राव 2009) चौथी स्थिति यह है कि भारतीय राज्य व्यवस्था में बेमेल परियोजनाएं हैं जिनमें छोटे पैमाने के उत्पादकों के लिए एक ही वक्त पर विध्वंस, सुरक्षा, प्रोत्साहन और सहिष्णुता आदि मौजूद रहते हैं और इनके लिए *गैरइरादतन प्रयासों के परिणाम के सिद्धांत* (हैरिस-व्हाइट 2012) को भी श्रेय दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए असंगठित क्षेत्र और इसके अंदर मौजूद पीसीपी नगर सौंदर्यीकरण योजनाओं के क्रम में नष्ट या विस्थापित कर दिये जाते हैं, सूक्ष्म-ऋण योजनाओं के जरिए प्रोत्साहित किये जाते हैं, सामाजिक लाभ अंतरण के जरिए सुरक्षा पाते हैं और स्थानीय निकायों के व्यावसायिक केन्द्रों में जगह देकर इनका भार वहन किया जाता है। तथापि राज्य की नीतियों के बेमेल होने में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता है कि यह सब इरादतन नियोजित किया गया हो, अब इसे पलटना बहुत ज्यादा कठिन होगा, चाहे तो असंगठित क्षेत्र को खत्म करना हो या फिर इसमें एकत्रीकरण को बढ़ावा देना।

दूसरे, 21वीं सदी में इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि असंगठित क्षेत्र में नीति अनुपालन एवं राज्यकृत नियमन बढ़ा है। इसके लिए किसानों और व्यापारियों के बीच बढ़ते संव्यवहार को कृषि विपणन (विनियमन) अधिनियम के आलोक में देखा जा सकता है। यह ऐसे समय में आया है जब ऐसे विनियमों की आलोचना यह कहकर होती है कि ये निगमित मूल्य श्रृंखला की जरूरतों के अनुसार अप्रासंगिक हैं (जन एवं हैरिस-व्हाइट 2012) लेकिन इस संबंध में तर्क यह है कि यह अनुपालन बड़े पैमाने पर मनमाना है। एक ठेठ फर्म को अब स्थानीय प्राधिकारों में पंजीकरण करवाना होगा। हालांकि फिर भी वह श्रम व पर्यावरण कानूनों को ठेंगा दिखाता रहेगा, नगरपालिका के व अन्य व्यवसायिक कर देने में उदासीनता और अनियमितता बरतेगा तथा कोयला उद्योग की तरह अवैध रास्तों का प्रयोग कर राज्य से बचने के तरीके ढूंढता रहेगा, हो सकता है कि यह सब आपूर्तिकर्ताओं, परिवहनकर्ताओं या फिर हर तरह के सुरक्षा दस्तों आदि को दिये जाने वाले अनौपचारिक करों व शुल्कों के रूप में भी हो।

तीसरे, इस नीतिगत चयन का भी एक सामान्य पैटर्न है। यह चिरस्थापित तथ्य है कि भारत के शीर्ष पूंजीपति वर्ग ने हमेशा ही इस दिशा में उठाये जाने वाले राज्य के सकारात्मक कदमों का विरोध किया है और दूसरी ओर खुद राज्य पोषित प्रोत्साहन भत्ते पाते रहे हैं। (छिब्बर 2003) असंगठित क्षेत्र के संबंध में समतुल्य कार्यकारी निष्कर्ष यही है कि यह क्षेत्र भी उपर्युक्त सामान्यीकरण का कोई अपवाद नहीं है। राज्य द्वारा उपलब्ध परोक्ष (स्वास्थ्य, आवासन, शिक्षा आदि) व प्रत्यक्ष (बिजली, पानी, सड़क, संचार, नाले, सीवर आदि) अवसंरचनाएं सामाजिक तौर पर विनियमित अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं पुनरुत्पादन के एक बड़ी सहायता या यूं कहें कि प्रोत्साहन हैं और इसी तरह एक महीन सामाजिक सुरक्षा आवरण है जो कार्यबल के एक लक्षित भाग को सुरक्षित रह पाने में मदद देता है। इन चुनिंदा नीति बिंदुओं में भी अवैध किराया बाजार उभरता है (जो कई बार निजी स्वार्थों को अनुशासन तथा कर दायित्व का उल्लंघन करने की अनुमति दे देता है) और राज्य निजी अस्तित्व तथा पहचान से जूझता रहता है। असंगठित क्षेत्र अर्थव्यवस्था में शासक की भूमिका निभा रही समानांतर सरकारें औपचारिक राज्य के बिना अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सकती है। मिश्रित परिणाम अर्थव्यवस्था को तो संचालित करता है परंतु सार्वजनिक अस्तित्व की वैधानिकता को कम करके आंकता है।

उल्लंघन के विविध रूपों से उत्पन्न विविध सांस्थानिक संकटों के बावजूद सार्वजनिक क्षेत्र की यह उपेक्षा राज्य की क्षमता में कमी के कारण नहीं है। (व्यावसायिक करों के संबंध में जयराज एवं हैरिस-व्हाइट 2006/मुफस्सिल शहरों में शासन के संबंध में सुंदरेशन 2013 एवं हैरिस-व्हाइट (सं), आगामी) भारतीय राज्य व्यवस्था यदि चाह ले तो महात्वाकांक्षी नियामक, विकासात्मक और लोकतांत्रिक लक्ष्यों (यथा नये विरगल विमानपत्तन व समुद्री पत्तन, परमाणु बिजली केन्द्र, चुनाव आयोग का कार्य व संचालन आदि) को प्राप्त करने में सक्षम है। अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि ऐसा नहीं है कि राज्य नियामक अनुपालन के प्रवर्तन को इच्छुक नहीं है लेकिन वह छोटी पूंजियों को जानबूझकर अनुशासनात्मक कानूनों का उल्लंघन करने करने की छूट देता है और इस कारण प्राधिकरण को भी कमतर करके आंका जाता है और यह कि राज्य स्वयं जो करता है वो बहुत कुछ नियामक, पुनर्वितरण और विकासात्मक गतिविधियां होती हैं।

चौथे, राज्य के अंदर नीति प्रक्रियाएं इस कदर अनौपचारिक हो चुकी हैं कि नीति परिणाम बहुत हद तक उन लक्ष्यों से भटक जाते हैं जिन्हें हासिल करना नीतियों का लक्ष्य होता है। कभी कभी तो ऐसा हो जाता है और इसकी किसी को खबर तक नहीं हो पाती है। (कविराज 1988) क्रियान्वयन की राजनीति को नजरअंदाज करने में बहुत हद तक नीतिनियंताओं का भी दोष है, ऐसा ज्यादातर वहां होता है जहां हेर -फेर की गुंजाइश रहती है। संभवत: नीति-निर्माता इस मसले पर उपलब्ध

एकमात्र प्रमाण, परिस्थिति अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को स्वीकार नहीं करते हैं।

बेंगलुरू में भूमि-उपयोग संबंधी एक ऐसा ही अध्ययन '*प्राकृत शासन*' की संकल्पना को जन्म देता है, इससे पता चलता है कि किस तरह निजी स्वार्थों से घिरा राज्य नियोजन प्राधिकारों की इस निर्णय क्षमता को कमजोर कर देता है जिससे पता लग सके कि कहां कहां उल्लंघन की साजिश रची जा सकती है, और साथ ही नागरिक समाज का विरोध भी कुचल दिया जाता है। (सुंदरेशन 2013)। एक अन्य केस अध्ययन जो मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र में गरीबी उपशमन नीति से संबद्ध है और परस्पर विरोधाभासी लाभार्थियों को पीड़ित के रूप में देखता है, वह अफसरशाही की राजनीति में 'कुशल एवं कूटनीकतिक प्रथाओं' के माध्यम से न केवल अनौपचारिकता बल्कि नीति निर्माण तथा क्रियान्वयन के दोहरे लाभ की संकल्पना को भी सृजित करता है (और विश्लेषक 'पलायनवाद' तथा 'राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव' को उजागर करता है)। यहां निजी आर्थिक हितों की सुरक्षा का खुलासा होता है लेकिन यह कई लक्ष्यों में से एक है (परिशिष्ट देखें) और किसी भी कार्य पर राज्य के प्रत्यक्ष आधिपत्य के अलावा भी कई रास्ते हैं। इनमें औपचारिक निर्देशों या प्रतिबंधों के अभाव में अनौपचारिक निर्देशों, प्रथाओं को नजरअंदाज करना या जानबूझकर इन्हें क्षमता से कम परिणाम देने तक सीमित रखना, प्रणालीगत स्वाभाविक व्यवहार तक सीमित रहना, काम आसान या कामचलाऊ बनाने का रवैया तथा अनौपचारिक कुशल व कूटनीतिक प्रथाओं को औपचारिक रूप से कानूनी जामा देना आदि

परिशिष्ट: महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश में स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के क्रियान्वयन में औपचारिक व अनौपचारिक नीतियां (फर्नांडिज 2008/2012 के अनुसार)

प्रथा: व्यवहार में औपचारिक परिवर्तन

राजनीतिक तकनीक:
- गरीबी रेखा से ऊपर वालों को 'शामिल' करना
- गैरइरादतन ऋण न चुकाने वाले भी पात्र
- 30 प्रतिशत गरीबी रेखा कवरेज का उपबंध हटाना
- पिछले दरवाजे से रियायत
- सहायता राशि सीधे खाते में या चेक द्वारा भुगतान
- मवेशियों व अन्य संपत्तियों की खरीद खुले बाजार से करने की छूट

राजनीतिक रणनीतियां:
- नवनिर्वाचित सरकारों द्वारा नयी अथवा संशोधित गरीबी उन्मूलन नीतियों का आरंभ

प्रथा: औपचारिक व्यवहार की अनदेखी

राजनीतिक तकनीक:
- 30 प्रतिशत बीपीएल परिवारों को शामिल करना
- चिह्नित गतिविधियां व कलस्टर
- गैरइरादतन ऋण न चुकाने वाले भी पात्र
- ऋण वापसी में 80 प्रतिशत से अधिक विफलता वाली पंचायतों को और धन मिलने पर प्रतिबंध

राजनीतिक रणनीतियां:
- स्व सहायता समूह का चयन ग्राम सभा द्वारा
- डीआरडीए उस समय जिला समिति की बैठक करें जब संसद सत्र चले और सांसद क्षेत्र में हों
- पीएसी रिर्पोट की अनुशंसाएं

प्रथा: औपचारिक व्यवहार का कमजोर प्रदर्शन

राजनीतिक तकनीक:
- राज्यों द्वारा बजट का पूरा इस्तेमाल नहीं करना
- राज्यों द्वारा अपने हिस्से का 25 प्रतिशत पूर्णत: उपलब्ध नहीं कराना
- केन्द्रीय आवंटन में कमी
- योजना बजट में आवंटित संसाधन में कमी
- कम धनदान
- निम्न ऋण विचलन
- स्वीकृति में विलंब
- वित वर्ष समाप्ति तक ऋण आवेदन लंबित रहना
- संबंधित विभागों से नियमित आपूर्ति नहीं होना

राजनीतिक रणनीतियां:
- जिला योजना एवं निगरानी समितियों का अपेक्षानुसार काम न करना
- पीएसी की सिफारिशें ठीक से लागू नहीं होना

प्रथा: औपचारिक निर्देशाभाव में अनौपचारिक व्यवहार

राजनीतिक तकनीक:
- जिला प्रशासन स्व सहायता समूह सदस्यों को प्रतिमाह 30 से 50 रुपये बचत को प्रेरित करे

राजनीतिक रणनीतियां:
- गरीबी रेखा प्रखंड के बजाय राज्य स्तर पर तय होना
- पारदर्शी एनजीओ चयन प्रक्रिया का अभाव, चयन प्रक्रिया डीआरडीए अधिकारियों के विवेकाधिकार में, अनुभव व साख नजरअंदाज करना
- धार में ग्राम पंचायत ऋण लेने वालों की पहचान व ऋण अदायगी क्षमता जांचते हैं

प्रथा: व्यवस्था में अनायास मौजूद अनौपचारिक व्यवहार

राजनीतिक तकनीक:
- लक्ष्य संकेन्द्रण जारी रखना
- गढ़चिरौली में वर्ष के मध्य लक्ष्य संशोधन

राजनीतिक रणनीतियां:

प्रथा: काम को आसान बनाने वाले अनौपचारिक व्यवहार

राजनीतिक तकनीक:
- तदर्थ प्रशिक्षण, इसमें स्व सहायता समूह के लिए आवश्यक सभी प्रशिक्षण नहीं
- ग्रेडिंग प्रक्रिया कठोर नहीं, चयनित स्व सहायता समूह स्तरीय नहीं, अर्हता के लिए हेरा-फेरी
- ग्रेडिंग शिविर
- ऋण देते समय बैंक में सभी सदस्यों की उपस्थिति
- धार एवं गढ़चिरौली दोनों जिलों मुख्य गतिविधियां पारंपरिक व घरेलू कार्यों पर केन्द्रित
- ईओ द्वारा डमी परियोजना प्रारूप प्रयोग करना
- गढ़चिरौली में वर्ष के मध्य लक्ष्य संशोधन

राजनीतिक रणनीतियां:
- धार में ग्राम पंचायत खाता खोलने के लिए जरूरी पहचान प्रमाण उपलब्ध कराते हैं
- राजनेता योजना से संबद्ध शिकायतों के हिसाब से सुनवाई करते हैं, दीर्घकालीन योजना नहीं
- स्व सहायता समूह के संचालन में पति/पुरुष रिश्तेदारों का हस्तक्षेप

प्रथा: हितों की रक्षा करने वाले अनौपचारिक व्यवहार

राजनीतिक तकनीक:
- धन को अन्य कार्यों में लगाना
- पूरी परियोजना राशि/रियायत आदि जारी न होना, बड़े ऋण में भी 50 प्रतिशत तक ही जारी होना
- 50,000 से अधिक के ऋण में बैंकरों द्वारा बंधक भूमि मांगने का अधिकार
- ऋण वापसी में विफल लोगों को अनर्ह करना
- बैंकरों व सरकारी अधिकारियों का भ्रष्टाचार
- ऋण अदायगी न होना
- सदस्यों को व्यक्तिगत क्षमता में ऋण प्रदान करना
- एक ही समूह को बड़ा ऋण देने के बजाय ज्यादा समूहों को छोटे ऋण देना
- सिंचाई जैसे छोटे ऋणों के लिए सह-आदाता बनाना, कई बार पति-पत्नी ही आदाता-सह-आदाता होते हैं
- एनजीओ से करार हस्ताक्षर के समय डीआरडीओ द्वारा 10 प्रतिशत राशि जारी नहीं करना और इसके लिए स्व सहायता समूह बनने तथा खाता खुलवाने तक इंतजार करवाना

राजनीतिक रणनीतियां:
- जिला/राज्य स्तर पर गरीबी रेखा सूची में संख्यावृद्धि
- बीपीएल सूची प्रखंड या जिला की बजाय राज्य स्तर पर तैयार होना
- ऋण माफी के राजनीतिक वादे
- एनजीओ अनुबंध व विशिष्ट परियोजनाओं में भ्रष्टाचार
- स्व सहायता समूह बनाने और स्वर्ण जयंती योजना के तहत प्रशिक्षण के लिए राजनेताओं द्वारा अपनी पार्टी के लोगों को बढ़ावा देना
- स्व समूहों के जरिए सरकारी ठेकों (मध्याह्न भोजन, पोशाक आदि) पर राजनीतिक दखल
- स्व सहायता समूह राजनेताओं के लिए महिलाओं को एकत्र और लामबंद करने का उपस्कर मात्र होना

प्रथा: वैसे अनौपचारिक व्यवहार जो बाद में औपचारिक वैधता पा जाते हैं

राजनीतिक तकनीक:
- 30 प्रतिशत बीपीएल आबादी का लक्ष्य पूरा नहीं, बाद में दिशानिर्देश से बाहर
- मुख्य गतिविध की नीतिगतवधारणा में फिट न होने पर भी बहुउद्देश्यीय समूहों को अनुमति
- अप्रयुक्त छूट वापसी बैंक की उपलब्धि मानना
- ऋण विचलन
- ऋण वापसी में 80 प्रतिशत से अधिक विफलता वाले पंचायतों को और धन मिलने पर प्रतिबंध

राजनीतिक रणनीतियां:
- अन्त्योदय रवैया खत्म करना

प्रथा: दंडात्मक प्रावधानों की गैरमौजूदगी के कारण होने वाले अनौपचारिक व्यवहार

राजनीतिक तकनीक:
- पर्याप्त दंडात्मक प्रावधान न होने के कारण भ्रष्टाचार बढ़ने की आशंका
- वसूली की निष्प्रभावी औपचारिक प्रथाओं के कारण ऋण अदायगी न होना

राजनीतिक रणनीतियां:
- पर्याप्त दंडात्मक प्रावधान न होने के कारण भ्रष्टाचार बढ़ने की आशंका

स्रोत: *फर्नांडिज, 2008: तालिका 5.5*

विकल्प (फर्नांडिज 2008, 2012) संभव हैं।

हरियाणा में कृषि एवं कृष्योत्तर उत्पादों की आपूर्ति श्रृंखला पर केन्द्रित एक तीसरे केस अध्ययन में पाया गया कि भूमि संबंधी मामले अब भी जातिगत संस्थाओं से नियंत्रित होते हैं और इस संबंध में राज्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया जाता है। विनियमित बाजार गतिविधियां कई बार क्रियान्वित होती हैं और कई बार बिना किसी दंड के इन्हें अनदेखा किया जा सकता है। सामाजिक नियमन कानून की इस स्थिति का विकल्प देता है। कृषि-प्रसंस्करण में नियामक तरह तरह के लाइसेंस जारी करने, प्रदूषण नियमों को तोड़ने, गुणवत्ता मानकों को अनदेखा करने आदि के एवज में 'अतिरिक्त सेवा शुल्क' (रिश्वत) वसूलते हैं। राज्य के अंदर अवैध निजी बाजार तथा जीविकोपार्जन के रास्ते बनाकर एक जालसाज व उल्लंघनकारी अर्थव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। परिवहन तंत्र में तो एजेंटों ने बहुत आगे निकलकर रिश्वत हथियाने के लिए 'एकल खिड़की' व्यवस्था विकसित कर ली है वहीं इन रिश्वतों के आदान प्रदान और लेखा-जोखा के लिए एक अलग किस्म का प्रीपेड कार्ड भी तैयार किया जा चुका है। अवैध ओवरलोडिंग से प्राप्त आय मालिकों, बुकिंग एजेंटों, कमीशन एजेंटों, महाजनों, अधिकारियों, राजनेताओं और स्थानीय जामिगत नेताओं के बीच आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक शक्तियों का मजबूत गठजोड़ बनाकर बांटा जाता है। एक बार फिर, राज्य में स्वार्थी तत्व अवैध बाजार का निर्माण कर उनसे निजी तौर पर फायदे उठाते हैं।

राज्य की औपचारिक नीतियों की जिन बाह्य सीमाओं को 'धुंधला' (गुप्ता, 1995) माना जाता है, प्रस्तुत शोध के अनुसार वे *राजनीतिक दखल* हैं। क्या अन्य क्षेत्रों और क्षेत्रकों में ऐसी स्थिति है या फिर भिन्नता है, इस पड़ताल के लिए ऐसे और भी कार्यों की आवश्यकता होगी क्योंकि नीति निर्माताओं को इस बात के प्रति सावधानी रखनी होगी कि ऐसी राजनीति किस हद तक आम है? ऐसा मालूम पड़ता है कि नियामक राजनीति दोहरे आधिपत्य का रवैया अपनाती है: नियामक स्वतंत्रता पर तो राज्य कब्जा कर लेता है, वहीं राज्य पर स्थानीय पूंजी का कब्जा हो जाता है। शहरी तथा क्षेत्रीय नियोजन नीतियों के संदर्भ में इरादा और व्यवहार दोनों स्तर पर व्यापक हेर-फेर का सामना करने के बाद नीति निर्माता दो नतीजों पर पहुंचे: पहला, लचीला नियमन और दूसरा, अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत विवरण लेकिन फिर असंगठित अर्थव्यवस्था किसी भी रास्ते से नियामक मोर्चे पर वैकल्पिक व्यवस्था स्थापित करने में नाकाम रही (चम्पका राजगोपाल, पर्सकॉम, 2013)।

नीति क्रियान्वयन के ये सभी विकृत संबंध जैसे प्रवर्तन व मध्यस्थता का अभाव, राज्य की पहुंच में अवरोध या उस पर आधिपत्य आदि गहरी जड़ें जमा चुके हैं। भारतीय राजव्यवस्था अब हितों, संस्थाओं और विविध मानकों पर नीति परीक्षण करने वाली विविध प्रथाओं का अस्पष्ट घालमेल (एलिजाबेथ चटर्जी, आगामी) बन चुकी है। किसी भी भावी राजकीय नियोजन को नीति प्रभाविकता की इन वर्तमान स्थितियों से जूझकर इन्हें स्वीकार करना, समझना और तदनुसार समाधान ढूंढ़ना ही होगा।

संगठितता/औपचारिकता

असंगठित क्षेत्र को संगठित करने का प्रश्न हमेशा ही संगठित सम्पत्ति स्वामित्व की वांछनीयता डी सोटो की कल्पना के सन्दर्भ में देखी जाती रही है (डी सोटो 2003) लेकिन

असंगठित क्षेत्र बदलाव को नकार नहीं रहा है लेकिन भारत की अपेक्षाकृत उच्च विकास दर और हर प्रकार का नवाचार (अनुकूलनीय, वृद्धिमान, पारंपरिक, प्रौद्योगिक, प्रक्रियागत) और सांगठनिक का सक्षम प्रदर्शन इस क्षेत्र को बदलावों से दूर रखना चाहता है।

संगठित करने प्रक्रिया खुद ही असंगठित हो रही है। संयुक्त स्वामित्व वाली संपत्तियों की अस्पष्टता के कारण 'स्वामित्व निर्धारण' का कार्य चुनिंदा लाइसेंसिंग और व्यापार संगठन के कौशल के प्रमाणन के माध्यम से किया जा रहा है। असंगठित क्षेत्र के अंदर लाइसेंसिंग के जरिए बैंक लोन इत्यादि सुलभ हो पाते हैं तो प्रमाणन के जरिए कौशल की गतिशीलता (मानव संसाधन विकास) सुगम होती है। सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यों (मनरेगा जैसे) के लिए ई-भुगतान का प्रसार और *आधार* के अनुप्रयोग धीरे धीरे कार्य और नागरिकता अर्हताओं को औपचारिक/संगठित रूप (शेखर एम राज 2013-4) दे रहे हैं। माइक्रोफाइनेंस में भी पंजीकरण की जरूरत आने लगी है लेकिन माइक्रोफाइनेंस की सफलता पर अब भी जाति और लिंगभेद की गहरी छाप (गुएरिन व अन्य, आगामी) है। एकाधिक बैंक खातों की उपलब्धता व उनसे प्राप्त लाभ को पंजीकृत किये जाने की आवश्यकता है लेकिन वहीं एकाधिक ऋण सामाज विनियमित साख के माध्यम से उपलब्ध हो जाते हैं। *एनईएफटी* बाजार की भौगोलिक सीमाओं को विस्तार देता है और ऋण प्रदान विवेकाधिकार के मनमानेपन को खत्म करता है लेकिन इसके साथ ही मौखिक अनुबंधों के भी द्वार खोल देता है। उपराष्ट्रीय पूंजी का एक नया भंडार जिसकी शाखाओं व फ्रेंचाइजी का पंजीकरण होना है, वह लाखों छोटे पारिवारिक फर्मों (जिनके सुशिक्षित पुत्रों ने अनुवांशिक प्राधिकार को सबकुछ सौंपने से इंकार कर दिया है। का स्थान लेने को उद्यत है। इन उदाहरणों में असंगठित संगठन से इतर, एक समानता यह है कि इन दोषपूर्ण व्यवस्थाओं की चाबी राज्य नहीं बल्कि बाजार के हाथों में है।

राज्य के लिए यह बहुत हद तक समझौते वाली स्थिति है। खासकर, स्थानीय स्तर पर राज्य को चिरकालिक राजस्व संकट का सामना करना पड़ता है क्योंकि आधारभूत अवसंरचनाओं के प्रावधान अपर्याप्त हैं। इससे मौद्रिक अनुपालनहीनता को बढ़ावा मिल जाता है और इसके परिणामस्वरूप प्रोत्साहन कदम असंगठित क्षेत्रों के मुनाफा कमाने और सार्वजनिक कार्यों के निजीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है। परिणाम सामाजिक स्तर पर विभेदकारी होते हैं। (डी बर्सगल/ हैसिस- व्हाइट, सं., आगामी) भारत में ऐसे क्षेत्र एवं क्षेत्रक हैं जहां स्थानीय अर्थव्यवस्था महज असंगठित नहीं बल्कि अपराधीकृत है। जहां न केवल नियामक कानूनों की धज्जियां उड़ायी जाती हैं बल्कि ऐसा करना उपर्युक्त समानांतर संरचनाओं के आधार पर सामान्य प्रथा बन जाती है। जहां अपराधी समूहों द्वारा वैध-अवैध दोनों तरह के उत्पादों का उत्पादन और व्यापार (योजना आयोग 2009) होता है। क्या ऐसी गतिविधयों के दलगत राजनीतिक धनदान और अपराधीकृत राजनीतिक सहभागिता (झा, 2013/कुमार, 2014) से सुसंगठित संबंध नहीं हैं। इसलिए नीतिगत सुधारों की दलील देना आसान होगा। हालांकि चुनावों में राजकीय धनदान पर गंभीर राजनीतिक विरोध, करवंचना और पूंजी छलांग का अर्थव्यवस्था के शीर्ष पर काबिज होना, (कुमार, 1999 / कार, 2010 / श्रीनिवासन, आगामी) आदि परिस्थितियों में राज्य की क्षमता में सुधार किसी विशिष्ट मामले के आधार पर ही दिख सकेगी और अवैध तथा कालाधन अर्थव्यवस्था के फलने फूलने के अलावा कुछ और संभावना खोजना मुश्किल है।

उपलब्ध तर्कों के विपरीत नये शोध में पता चलता है कि असंगठित क्षेत्र बदलाव को नकार नहीं रहा है लेकिन भारत की अपेक्षाकृत उच्च विकास दर और हर प्रकार के नवाचार (अनुकूलनीय, वृद्धिमान, पारंपरिक, प्रौद्योगिक, प्रक्रियागत और सांगठनिक) का सक्षम प्रदर्शन इसको बदलावों से दूर रखना चाहता है (हैरिस-व्हाइट, आगामी)। आर्थिक नियोजन का काम देख रहे लोगों को इस संबंध में बहुविध चुनौतियों का सामना करना होगा। ❑

(संदर्भ पृष्ठ 75 पर)

अनौपचारिक क्षेत्र और लोकविद्या

अमित बसोले

यह विचार कि कार्य से हासिल ज्ञान औपचारिक शिक्षा से हीन नहीं है, इतिहास से लेकर विज्ञान और मनोविज्ञान से लेकर ज्ञान प्रबंधन के विविध क्षेत्रों में व्यापक स्वीकृति अर्जित कर रहा है। विज्ञान से संबंधित इतिहासकार यह बताते हैं कि दर्शन शास्त्र, विज्ञान और गणित का निर्माण कारीगरों और हस्तशिल्पियों द्वारा व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए किए गए विकास के रूप में हुआ न कि उनसे अलग किया गया

असंगठित क्षेत्र के बारे में आमतौर पर सोचा जाता है कि इसमें अधिकतर अकुशल या अल्प कुशल श्रमिक कार्य करते हैं। असंगठित क्षेत्रों के उद्यमों के राष्ट्रीय आयोग (एनसीईयूएस) ने भी यही स्थिति मानी है कि असंगठित कार्यबल का विशाल भाग अकुशल है (सेनगुप्ता व अन्य, 2009:3)। यह निष्कर्ष दो अनुभवजन्य तथ्यों पर निर्भर करता है: असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों में औपचारिक शिक्षा और प्रशिक्षण का निम्न स्तर, और इस क्षेत्र में प्रचलित कम मजदूरी के साथ ही कम उत्पादकता। अपने इस लेख में मैं इन दोनों ही परिप्रेक्ष्यों पर निकट से विचार करूंगा। इस मुद्दे पर अधिकांश नीति और शैक्षणिक दृष्टिकोण के विपरीत, मेरा दावा है कि ज्ञान हस्तांतरण और कौशल के गठन के दृढ़-स्थापित (हालांकि उचित तरह से न समझे गए) प्रतिष्ठानों के साथ ही अनौपचारिक क्षेत्र में ज्ञान का एक विशाल भंडार मौजूद है। इस मुद्दे पर प्रकाशित अध्ययनों के अतिरिक्त, यह निबंध लघु उद्योग की जनगणना के अनुभवजन्य आंकड़ों की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है, जो बनारस के बुनकरों व खाद्य विक्रेताओं और मुंबई के मार्गों पर विक्रय करने वालों के बीच कार्य के अनुभवों पर आधारित हैं।

विश्व बैंक और विश्व बौद्धिक संपदा संगठन जैसे प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संस्थान भी हाल ही में *पारम्परिक और स्वदेशी ज्ञान* की दिशा में गंभीरता से संलग्न हुए हैं, जिनके बारे में माना जाता है कि उनके पास एक विश्वदृष्टि और ज्ञानवाद के साथ ही ज्ञान उत्पादन संस्थाएं और आधुनिक ज्ञान से अलग हस्तांतरण की क्षमता है। इस मामले में विशाल साहित्य सामने आया है, जो जैव विविधता, कृषि वानिकी, पारिस्थितिकी, औषधि, शिल्प आदि के ज्ञान भंडार का विश्लेषण और वर्णन करता है, जिसका निर्माण दुनियाभर के किसानों, कामगारों, महिलाओं और स्वदेशी लोगों द्वारा सदियों से किया गया है (बसोले 2012)। ये वही लोग हैं, जो अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में कार्य करते हैं। हालांकि, अनौपचारिक क्षेत्र के विश्लेषण के लिए *पारम्परिक और स्वदेशी ज्ञान* प्रतिमान को पर्याप्त तौर पर अभिनियोजित नहीं किया गया है। ऐसा शायद इसलिए हुआ है कि असंगठित श्रमिक और उद्यमी न केवल कृषि और हस्तशिल्प के क्षेत्र में पाए जाते हैं, बल्कि खाद्य, कपड़ा, परिधान, प्लास्टिक, धातु, मशीनरी, निर्माण और सेवा क्षेत्र जैसे विविध उद्योगों में भी पाए जाते हैं, जो अक्सर आधुनिक तकनीक का उपयोग करते हैं और पारम्परिक उद्योग के लेबल में सही नहीं बैठते। न ही वे स्वदेशी लोगों के तौर पर कार्य करने वाले माने जा सकते हैं। सहस्रबुद्धे एवं सहस्रबुद्धे (2001) ने इसके लिए *लोकविद्या* या लोगों का ज्ञान, परिभाषा का प्रस्ताव किया है, जिसमें ऐसे लोगों का कौशल शामिल है, जो औपचारिक रूप से शिक्षित या प्रशिक्षित नहीं हैं। बल्कि वह इन्हें ज्ञान पद्धति और मूल्य प्रणाली में शामिल करने के लिए इससे भी परे जाते हैं। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की कल्पना के अनुसार भारत को ज्ञान समाज में परिवर्तित करने के लिए, हमें देश के विशाल बहुसंख्य श्रमजीवी वर्ग द्वारा उपयोग में लाए जा रहे लोकविद्या उत्पादन की पहचान और अध्ययन की दिशा में अच्छी तरह से कार्य करना होगा।

लेखक अमेरिका के बोस्टन स्थित यूनिवर्सिटी आफॅ मैसाचुसेट्स के अर्थशास्त्र विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। वह विकास अर्थशास्त्र तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र जैसे विषय पढ़ाते हैं। गांधीजी के आर्थिक विचार, अर्थशास्त्र एवं पारंपरिक ज्ञान, गरीबी और असमानता, अनौपचारिक तथा कुशल क्षेत्रों की राजनितिक अर्थव्यवस्था आदि उनकी रुचि के शोध विषय हैं। ईमेल: abasole@gmail.com

मजदूरी, उत्पादकता और कौशल के मध्य

असंगठित क्षेत्र में कम मजदूरी की व्यापकता और कम उत्पादकता का इस्तेमाल अक्सर अल्प कौशल-आधार के सबूत के तौर पर किया जाता है। वास्तव में, कौशल, उत्पादकता और पारिश्रमिक के मध्य पेचीदा संबंध है और यह संस्थागत और संरचनात्मक कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है। भारत जैसे विकासशील अर्थ व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक यथार्थ, अधिशेष श्रम का अस्तित्व है। संगठित क्षेत्र से बहुसंख्य श्रमजीवी के अपवर्जन का ही नतीजा है, उत्पाद बाजार में नौकरियों की कमी के कारण स्वव्यवसाय शुरू करने के लिए बाध्य, अत्यन्त लघु-उद्यमियों और असंगठित श्रम बाजार के श्रमिकों के मध्य जबरदस्त प्रतिस्पर्धा। इसलिए अनुसंधान का एक घटक, इस बात की जांच करना भी है कि क्या संगठित - असंगठित आय का अंतर, सिर्फ अवलोकित श्रमिक विशेषताओं (जैसे कौशल) के कारण ही है या प्रतिष्ठानों के औसत आकार, उत्पाद बाजार में प्रतिस्पर्धा के स्तर और पूंजी-श्रम अनुपात जैसे संरचनात्मक कारकों की वजह से भी है। इसके अलावा, चूंकि उत्पादकता की माप जैसे कि प्रति श्रमिक मूल्य-वर्धन, बाजार की कीमतों पर निर्भर है और उत्पाद बाजार में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा कीमतों को कम रखने के लिए दबाव डालती है, इसका तात्पर्य है कि अधिक प्रतिस्पर्धी बाजारों के प्रतिष्ठान, बाजारों की शक्ति का लाभ उठाने वाले प्रतिष्ठानों की बनिस्बत कम उत्पादक प्रतीत होते हैं।

एक दूसरा जटिल कारक है, एक ऐसी अर्थव्यवस्था में पारिश्रमिक से कौशल या अन्य श्रमिक विशेषताओं का अनुमान लगाना, जिसमें अधिशेष श्रमिक, यहां तक कि कुशल श्रमिक भी कम मोल-भाव की क्षमता के कारण कम मजदूरी पा सकते हैं (नोरिंगा 1999 / लाएबॅल एंड रॉय 2004)। इसके अतिरिक्त, उत्पादकता में वृद्धि नियोक्ताओं को अधिक मुनाफे के रूप में हासिल होती है या यदि उत्पाद बाजार खरीददारों के बजाए श्रमिकों के लिए कम कीमतों के तौर पर अधिक प्रतिस्पर्धी है (हाइंज़ 2006)। मिसाल के लिए, बनारस में बुनकर उद्योग और पॉवरलूम, हथकरघा से दस गुना अधिक उत्पादक हैं, लेकिन दोनों में प्रति घंटा मजदूरी लगभग समान है (बसोले 2014)।

ज्ञान क्या है?

अकुशल के रूप में अनौपचारिक श्रमिकों की धारणा सिर्फ ऊपर उल्लिखित आर्थिक कारकों पर ही निर्भर नहीं है। प्रतिष्ठा या विभिन्न प्रकार के ज्ञान से जुड़े मूल्य जैसे सामाजिक पहलू और किसकी गणना ज्ञान के रूप में होती है, जैसे दार्शनिक कारक भी महत्वपूर्ण हैं।

मिसाल के लिए, अनौपचारिक क्षेत्र मे अधिक प्रतिनिधित्व रखने वाले निचली जाति के श्रमिकों और महिलाओं के ज्ञान को पारम्परिक तौर पर कम आंका गया है (इलियाह 2009)।

उत्पादकता की माप जैसे कि प्रति श्रमिक मूल्य-वर्धन, बाजार की कीमतों पर निर्भर है और उत्पाद बाजार में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा कीमतों को कम रखने के लिए दबाव डालती है, इसका तात्पर्य है कि अधिक प्रतिस्पर्धी बाजारों के प्रतिष्ठान, बाजारों की शक्ति का लाभ उठाने वाले प्रतिष्ठानों की बनिस्बत कम उत्पादक प्रतीत होते हैं।

एनसीईयूएस की टिप्पणी है कि महिलाओं द्वारा किए गए कार्यों को 'कम कौशल' के रूप मे आंका गया हो सकता है, भले ही वे असाधारण प्रतिभा और वर्षों अनौपचारिक प्रशिक्षण में संलग्न रही हों (सेनगुप्ता व अन्य .2007 : 84)।

कपड़ा और सिरामिक उद्योग से इसकी मिसाल मिलती है, जहां महिलाएं कुशल श्रम कार्य करती हैं (जैसे- कढ़ाई या मिट्टी की तैयारी), लेकिन वह सबसे कम पारिश्रमिक पाने वाले श्रमिकों में से एक हैं (पूर्वोक्त)। बसोले बताते हैं कि बनारस में महिला कढ़ाई मजदूर पूरा एक दिन काम करने के एवज में सिर्फ 25-30 रुपये की नगण्य-सी कमाई करती हैं। व्यापारी और यहां तक कि महिलाएं स्वयं इस आधार पर इसे जायज ठहराती हैं कि उन्हें उस कार्य के लिए पारिश्रमिक दिया गया है, जिसमें ऐसी कुशलता की आवश्यकता होती है जो महिलाओं में 'स्वाभाविक' तौर पर होती है और वह इस कार्य को अपने 'खाली समय' में करती हैं।

आधिकारिक सर्वेक्षण, जिनमें अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के ज्ञान के आधार की पहचान करने का प्रयास किया गया, आम तौर पर अपर्याप्त हैं क्योंकि उन्हें लोकविद्या को अधिकृत करने के लिए डिजाइन नहीं किया गया है। लघु उद्योगों की तीसरी और चौथी अखिल भारतीय जनगणना (भारत सरकार 2004) में प्रतिष्ठानों से उनके तकनीकी ज्ञान के स्रोतों के बारे में जानकारी मांगी गई। तालिका 1 में दिखाया गया है कि अपंजीकृत (यानी असंगठित) प्रतिष्ठानों का लगभग 90 प्रतिशत दोनों ही वर्ष 'कोई स्रोत नहीं' की अवशिष्ट श्रेणी में आया। चूंकि अधिकांश प्रतिष्ठान, चाहे वह कितने ही छोटे क्यों न हों, तकनीकी ज्ञान के कुछ कोष के साथ काम करते हैं और वे भी स्रोत-आधार या बाजार की मांग में परिवर्तन के आधार पर नवाचार कर सकते हैं (चाहे कितना वृद्धिशील और छोटा हो), सर्वेक्षण यह समझने में मदद नहीं करता कि ज्ञान कैसे अनौपचारिक क्षेत्र में कार्य करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इसे शिल्पकारों और श्रमिकों के 'आंतरिक' (इन-हाउस) ज्ञान, उनके अनौपचारिक नेटवर्क और अपनी जरूरतों के मुताबिक औपचारिक क्षेत्र के ज्ञान की नकल या अनुकूलन की उनकी क्षमता को हस्तगत करने के लिए परिकल्पित नहीं किया गया है।

तालिका 1 : अपंजीकृत लघु उद्योग क्षेत्र में तकनीकी जानकारी का स्रोत

स्रोत	2001	2007
विदेश में	0.67	0.80
घरेलू सहभागिता	5.58	2.11
घरेलू अनु.एवं विकास	4.84	3.22
कोई नहीं	88.91	92.83

स्रोत: *तीसरी लघु उद्योग गणना, 2000-01 और चौथी एमएसएमई जनगणना, 2006-07*

नवीनतम एनएसएस रोजगार-बेरोजगारी सर्वेक्षण (2011-12) में पाया गया कि 15 वर्ष से अधिक आयु के 70 प्रतिशत ग्रामीण और 43 प्रतिशत शहरी पुरुषों की सामान्य शिक्षा माध्यमिक स्तर से कम है (जबकि इसी वर्ग में महिलाओं का प्रतिशत 83 और 55 है)। कार्यबल में रोजगारोन्मुखी कौशल के लिए अन्य प्रकार के अधिक प्रासंगिक प्रशिक्षण और भी कम हैं। ईयूएस के आंकड़े यह भी दिखाते हैं कि कार्यबल के 89 प्रतिशत को कोई औपचारिक या अनौपचारिक तकनीक या व्यावसायिक प्रशिक्षण हासिल नहीं है (बसोले 2012)। इसके और एनएसएस के इसी तरह

के आंकड़ों के आधार पर एनसीईयूएस ने यह निष्कर्ष निकाला है कि '15 वर्ष के ऊपर की आबादी के लगभग 90 प्रतिशत के पास कोई कौशल नहीं था' (सेनगुप्ता व अन्य 2009:191)।

हम इस निष्कर्ष को कैसे समझ सकते हैं? मेरा यहां सुझाव है कि असंगठित क्षेत्र में कौशल अर्जन प्रक्रिया के साथ ही साथ ज्ञान उत्पादन को इस तरह के रूढ़िवादी सर्वेक्षणों के जरिए हस्तगत करना मुश्किल है, जो इन प्रक्रियाओं को वर्षों की स्कूली शिक्षा, एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेने और प्रमाण पत्र प्राप्त करने इत्यादि के समान बनाते हैं। ये अक्सर असंगठित क्षेत्र में अनुपस्थित होते हैं। ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया के बजाए यह आजीविका कमाने के साथ जुड़ी हुई है। ऐतिहासिक तौर पर, संगठित रूप से अर्जित शैक्षिक और नीति कार्य की शिक्षा के प्रति एक पूर्वाग्रह रहा है।

बनारस के बुनकर अक्सर अनौपचारिक और औपचारिक शिक्षा के बीच श्रम बाजार द्वारा रखे गए विभिन्न मूल्यांकन के विपरीत विरोधाभास पैदा करते हैं, जिन्होंने अनौपचारिक प्रशिक्षण में उतने ही साल बिताए, जितने एक औपचारिक डिप्लोमा या प्रमाण पत्र हासिल करने में लगते हैं

इसके अलावा, कुछ असंगठित श्रमिकों में यह ज्ञान पदानुक्रम स्थित होता है और यहां तक कि वह अपने इस ज्ञान को शिक्षा और प्रशिक्षण के परिणाम के रूप में नहीं देखते, बल्कि आम तौर पर कार्य करते समय अर्जित मानते हैं (जो कि आधिकारिक सर्वेक्षण में उनकी नकारात्मक प्रतिक्रिया को समझाता है)। इस बारे में एक आम भावना बनारस के एक मिठाई-विक्रेता ने मुझसे व्यक्त की, जब उनसे यह पूछा गया कि उनके उद्योग में श्रमिक कैसे यह कौशल हासिल करते हैं। 'इसमें अध्ययन करने लायक ऐसा कुछ भी नहीं है।' उसी समय, उनमें यह जागरूकता भी हो सकती है कि मौजूदा पदानुक्रम अन्यायपूर्ण है। बनारस के बुनकर अक्सर अनौपचारिक और औपचारिक शिक्षा के बीच श्रम बाजार द्वारा रखे गए विभिन्न मूल्यांकन के विपरीत विरोधाभास पैदा करते हैं, जिन्होंने अनौपचारिक प्रशिक्षण में उतने ही साल बिताए, जितने एक औपचारिक डिप्लोमा या प्रमाण पत्र हासिल करने में लगते हैं (बसोले 2012)।

यह विचार कि कार्य से हासिल ज्ञान औपचारिक शिक्षा से हीन नहीं है, इतिहास से लेकर विज्ञान और मनोविज्ञान से लेकर ज्ञान प्रबंधन के विविध क्षेत्रों में व्यापक स्वीकृति अर्जित कर रहा है। विज्ञान से संबंधित इतिहासकार यह बताते हैं कि दर्शन शास्त्र, विज्ञान और गणित का निर्माण कारीगरों और हस्तशिल्पियों द्वारा व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए किए गए विकास के रूप में हुआ न कि उनसे अलग किया गया (कोनर 2005)। ठेठ कारीगर, शिल्प के दैनिक व्यवहार में सन्निहित विज्ञान और तकनीकी ज्ञान से हर समय जुड़े रहते थे। ज्ञान प्रबंधन के क्षेत्र में 'व्यवहारिक ज्ञान' परिपेक्ष्य में बार्नेट (2000:17) आगे कार्य को ज्ञान उत्पादन के क्षेत्र के तौर पर उल्लिखित करते हैं और यह दावा रखते हैं कि ज्ञान तभी प्रामाणिक है यदि इसे कार्य में परिणत किया जा सके और कार्य ज्ञान परीक्षण का एक साधन है। न सिर्फ कार्य, बल्कि खेल से भी सीखा जा सकता है। मिसाल के तौर पर बुनकर परिवारों के बच्चे जब उनके पिता/भाई बुनाई का काम कर रहे होते हैं, ताने पर शटल से खेलते रहते हैं या कार्यशाला में महज घूमते रहते हैं काम के स्थान और आवाजों के अभ्यस्त हो जाते हैं (वुड 2008)। इस सैद्धांतिक नजरिए का इस्तेमाल ज्ञान उत्पादन की गतिशीलता और अनौपचारिक क्षेत्र में प्रसार को समझने के लिए किया जा सकता है।

लोकविद्या प्रतिष्ठान

प्रशिक्षुता के अर्थशास्त्र और काम पर तालीम पर काफी कम साहित्य उपलब्ध हैं यहां तक कि अगर असंगठित क्षेत्र की बात करें तो ऐसी व्यवस्था, औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के मुकाबले कई गुणा ज्यादा लोगों के काम आती है। भले ही समकालीन कारीगरी प्रतिष्ठानों के सर्वेक्षण प्रशिक्षुता और कौशल स्थानांतरण के अन्य 'वंशानुगत व्यवस्थाओं' के महत्व को प्रकट करते हैं (पार्थसारथी 1999), दुर्लभ अपवादों के साथ (बिस्वास एवं राज 1996), अधिकांश विकास अर्थशास्त्रियों ने अनौपचारिक उद्योगों का अध्ययन करते समय कौशल अर्जन की पड़ताल को छोड़ दिया है। ऐसे प्रतिष्ठानों और उनके द्वारा प्रदान कौशल का अध्ययन करने में

प्रशिक्षण या सीखने की मात्रा आसानी से नापी नहीं जा सकती है और इस बारे में कोई औपचारिक प्रलेखन मौजूद नहीं है। इसमें कोई शुल्क नहीं है, प्रशिक्षुता के दौरान मजदूरी, प्रशिक्षक और प्रशिक्षु के समय की अवसर लागत जैसी निहित लागत आती है।

समस्या यह नहीं है कि वे असंरचित या अव्यवस्थित हैं, बल्कि हमारी जांच के तरीके उपयुक्त नहीं हैं। अनौपचारिक प्रशिक्षण प्रणालियों का अध्ययन करने में मुख्य बाधा यह है कि वे हमारे सामान्य जीवन और कार्य के साथ भली प्रकार एकीकृत हैं। उसमें हमेशा ही एक ज्ञात स्थान या समय नहीं होता, जहां सीखना होता है। प्रशिक्षण या सीखने की मात्रा आसानी से नापी नहीं जा सकती है और इस बारे में कोई औपचारिक प्रलेखन मौजूद नहीं है। इसमें कोई शुल्क नहीं है, हालांकि प्रशिक्षुता के दौरान मजदूरी और प्रशिक्षक और प्रशिक्षु के समय की अवसर लागत जैसी निहित लागत आती है। यह प्रक्रिया परिवार, जाति, लिंग और समुदायिक रिश्तों के साथ जुड़ी हुई है, जिन्हें कि 'आर्थिकेतर' माना जाता है। इसके लिए एक नृवंशविज्ञान (एंथोग्राफिक) दृष्टिकोण आवश्यक है, जिसे अपनाने में अर्थशास्त्री आम तौर पर संकोच करते हैं। इसलिए इस तरह के संस्थानों के बारे में हमारा अधिकांश ज्ञान आर्थिक मानव विज्ञानियों से आता है (बारबर 2004 / बसोले 2012)।

जब हम असंगठित क्षेत्र को, इसके ज्ञान संस्थानों को समझने के नजरिए से देखने का प्रयास करते हैं (यथा कौशल अर्जन, नवाचार, प्रतिष्ठानों के मध्य ज्ञान को साझा करना), तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस क्षेत्र के प्रति रूढ़िवादी धारणा अकुशल मजदूरों के लिए कुल मिलाकर गलत है। साक्षात्कारों से पता चलता है कि असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों ने उतने ही लंबे समय के लिए प्रशिक्षण लिया है, जितना समय औपचारिक प्रमाणपत्र या डिग्री प्राप्त करने में लगता है। परिवार आधारित और इससे इतर प्रशिक्षुता जो कुछ महीनों से लेकर कुछ वर्षों तक हो सकती है, पूरे क्षेत्र में आम है। औपचारिक शिक्षा की तुलना में यहां प्रवेश के लिए वित्तीय बाधाएं अक्सर कम हैं (हालांकि जाति या लिंग के मानदंड जैसी संस्थागत बाधाएं अधिक हो सकती हैं)। प्रशिक्षण की इन पद्धतियों को अच्छी तरह से विकसित

और संरचित किया जा सकता है जो श्रमिकों और उनके प्रशिक्षकों के व्यक्तिगत अनुशासन और जानने की इच्छा के महत्व को रेखांकित करते हैं। नियोक्ता अपने कुशल श्रमिकों को संरक्षित करते हैं क्योंकि अधिकांश ज्ञान औपचारिक रूप से की जा रही प्रक्रियाओं और दिनचर्यायों के बजाए श्रमिकों में सन्निहित होता है। श्रमिक ऐसे रोजगार की तलाश मे रहते हैं, जहां नया कौशल सीखा जा सकता हो। श्रमिक न केवल उत्पादन उन्मुख कौशल, बल्कि संचार की तरह के मृदु (सॉफ्ट) कौशल भी अर्जित कर रहे हैं। बिड़ला और बसोले (2013) ने मुंबई में सड़क-विक्रेताओं, टैक्सी चालकों और यात्रा गाइडों की अंग्रेजी भाषा अर्जन की प्रक्रिया को समझने के लिए उनका साक्षात्कार लिया। ये श्रमिक न सिर्फ अपने वरिष्ठों से सीखते हैं, बल्कि सार्वजनिक सूचना-पट्ट और होर्डिंग, ग्राहक संपर्क और नए मोबाइल उपकरण और अन्य प्रकार की प्रौद्योगिकी, आदि सभी इनके कौशल विकास में योगदान देते हैं। जैसा कि मुंबई के प्रसिद्ध लिंकिंग रोड की एक दुकान का मालिक इसका वर्णन करता है कि लिंकिंग रोड ही इनका स्कूल बन जाता है। बारबर (2004) प्रवेश की कम बाधाओं, नवाचार और अनुकूलन पर जोर जैसी शिक्षा की ताकत की पहचान अक्सर संसाधनों की खराब स्थिति और निहित ज्ञान के विकास के तौर पर करता है। उसके अध्ययन में जो दोष नजर आते हैं, वे अपर्याप्त सैद्धांतिक समझ और प्रतिबिंब, नई तकनीकों और सुरक्षा अभ्याओं को अपनाने के प्रति उनके हठ के कारण थीं।

अंत में, हालांकि इस पर विस्तृत चर्चा संभव नहीं है, मैं असंगठित क्षेत्र में प्रतिष्ठान-स्तर के नवाचार की पड़ताल के महत्व की ओर इंगित करना चाहूंगा। यहां तक कि सड़क के किनारे नाश्ता और मिठाई बेचने वाले जैसे छोटे अनौपचारिक मालिक अपने उत्पादों और उनकी प्रतिष्ठा पर गर्व करते हैं। उनके मेन्यू में अक्सर नई वस्तुएं दिखाई देती हैं। जैसे कि कारीगरी उद्योग में नवाचार, वृद्धिशील और रूढ़िवादी है और व्यावसायिक भेदों की ध्यानपूर्वक सुरक्षा की जाती है क्योंकि इनमें बौद्धिक संपदा अधिकार मौजूद नहीं है (भोसले 2014)। लोकविद्या लगातार बढ़ती, विकसित, अनुकूलित और परिवर्तित होती है। हम कारीगरी उद्योग के आधुनिक उद्योगों के रूप में विकास के बारे में क्या जानते हैं, जैसे पावरलूम का मामला भी तकनीकी परिवर्तन को संभव बनाने में परंपरागत संस्थाओं के महत्व को रेखांकित करता है (हाइंस 2012)। भारत में नवाचार पर राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की रिपोर्ट (भारत सरकार 2007) कुछ एसएमई के साक्षात्कार के जरिए इस समस्या को संबोधित करता है, लेकिन अभी इस दिशा में बहुत अधिक काम किए जाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

पूर्व के तर्कों को इस संकेत के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए कि औपचारिक स्कूली शिक्षा महत्वहीन है या संगठित क्षेत्र में मौजूद ज्ञान संस्थाएं पर्याप्त हैं। एनसीईयूएस के लिए प्रश्न यह है कि 'क्या अनौपचारिक में पारंपरिक पद्धतियों से काम के दौरान कौशल अर्जन की मौजूदा प्रणाली के कार्य का तरीका पर्याप्त है?' (सेनगुप्ता व अन्य् 2009:9), जवाब 'नहीं' होना चाहिए। भली प्रकार से रूपांकित और सूचित नीति, कौशल मे सुधार, पारंपरागत व्यवसायों में आधुनिक तकनीक का संयोजन करने और आय वृद्धि के क्षेत्र में व्यापक बदलाव ला सकती है लेकिन जैसा कि एनसीईयूएस ने भी बताया है कि सरकार द्वारा चलाई जा रही व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रम असंगठित क्षेत्र में नौकरी पाने का प्रयास करने वालों की मदद करने में सफल नहीं साबित हुए हैं (पूर्वोक्त, पृष्ठ 10)। ये संस्थान असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों और प्रतिष्ठानों से असंबद्ध बने हुए हैं। इसका विकल्प है मौजूदा असंगठित संस्थानों को इस क्षेत्र से भागीदारी के जरिए ही तैयार किया जाए। अन्य विकासशील देशों से भी इसकी मिसालें मिलती हैं, जैसे नाइजीरिया की राष्ट्रीय मुक्त शिक्षुता योजना (एनओएएस) और एनसीईयूएस द्वारा चर्चा की गई अन्य मिसालें (पूर्वोक्त, पेज 40-41) इस संबंध में उपयोगी हो सकती हैं। इस क्रम में, आगे असंगठित क्षेत्र द्वारा संचालित प्रणाली के अनुकूल दृष्टिकोण का उपयोग करके, ज्ञान उत्पादन, स्थानांतरण, नवाचार आदि में अनुसंधान करने की जरूरत है। अंत में, नीतियों से परे जाकर, ऐसे राजनीतिक आंदोलन की आवश्यकता है, जो औपचारिक ज्ञान के साथ लोकविद्या के लिए गरिमा और बराबरी के दर्जे की मांग करे। ❑

संदर्भः

• **जे बारबर (2004):** इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ट्रेनिंग एंड डेवलपमेंट, 8(2), 128-139 • **आर बार्नेट (2000):** वर्किंग नॉलेज इन रिसर्च एंड नॉलेज एट वर्क, रॉल्टे, न्यूयार्क, 15-31 • **ए बसोले (आगामी):** स्पेयर चेंज फॉर स्पेयर टाइम? होमवर्किंग वुमेन इन बनारस, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस • **ए बसोले(2014):** यूमास-बोस्टन वर्किंग पेपर नंबर 2014-07 • **ए बसोले (2012):** अप्रकाशित पीएचडी शोध प्रबंध, यूनिवर्सिटी ऑफ मैसाचुसेट्स, एमहर्स्ट, एमए • **एस.बिरला एवं ए बसोले (2013):** शोध परियोजना, अर्बन एस्पिरेशन इन ग्लोबल सिटीज़, मैक्स प्लैंक इंस्टीट्यूट, जर्मनी, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई • **पी.के.बिस्वास एवं ए.राज (1996):** स्किल फॉर्मेशन इन द इंडिजीनियस इंस्टीट्यूशंसः केसेज़ फ्रॉम इंडियाश इन स्किल एंड टेक्नालॉजिकल चेंजः सोसाइटी एंड इंस्टीट्यूशंस इन इंटरनेशनल पर्सपेक्टिव, हर-आनंद, नई दिल्ली, 73-104 • **सी डी कोनर (2005):** पीपुल्स हिस्ट्री ऑफ साइंसः माइनर्स, मिडवाइव्स एंड लो मैकेनिक्स, नेशन बुक्स • **जे.एम.फिंगर एवं पी.ई.शुलर (2004):** पुअर पीपुल्स नॉलेजः प्रोमोटिंग इंटलेक्चुअल प्रॉपर्टी इन डेवलपिंग कंट्रीज़, विश्व बैंक एवं ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस • **भारत सरकार (2004):** लघु उद्योग की तीसरी अखिल भारतीय जनगणना 2001-2002, विकास आयुक्त (एसएसआई) लघु उद्योग मंत्रालय • **भारत सरकार (2006):** भारत में रोजगार एवं बेरोजगारी की स्थिति 2004-05, एनएसएस 61 वें दौर की रिपोर्ट संख्या 515 • **भारत सरकार (2007):** भारत में नावाचार, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग, नई दिल्ली • **भारत सरकार (2012):** सूक्ष्म, लघु और मधयम उद्यमों की चौथी अखिल भारतीय जनगणना 2006-2007, विकास आयुक्त लघु उद्योग मंत्रालय • **भारत सरकार (2014):** भारत में रोजगार और बेरोजगारी की स्थिति 2011-12, एनएसएस 68 वें दौर की रिपोर्ट संख्या 554 • **ई.एल. ग्रॉसेन (1991):** ए जर्नल ऑफ इकनॉमी एंड सोसाइटी, 30(3), 350-381 • **ए.के. गुप्ता (2007):** आईआईटी-अहमदाबाद वर्किंग पेपर • **डी.ई. हाएन्स (2012):** स्मॉल टाउन कैपिटलिज़्म इन वेस्टर्न इंडियाः आर्टीशंस, मर्चेन्ट्स एंड द मेकिंग ऑफ द इनफार्मल इकनॉमी, 1870-1960, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, यूके • **जे. हेन्ज (2006):** कैम्ब्रिज जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स 30, 507-520 • **के. इलैया (2009):** पोस्ट हिन्दू इंडिया : ए डिसकोर्स ऑन दलित-बहुजन, सोशियो-स्पिरिचुअल एंड साइंटिफिक रिवोल्यूशन। सेज पब्लिकेशन, इंडिया • **पी. नॉरिंगा (1999):** आर्टीसन लेबर इन द आगरा फुटवियर इंडस्ट्रीः कंटीन्यूड इनफार्मिटी एंड चेंजिंग थ्रेट्स, 33(1-2), 303-328 • **ए.बी. कूगर एवं एल.एच. समर्स (1988):** इकोनोमैट्रिकाः जर्नल ऑफ द इकोनोमैट्रिक सोसाइटी, 259-293 • **एम. लीबेल एवं टी. रॉय (2004):** विश्व बैंक एवं ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 73-104 • **आर. पार्थसारथी (1999):** जर्नल ऑफ इन्टरप्रिन्योरशिप 8 (1): 45-65 • **एस. सहस्रबुद्धे एवं सी. सहस्रबुद्धे (2001):** लोकविद्या दृष्टिकोण, लोकविद्या प्रतिष्ठा अभियान, वाराणसी • **ए. सेनगुप्ता, आर.एस. श्रीवास्तव, के. कन्नन, वी. मल्होत्रा, बी. युगान्धर एवं टी. पापोला (2007):** असंगठित क्षेत्रें के उद्यमों के लिए राष्ट्रीय आयोग, नई दिल्ली • **ए. सेनगुप्ता, आर.एस. श्रीवास्तव, के. कन्नन, वी. मल्होत्र, बी. युगान्धर एवं टी. पापोला (2009):** असंगठित क्षेत्रों के उद्यमों के लिए राष्ट्रीय आयोग, नई दिल्ली • **डब्ल्यू.डब्ल्यू. वुड (2008) मेड इन मैक्सिकोः** ज़ैपोटिक वीवर्स एंड द ग्लोबल एथनिक आर्ट मार्केट, इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस • **आर. वॉएटेक, पी. श्रॉफ-मेहता एवं पी.सी. मोहन (2004):** लोकल पाथवेज़ टू ग्लोबल डेवलपमेंट। नॉलेज एंड लर्निंग ग्रुप, आफ्रीका क्षेत्र, विश्व बैंक

उद्यमिता को प्रोत्साहन के साथ हो आर्थिक समावेशन

शिशिर कुमार

पूंजी के अभाव में बैंकों के खुद के बनाये मानकों पर खरा नहीं उतरने के कारण असंगठित क्षेत्र के उद्यमियों को ऋण के लिए भी लगातार जूझना पड़ता है और कई बार यह संघर्ष महाजनों/ साहूकारों के दर पर जाकर खत्म होता दिखता है। ऐसे में प्रधानमंत्री जन-धन योजना की शुरूआत उम्मीद की एक किरण जगाती है। हालांकि लगभग समान लक्ष्यों के साथ पिछली सरकार द्वारा लायी गयी 'स्वाभिमान' योजना बहुत सफल नहीं हुई थी लेकिन नई योजना में बदलाव को देखते हुए बेहतरी की उम्मीद की जा सकती है

सरकारी अधिकारी, कंपनी के प्रबंध निदेशक या फिर बैंक के लिपिक जैसे पदों पर बैठे व्यक्तियों के नाम आप जिस सम्मान की निगाह से देखते हैं, क्या आप की दृष्टि में वही स्थान नलसाज, केश काटने वाला, नौकर/बाई, ड्राइवर या फिर पड़ोस के किराने की दुकान पर काम करने वाले कर्मचारी के लिए है? शायद नहीं। कारण? आपमें से हर किसी का तर्क अलग-अलग होगा। हो सकता है कि आप में से किसी का जवाब विशिष्ट शैक्षणिक योग्यता हो, कोई बोली, आचार-व्यवहार को आधार बनाएगा या फिर किसी के लिए सामाजिक अंतर जवाब हो सकता है।

अब जरा गौर कीजिए। पहला समूह औपचारिक/संगठित अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व कर रहा है तो दूसरा अनौपचारिक/असंगठित अर्थव्यवस्था का। दोनों ही वर्ग सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी में बराबर-बराबर की हिस्सेदारी रखते हैं (नीलकंठ एवं शंकर) लेकिन बात जब नीतियों की आती है, समावेशन की आती है तो दोनों ही क्षेत्रों में बड़ा अंतर दिखता है। व्यवस्था की जितनी सक्रियता औपचारिक/संगठित क्षेत्र के लिए दिखती है, उतनी अर्थव्यवस्था के दूसरे क्षेत्र के लिए नहीं। इस अंतर की एक वजह अनौपचारिक/असंगठित अर्थव्यवस्था की स्पष्ट परिभाषा का अभाव है।

सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में परिभाषा देखें तो औपचारिक/संगठित अर्थव्यवस्था पंजीकृत आर्थिक इकाइयों को कहा जा सकता है जबकि अपंजीकृत आर्थिक इकाइयां अनौपचारिक/असंगठित अर्थव्यवस्था में शामिल होंगी। जाने माने अर्थशास्त्री सी पी चंद्रशेखर और जयति घोष अपने एक लेख में कहते हैं कि तकनीक, रोजगार का आकार, कानूनी स्थिति और संगठनात्मक ढांचे के आधार पर संगठित-असंगठित और औपचारिक-अनौपचारिक क्षेत्र के बीच सीमा खींची गयी है।

अस्पष्ट परिभाषा का असर वृहत (Macro) और सूक्ष्म/व्यक्ति (Micro) दोनों स्तर पर स्पष्ट दिखता है। वैसे तो यह असर कई तरीकों का है, लेकिन सबसे अधिक वित्तीय समावेशन को लेकर है। सामान्यतः वित्तीय समावेशन का अर्थ बिना किसी भेदभाव के पूरी आबादी को वित्तीय सुविधा और सुरक्षा मुहैया कराना और वित्तीय समझ सुनिश्चित करना है। इस बारे में पूर्ववर्ती सरकार द्वारा गठित रंगराजन समिति (2008) ने वित्तीय समावेशन पर अपनी रिपोर्ट में वित्तीय समावेशन की परिभाषा कुछ इस तरह दी: *असुरक्षित समूहों जैसे कमजोर वर्गों और निम्न आय वर्गों द्वारा जब भी आवश्यकता हो, कम लागत पर वित्तीय सेवाओं और समय से तथा पर्याप्त ऋण तक पहुंच को सुनिश्चित करने की प्रक्रिया।*

अनौपचारिक/असंगठित अर्थव्यवस्था में वित्तीय समावेशन को समझने के लिए पूरे क्षेत्र को दो हिस्सों में बांटना होगा - उद्यम और रोजगार।

असंगठित क्षेत्र में औद्योगिक इकाइयां

इस संदर्भ में सबसे पहले बात वृहत स्तर की। अनौपचारिक क्षेत्र में वृहत स्तर को समझने के लिए सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योगों की वर्तमान स्थिति को जानना होगा। यह अर्थव्यवस्था का वो क्षेत्र है जो बड़े पैमाने पर सकल घरेलू उत्पाद में न केवल उत्पादन के स्तर पर,

लेखक, आर्थिक मामलों के जानकार पत्रकार हैं। संप्रति 'द हिन्दू बिजनेस लाइन' में डिप्टी एडिटर हैं। आर्थिक नीतियों व संसदीय गतिविधियों पर नियमित लेखन। करीब दो दशक से पत्रकारिता में, इसमें एक दशक से ज्यादा समय टीवी समाचार चैनलों में बीता। ईमेल: bblshishir@gmail.com

बल्कि निर्यात और रोजगार के मामले में योगदान करता है, फिर भी वित्तीय समावेशन के मामले में भारी उपेक्षा का शिकार हुआ है। बीते दिनों एक सम्मेलन में रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर आर गांधी ने कहा कि 2011-12 के सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र की हिस्सेदारी 12 प्रतिशत रही। विनिर्माण के साथ निर्यात में

करीब 93 प्रतिशत इकाइयों का हाल कुछ इस तरह है कि उन्हें वित्त के लिए या तो खुद ही इंतजाम करना पड़ा या उनके पास किसी तरह की वित्तीय सुविधा थी ही नहीं। बड़े पैमाने पर दस्तावेजी जरूरतों को पूरी करने की शर्त इस क्षेत्र को बैंक से ऋण सुविधा मिलने में सबसे बड़ी बाधा है।

महत्वपूर्ण योगदान देने के साथ ये करीब 10 करोड़ लोगों को रोजी-रोटी मुहैया कराता है, शायद कृषि के बाद सबसे ज्यादा।

वित्त के मामले में हाल बुरा है। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम इकाइयों की चौथी गणना के हवाले से गांधी कहते हैं कि महज 5.2 प्रतिशत इकाइयों (पंजीकृत और गैर-पंजीकृत) को संस्थागत स्रोतों से पैसा मिला। करीब 93 प्रतिशत इकाइयों का हाल कुछ इस तरह है कि उन्हें वित्त के लिए या तो खुद ही इंतजाम करना पड़ा या उनके पास किसी तरह की वित्तीय सुविधा थी ही नहीं। बड़े पैमाने पर दस्तावेजी जरूरतों को पूरी करने की शर्त इस क्षेत्र को बैंक से ऋण सुविधा मिलने में सबसे बड़ी बाधा है, इसके साथ ही साख की कमी और गिरवी के लिए समुचित संसाधन का अभाव भी इन्हें संस्थागत स्रोतों से वित्तीय सहायता मिलने में दिक्कतें पैदा करती है।

इस विषय पर जाने माने अर्थशास्त्री और वित्तीय सलाहकार एस गुरुमूर्ति का अनुमान है कि निगमेतर क्षेत्र (Non Corporate Sector) हर वर्ष 6.28 लाख करोड़ रुपये की राशि अर्थव्यवस्था में जोड़ता है। उनके मुताबिक, असंगठित और कृषितर के इस क्षेत्र में 5.77 करोड़ उद्यमी जुड़े हैं जो लगभग 46 करोड़ लोगों को रोजगार दे रहे हैं जिनमें करीब 24 करोड़ स्व उद्यमी हैं। ऐसी उपलब्धियों के बावजूद गुरुमूर्ति का दावा है कि इस क्षेत्र के महज 4 प्रतिशत हिस्से को ही बैंक से मदद मिल पाती है।

यह क्षेत्र, बड़ी औद्योगिक इकाइयों के लिए सहयोगी का भी काम करता है लेकिन परेशानी तो तब होती है जब बड़ी औद्योगिक इकाइयां समय पर भुगतान नहीं करतीं। इसका असर छोटी इकाइयों की नकदी स्थिति पर पड़ता है, साथ ही बैंकों से मिले ऋण को सही समय पर चुका नहीं पातीं। नतीजा, बैंक ऐसी इकाइयों को ऋण देने में हिचकते हैं और उन्हें महाजन और साहूकारों से अत्यंत ही ऊंची ब्याज पर ऋण लेने के लिए विवश होना पड़ता है।

क्रेडिट स्विस के नीलकंठ मिश्रा और रवि शंकर लिखते हैं कि असंगठित आर्थिक गतिविधियां चूंकि कर नहीं चुकातीं, इसीलिए उन्हें बहुत ही सीमित तौर पर संगठित ऋण व्यवस्था से मदद मिल पाती हैं। क्रेंद्रीय सांख्यिकी संगठन के साथ अपनी बातचीत का हवाला देते हुए वो कहते हैं कि केवल 18 प्रतिशत छोटे उद्योगों को संगठित ऋण व्यवस्था का फायदा मिलता है।

क्या है समाधान?

सबसे पहले तो आवश्यकता इस बात की है कि ज्यादा से ज्यादा सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम को पंजीकरण कराने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। ऐसा होने पर सरकार और रिजर्व बैंक के लिए ऐसी उद्यमिता को समय पर, जरूरत के हिसाब से वित्तीय सहायता देने में मदद मिलेगी। वैसे भी रिजर्व बैंक के दिशानिर्देशों के अनुसार, प्राथमिकता के आधार पर दिए जाने वाले ऋण के मामले में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम को भी शामिल किया गया है।

दूसरा, बड़े उद्योगों में भुगतान से विलंब की समस्या से छुटकारा दिलाने के लिए सरकार ने दो महत्वपूर्ण कानून, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006, फैक्ट्री विनियमन अधिनियम, 2011 बनाए हैं। इन कानूनों के तहत सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों को बड़े उद्योगों से भुगतान मिलने की न केवल समय सीमा तय और देरी की स्थिति में दंडात्मक ब्याज का प्रावधान है, बल्कि भुगतान लेने के लिए एक अलग से व्यवस्था भी विकसित करने का प्रावधान है। अब आवश्यकता इस बात की है कि उद्यमों को इन कानून के बारे में समुचित जानकारी दी जाए। ये संभव हो सकेगा वित्तीय साक्षरता के जरिए, जो कि वित्तीय समावेशन का अंग है।

यहां पर दो नयी पहलों का जिक्र करना आवश्यक है। वित्त मंत्री ने 10 जुलाई के अपने बजट भाषण में सूक्ष्म, लघु और मझौले उद्यम के लिए औपचारिक वित्त के प्रवाह को बढ़ाने के बारे में सुझाव देने के लिए एक विशेष समिति बनाने का प्रस्ताव किया। ये समिति तीन महीने में अपनी रिपोर्ट दे देगी। इसके साथ ही वित्त मंत्री ने कहा कि छोटे बैंकों और अन्य विशिष्ट बैंकों को लाइसेंस तैयार करेगा। उन्होंने ये भी कहा - *आला हितों की पूर्ति करने वाले विशिष्ट बैंक, स्थानीय क्षेत्र के बैंक, भुगतान बैंक आदि की परिकल्पना छोटे कारोबारों, असंगठित क्षेत्र, निम्न आय वाले परिवारों, किसानों और प्रवासी कार्य बल की ऋण और प्रेषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए की गयी है।*

असंगठित क्षेत्र में रोजगार और श्रमिकों के लिए वित्तीय सुविधा

वैसे क्रेडिट स्विस के नीलकंठ और रविशकर का शोध कहता है कि अनौपचारिक/ असंगठित क्षेत्र कुल रोजगार में करीब 90 प्रतिशत की हिस्सेदारी रखता है, लेकिन राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के मुताबिक ये आंकड़ा 72 प्रतिशत है। हालांकि ये ध्यान रखना आवश्यक है कि सर्वेक्षण के आंकड़ों में फसल आधारित खेती बाड़ी को अलग रखा गया है जिससे कुल श्रमशक्ति का करीब आधा स्वत: ही बाहर हो जाता है। साथ ही ये सर्वेक्षण राष्ट्रीय स्तर पर चुने गये परिवारों के नमूने के आधार पर हैं।

क्रेडिट स्विस का शोध कहता है कि वित्त वर्ष 2011-12 के अंत में कुल श्रमिकों में से

दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई और बंगलुरू के रेलवे स्टेशन पर 760 लाइसेंसधारी कुलियों पर एक सर्वेक्षण किया गया। निष्कर्ष में पाया गया कि 31 प्रतिशत से भी ज्यादा कुलियों का परिवार कर्ज में डूबा है। इन परिवारों ने 75 प्रतिशत से भी ज्यादा कर्ज पारिवारिक खर्चों, बीमारी और शादी के खर्चों से निपटने के लिए लिया था।

नियमित मेहनताना पाने वाले सिर्फ 18 प्रतिशत हैं, बाकी या तो स्व-रोजगार में हैं या फिर अस्थायी श्रमिक। यहां तक कि नियमित मेहनताना पाने वाले सभी वेतनभोगी नहीं हैं, हो सकता है इन लोगों को मेहनताना किसी संविदा या कायदे कानून के मुताबिक नहीं दिया जा रहा हो। ऐसी स्थिति में श्रमिकों का एक बड़ा समूह संगठित वित्तीय व्यवस्था से वंचित रह जाता है।

एनएसएस का सर्वे कहता है कि ग्रामीण

और शहरी इलाकों में स्व-रोजगार पाने वाला करीब हर व्यक्ति अनौपचारिक क्षेत्र में है। अस्थायी श्रमिक के मामले मे 78 प्रतिशत और 81 प्रतिशत तथा नियमित मजदूरी/वेतन पाने वालों में 42 प्रतिशत और 40 प्रतिशत क्रमशः ग्रामीण इलाकों में और शहरी इलाकों में है।

यहां सबसे अहम बात ये है कि औसत दैनिक मजदूरी/वेतन जहां औपचारिक क्षेत्र में 401 रुपये है, वहीं अनौपचारिक क्षेत्र में सिर्फ 225 रुपये है। अगर नियोक्ता के घर पर काम करने वालों की बात करें तो ये रकम घटकर 127 रुपये रह जाती है। जाहिर-सी बात है कि इतनी कम रकम से श्रमिकों की दिक्कतें बढ़ेंगी। घर-परिवार और बीमारी के खर्चे ही नहीं, बल्कि बच्चों की पढ़ाई लिखाई या खुद का अपना छोटा-मोटा कारोबार चलाने के लिए भी ऋण का रास्ता अपनाने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। यही नहीं जब वो संगठित वित्तीय व्यवस्था से दूर रहेंगे, तो महाजन या साहूकार ही उनके लिए विकल्प होंगे।

परिचय और पते से जुड़े दस्तावेजों की कमी लोगों को बैंक से दूर रखती रही है। नतीजा ऋण की बात तो दूर, कल की अनिश्चितताओं से निपटने के लिए छोटी-छोटी जमा के लिए भी लोगों को प्रोत्साहित नहीं किया जा सका है।

इस बारे में श्रम मंत्रालय के अधीन श्रम ब्यूरो का सर्वेक्षण के नतीजों को जानना दिलचस्प है। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई और बंगलुरू के रेलवे स्टेशन पर 760 लाइसेंसधारी कुलियों पर एक सर्वेक्षण किया गया। निष्कर्ष में पाया गया कि 31 प्रतिशत से भी ज्यादा कुलियों का परिवार कर्ज में डूबा है। इन परिवारों ने 75 प्रतिशत से भी ज्यादा कर्ज पारिवारिक खर्चों, बीमारी और शादी के खर्चों से निपटने के लिए लिया था। सबसे खास बात ये है कि आधा कर्ज महाजन या साहूकारों से लिया गया। ज्यादा परेशानी की बात तो ये है कि दिल्ली, कोलकाता और बंगलुरू में 80 प्रतिशत से भी ज्यादा कर्ज महाजन या साहूकारों से लिया गया।

अब ये सवाल उठना स्वाभाविक है कि जब बड़े-बड़े शहरों में संगठित वित्तीय सुविधाओं का जाल बिछा है तो फिर अनौपचारिक क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए असंगठित स्रोतों पर निर्भरता क्यों? जवाब आसान है। परिचय और पते से जुड़े दस्तावेजों की कमी लोगों को बैंक से दूर रखती रही है। नतीजा ऋण की बात तो दूर, कल की अनिश्चितताओं से निपटने के लिए छोटी-छोटी जमा के लिए भी लोगों को प्रोत्साहित नहीं किया जा सका है।

क्या है रास्ता?

बैंकिंग व्यवस्था से दूर लोगों के लिए पिछली सरकार ने वित्तीय समावेशन की एक योजना स्वाभिमान शुरु की लेकिन ये योजना सिर्फ ग्रामीण इलाकों में थी और वो भी 2000 से ज्यादा की आबादी वाले गांवों के लिए। यही नहीं, जिन ग्रामीण इलाकों में बैंक की शाखा नहीं थी, वहा बैंकिंग कॉरेस्पांडेंट का इस्तेमाल भी ज्यादा कामयाब नहीं हो सका, क्योंकि इन बैंकिंग कॉरेस्पांडेंट का वेतन बहुत ही कम था, इसीलिए वो ज्यादा प्रोत्साहित नहीं होते थे।

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर नयी सरकार ने वित्तीय समावेशन की नयी योजना का खाका तैयार किया। इसकी पहली झलक 10 जुलाई, 2014 को वित्त मंत्री के बजट भाषण मे दिखी जब उन्होंने कहा - *देश में सभी परिवारों को बैंकिंग सेवाएं मुहैया कराने के लिए वित्तीय समावेशन मिशन के रूप में एक समयबद्ध कार्यक्रम इस वर्ष 15 अगस्त को आरंभ किया जाएगा। इसमें समाज के कमजोर वर्गों को सशक्त बनाने पर विशेष बल दिया जाएगा, इसमें महिलाएं, छोटे और सीमान्त किसान और श्रमिक भी शामिल होंगे। प्रत्येक परिवार में दो बैंक खाता खोलने का प्रस्ताव है, जो ऋण के लिए भी पात्र होंगे।*

प्रधान मंत्री जन-धन योजना

नयी योजना की खास बात ये है कि इसमें आबादी के बजाए परिवार और केवल ग्रामीण इलाकों के बजाए ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों को शामिल किया गया है। इस संदर्भ में 2011 की जनगणना के नतीजों को आधार बनाया गया। नतीजे बताते हैं कि देश के 24.67 करोड़ परिवारों में सिर्फ 14.48 करोड़ (58.69 प्रतिशत) को ही बैंकिंग सुविधा मिलती है। इस क्रम में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का कहना है कि उन्हें ग्रामीण इलाके के 13.14 करोड़ परिवारों को बैंकिंग सेवा के दायरे में लाने का लक्ष्य दिया था। अनुमान है कि 31 मार्च 2014 तक इनमें से 7.22 करोड़ परिवार बैंकिंग सेवा के दायरे में लाए जा चुके हैं। यानी करीब 6 करोड़ परिवार अब भी बचे हैं। इसके साथ ही ये आकलन लगाया गया कि शहरी इलाकों में करीब 1.5 करोड़ परिवार बैंकिंग सेवा से दूर हैं। इस तरह 7.5 करोड़ परिवार का लक्ष्य तय हुआ।

15 अगस्त को लालकिले से ऐलान के बाद प्रधानमंत्री ने 28 अगस्त को मिशन की विधिवत शुरूआत की। साथ ही उन्होंने बैंकों को 14 अगस्त, 2015 के बजाए 26 जनवरी, 2015 तक 7.5 करोड़ परिवारों में से कम से कम एक खाता खोलने को कहा। योजना अभी तक कामयाब रही है और अब तक 3 करोड़ अकाउंट खोले भी जा चुके हैं।

नयी योजना के तहत लोगों के लिए केवल ऋण का रास्ता सहज बनाने का प्रयास नहीं है, बल्कि कोशिश जमा को बढ़ावा देने की भी है और वो भी खास तौर पर ग्रामीण इलाकों में। खुद प्रधानमंत्री ने योजना शुरू करते वक्त कहा - *आज भी गांव देहात में माता बहनें, बहुत ही मेहनत करके पैसे बचाती हैं। लेकिन उनको हर बार परेशानी रहती है कि पति को अगर बुरी आदतें लगी हैं, व्यसन की आदत लग गयी है तो उस महिला को चिंता लगी रहती है कि वो पैसे कहां छिपाए। जब खाता खुल जाएगा तो महिलाओं का कितना आशीर्वाद मिलेगा?*

नयी योजना की खास बात ये है कि इसमें आबादी के बजाए परिवार और केवल ग्रामीण इलाकों के बजाए ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों को शामिल किया गया है। लोगों के लिए केवल ऋण का रास्ता सहज बनाने का प्रयास नहीं है, बल्कि जमा को बढ़ावा देने की कोशिश भी है।

नयी योजना में खोले जा रहे अकाउंट, मूलभूत सुविधा वाले साधारण बचत खाते हैं, जिसमें किसी भी समय कम से कम निश्चित राशि जमा रखने की कोई शर्त नहीं है। हर खाते के साथ 'रूपे' का डेबिट कार्ड मिलेगा और वो भी एक लाख रुपये की दुर्घटना बीमा के साथ। इसके साथ ही 26 जनवरी 2015 तक खुलने वाले हर बैंक अकाउंट पर 30,000 रुपये की जीवन बीमा की भी सुविधा मिलेगी।

खाता खुलवाने के लिए पता और पहचान के दस्तावेज को लेकर कोई झंझट नहीं। 'आधार' के आधार पर खाता मिनटों में खुलेगा। यदि किसी शहर में कोई प्रवासी है और पते या पहचान का

दस्तावेज नहीं है तो उसे बैंक को लिखित में अपने मूल स्थान की जानकारी देनी होगी। बैंक इसकी पड़ताल कर खाता खोलेंगे। इसका सबसे ज्यादा फायदा गांवों से शहरों में आकर अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वालों को होगा।

कार्ड के लिए कोई सालाना फीस नहीं होगी और ना ही बीमा का प्रीमियम चुकाना होगा। बस ये ध्यान रखना जरूरी है कि दुर्घटना बीमा के तहत मुआवजा पाने के लिए जरूरी है कि खाता खुलने के 45 दिनों के भीतर कम से कम एक बार डेबिट कार्ड का इस्तेमाल जरूर किया जाए।

योजना में ऋण 'ओवरड्राफ्ट' की भी सुविधा है। लेकिन ये सुविधा उन्हीं खातों पर मिलेगी जो आधार आधारित हैं और जिनमें पिछले छह महीने के दौरान पर्याप्त लेन-देन किया गया है। हालांकि ऋण की रकम पर जब सवाल उठे, तो खुद प्रधानमंत्री ने कहा, *''बैंक से गरीबों को पांच हजार रुपये तक का कर्ज मिलेगा और सामान्य मानवों को उससे ज्यादा के कर्ज की जरूरत नहीं होती।''*

योजना मे वित्तीय साक्षरता गांव-गांव तक पहुंचाने की बात है। इससे वित्तीय सेवा चुनने में तो मदद मिलेगी ही, साथ ही जमा और ऋण के प्रति जागरूकता बढ़ेगी। योजना के दूसरे चरण में माइक्रो इंश्योरेंस और पेंशन जैसी सुविधाएं शुरू करने का प्रस्ताव है। इससे अप्रत्याशित परिस्थितियों, जैसे परिवार के मुखिया की मृत्यु की स्थिति में आर्थिक संकट से निपटने में मदद मिलेगी, वहीं बुजुर्गों को भविष्य में आर्थिक सुरक्षा मिलेगी।

वित्तीय समावेशन की योजना के मायने को महज लाभार्थी व्यक्ति तक सीमित रखना उचित नहीं। जरा सोचिए, जब योजना के दायरे में बड़े पैमाने पर अनौपचारिक/असंगठित क्षेत्र के लोग आएंगे, पैसा जमा करेंगे तो उससे पूरी अर्थव्यवस्था को कितना फायदा होगा? इसका सबसे पहले असर तो देश की जमा दर पर पड़ेगा। 2013-14 के आर्थिक सर्वेक्षण के आंकड़ों के मुताबिक, कुल जमा, सकल घरेलू उत्पाद के 30.1 प्रतिशत के बराबर थी जबकि ये आंकड़ा 2007-08 में 36.8 प्रतिशत था।

चूंकि ऊपर हमने देखा है कि बैंक खातों और उसकी सुविधाओं से वंचित तबकों में सबसे ज्यादा लोगों की जीविका असंगठित क्षेत्र से संबंधित है। इस लिए उम्मीद की जानी चाहिए कि प्रधनमंत्री जन-धन योजना अगर सफल होती है तो इसका प्रत्यक्ष लाभ असंगठित क्षेत्र को और इस रास्ते से पूरी अर्थव्यवस्था को मिलेगा।

इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि अब साढ़े सात करोड़ बैंक खातों में यदि 3 करोड़ ही एक साल के लिए 1000-1000 रुपये जमा करें तो तीन हजार करोड़ रुपये कुल जमा में जुड़ेंगे। इससे सरकार को विभिन्न परियोजनाओं में निवेश करने के लिए सस्ती पूंजी उपलब्ध होगी। स्पष्ट है कि अनौपचारिक/ असंगठित क्षेत्र के लिए वित्तीय समावेशन केवल व्यक्ति विशेष को नहीं, बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था के लिए हितकारी साबित होगी। ❑

संदर्भ:

- **नीलकंठ मिश्रा एवं रवि शंकर:** क्रेडिट स्विस का शोध ''इंडियाज वेटर आफ: द इनफॉर्मल इकॉनामी''
- **पी चंद्रशेखर एवं जयति घोष:** इंडिया स्टिल वास्ट इनफॉर्मल इकॉनामी, हिंदू बिजनस लाईन, 28 अक्तूबर, 2013
- **आर गांधी, डिप्टी गवर्नर भारतीय रिजर्व बैंक:** कोलकाता में 14 जून, 2014 को छठी आईसीसी बैंकिंग शिखर सम्मेलन
- **एस गुरूमूर्ति:** अनिगमित दौरे के लिए संरचना विषय पर आयोजित गोलमेग सम्मेलन में, 01 सितम्बर 2014, नई दिल्ली
- **राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण क्रमांक 557:** भारत में रोजगार का योगदान एवं असंगति क्षेत्र

www.afeias.com

IAS की Free तैयारी

IAS की परीक्षा के नि:शुल्क मार्गदर्शन के लिए डॉ. विजय अग्रवाल की वेबसाइट

इस पर आपको मिलेगा -

- प्रतिदिन ऑडियो लेक्चर
- अखबारों पर समीक्षात्मक चर्चा
- परीक्षा सम्बन्धी लेख
- आकाशवाणी के समाचार
- वीडिओ
- नॉलेज सेंटर
- अखबारों की महत्वपूर्ण कतरनें

सुनिए डॉ. विजय अग्रवाल का लेक्चर रोज़ाना

लॉग ऑन करें- **www.afeias.com**

डॉ. विजय अग्रवाल की पुस्तक

'आप IAS कैसे बनेंगे'

यह किताब IAS की तैयारी करने वालों के लिए एक 'चलता-फिरता कोचिंग संस्थान' है।

सभी प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ उपलब्ध

YH - 185/2014

आर्थिक समावेशन की राह: प्रधानमंत्री जन धन योजना

प्रभाकर साहू

बचत गरीब परिवारों को नकदी प्रवाह में अस्थिरता को प्रबंधित करने में मदद करती है, खपत को सहज बनाती है और कार्यशील पूंजी के निर्माण में मदद करती है। अधिकृत बचत तंत्र तक पहुंच के बिना गरीब परिवार तुरंत खर्च की ओर अग्रसर होते हैं। पीएमजेडीवाइ ऋण सुविधा का वादा करती है। इससे गरीबों की ऋण तक पहुंच बढ़ेगी और इस तरह उन पर सकारात्मक प्रभाव होगा, फैसले लेने का आत्मविश्वास जागेगा और आर्थिक गतिविधियों में भरोसा पैदा होगा

भारत में आर्थिक समावेशन की स्थिति जिस भी मानक पर तौली जाए, इसमें काफी कुछ वांछित रह जाता है। जैसा कि 2012 में 15 साल से अधिक आयु के भारतीयों में सिर्फ 35 प्रतिशत भारतीय ही ऐसे थे जिनके अधिकृत आर्थिक संस्थाओं में बैंक खाते थे। दुनियाभर के विकासशील देशों में, यह औसत 41 प्रतिशत (विश्व बैंक 2012) है। भारतीय रिजर्व बैंक के आर्थिक समावेशन के संचालन के कारण, बैंक खातों की संख्या साल 2011-13 के दौरान लगभग 10 करोड़ तक बढ़ी है। आज 22.9 करोड़ बैंक खाते हैं। धीरे-धीरे अधिकृत आर्थिक संस्थानों तक पहुंच में भी सुधार हुआ है, मगर हजारों गांव आज भी ऐसे हैं, जिनमें बैंक की शाखा नहीं हैं। सभी व्यावसायिक बैंकों में से 10 प्रतिशत से भी कम ऐसे हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंच पाते हैं, जहां कि कुल जनसंख्या का 70 प्रतिशत जीवनयापन करता है। इसलिए आर्थिक समावेशन कार्यक्रम की जरूरत सवालों से परे है।

प्रधानमंत्री जन धन योजना (पीएमजेडीवाई) को 28 अगस्त 2014 को शुरू किया गया था। शुरुआत में पीएमजेडीवाई ने एक साल में यानी 15 अगस्त 2015 तक 7.5 करोड़ परिवारों के लिए बैंक खाते खोलने का लक्ष्य रखा है।

योजना के शुरू होने के पहले ही दिन लगभग 2 करोड़ बैंक खाते खोले जा चुके थे। आखिरकार इस योजना का लक्ष्य भी प्रत्येक योग्य भारतीय को बैंकिंग व्यवस्था में शामिल करना है। पहले चरण में सभी परिवारों को एक आधारभूत बैंक खाता दिया जाएगा। इससे आर्थिक साक्षरता को सूक्ष्म स्तर तक ले जाया जाएगा और प्रत्यक्ष नकद लाभ की कार्यप्रणाली को सुचारू रूप से शुरू किया जाएगा। दूसरे चरण में इन आधारभूत बैंक खाताधारकों की आर्थिक सेवाओं को बढ़ाने और उन्हें बीमा और पेंशन दिए जाने की योजना है क्योंकि ऐसे सभी क्षेत्रों में बैंकों की शाखाएं स्थापित करना मुश्किल हैं, जहां बैंक नहीं हैं इसलिए बैंक कॉरेस्पोंडेंट को इस योजना को बड़े स्तर पर लागू करने के लिए तैनात किया जाएगा।

आकृति 1: 15 वर्ष से अधिक उम्र के औपचारिक बैंक खाताधारकों का प्रतिशत

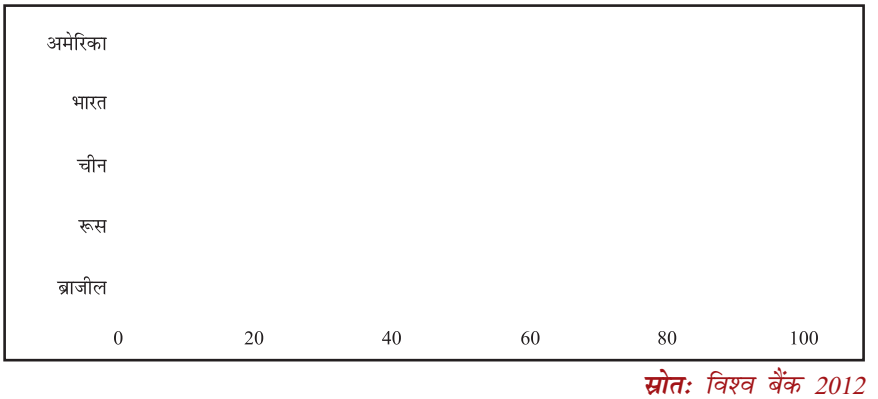

स्रोत: विश्व बैंक 2012

लेखक आर्थिक विकास संस्थान, दिल्ली में असोसिएट प्रोफेसर हैं। इससे पहले वह भारतीय अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबन्ध शोध परिषद (आईसीआरआईईआर) में वरिष्ठ अध्ययेता रहे। वह मैक्रोइकॉनमिक्स तथा अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विषय में अध्यापन के साथ भारत व अन्य एशियाई देशों के संबंध में मैक्रोइकॉनमिक्स, आर्थिक विकास, क्षेत्रीय सहयोग व अन्य संरचनाएं आदि विषयों पर शोध करते हैं। ईमेल: pravakarfirst@gmail.com, pravakar@iegindia.org

भारत में आर्थिक निवेश न सिर्फ विकसित देशों की तुलना में कम है बल्कि यह समकक्ष विकासशील देशों की तुलना में भी काफी पीछे है। (देखें आकृति 1) इसलिए आर्थिक समावेशन की शुरुआत स्वागत योग्य और सराहनीय है।

वास्तव में, वित्तीय मजबूती बनाने और औपचारिक ऋण की उपलब्धता आर्थिक विकास और उद्यमशीलता की गतिविधि के लिए बेहद महत्वपूर्ण कारक माने जाते हैं। यह भी सशक्तीकरण का एक कार्य है।

आर्थिक समावेशन का महत्व

वित्तीय समावेशन या वित्तीय सेवाओं और वित्तीय संस्थाओं की पहुंच का विस्तार विकास और रोजगार पर सकारात्मक प्रभाव (लिवाइन 2005) पड़ता है। इन सकारात्मक नतीजों के लिए तंत्र की व्यवस्था न्यूनतम लेनदेन लागत और अर्थव्यवस्था में पूंजी और जोखिम के बेहतर वितरण के माध्यम से कर रहे हैं। जिस तरह जॉन और मैकडोनाल्ड (2011) पाते हैं कि वित्तीय मजबूती कम आय वर्गीय समूहों की आमदनी में बढ़ोतरी और इस तरह गरीबी में कमी से जुड़ी है। इसके बाद वित्तीय समावेशन उन गरीबों को अधिकृत वित्तीय संस्थानों से ऋण प्राप्त करने का अवसर देकर असमानता कम करता है, जिनके पास ऋण लेने के लिए इस तरह की कोई समानांतर सुविधा या संपर्क नहीं होता है। इस तरह का पर्याप्त साहित्य और सबूत मौजूद है जो बताता है कि कम आय वर्ग के समूहों के लिए वित्तीय सेवाओं तक पहुंच का स्वरोजगार आधारिक व्यावसायिक गतिविधियों, पारिवारिक उपभोग और पूर्ण कल्याण पर सकारात्मक प्रभाव (बुशे एल. 2011)पड़ता है। बैनर्जी और डुफ्लो (2013) यह भी सुझाव देते हैं कि गरीबी के खिलाफ लड़ने में माइक्रोफाइनेंस भी काफी अहम कारक है।

भारत जैसे विकासशील देशों की अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में गरीब परिवार अपनी वित्तीय गतिविधियों (मसलन बचत और व्यय) को अनौपचारिक तरीकों से ही प्रबंधित करते हैं। अनौपचारिक तंत्र जैसे परिवार और मित्र, बचत योजनाओं का आवर्ती, जमींदार, अपर्याप्त और अविश्वसनीय होते हैं, और काफी महंगे भी हो सकते हैं? पीएमजेडीवाई द्वारा दिया गया वित्तीय सुलभता का वचन ज्यादा से ज्यादा बचत करने में मदद करेगा, दक्षिण एशिया के विकासशील देशों और भारत में किए गए शोध दर्शाते हैं कि बैंक की शाखाओं की उपलब्धता सकारात्मक रूप से घरेलू बचत पर प्रभाव (अग्रवाल 2009, साहू और डैश 2013) डालती है। भारत में, आर्थिक सुधार के मुख्य तत्वों में से एक वित्तीय वर्ग में सुधार रहा है। बचत राशियां जुटाने के लिए ऐसे अधिकृत वित्तीय संस्थानों का अस्तित्व और स्थापना जरूरी है, जो कि सुरक्षित विश्वसनीय और वैकल्पिक वित्तीय साधनों की व्यवस्था कर सकें। बचत के लिए, प्रत्येक व्यक्ति की सुरक्षित और विश्वसनीय वित्तीय संस्थानों जैसे बैंक और उचित वित्तीय साधनों और उपयुक्त वित्तीय प्रोत्साहन तक पहुंच जरूरी है। इस तरह की पहुंच और सुलभता सभी विकासशील देशों जैसे भारत में हमेशा उपलब्ध नहीं है, और ग्रामीण क्षेत्रों में तो स्थिति और भी खराब है। बचत गरीब परिवारों को नकदी प्रवाह में अस्थिरता को प्रबंधित करने में मदद करती है, खपत को सहज बनाती है और कार्यशील पूंजी के निर्माण में मदद करती है। अधिकृत बचत तंत्र तक पहुंच के बिना गरीब परिवार तुरंत खर्च की ओर अग्रसर होते हैं। पीएमजेडीवाइ ऋण सुविधा का वादा करती है। इससे गरीबों की ऋण तक पहुंच बढ़ेगी और इस तरह उन पर सकारात्मक प्रभाव होगा, फैसले लेने का आत्मविश्वास जागेगा और आर्थिक गतिविधियों में भरोसा पैदा होगा। इसके अलावा एक लाख रुपये तक का इश्योरेंस कवरेज गरीब खाता धारकों को जोखिम कम करने और नुकसान को झेलने की क्षमता देगा। जोखिम न ले सकने की मजबूरी और किसी भी आपात स्थिति से निपटने की अक्षमता गरीब लोगों के लिए गरीबी रेखा से ऊपर उठना मुश्किल बना देती है। जहां कोई भी अधिकृत बैंकिंग प्रणाली नहीं है, ऐसे क्षेत्रों में बैंक की शाखाएं खोलने से भारत के राज्यों में ग्रामीण गरीबी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका (बरगेस और पांडे 2005) अदा की जा सकती है। इनके अतिरिक्त लोगों को पीएमजेडीवाई के माध्यम से अधिकृत बैंकिंग व्यवस्था के अंतर्गत लाना न्यूनतम लेन-देन लागत पर लोगों तक डिलीवरी सिस्टम को पहुंचाने में सरकार की मदद करेगा। वित्तीय समावेशन प्रभावशीलता और सामाजिक सुरक्षा तंत्र अंतरण के सरकारी भुगतान के कुशल निष्पादन में सुधार कर सकते हैं।

आकृति 2: प्रति एक लाख आबादी पर बैंक शाखाएं

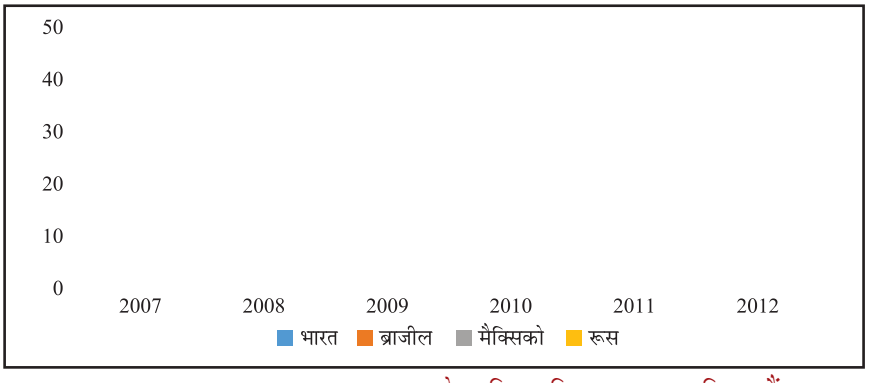

स्रोत: विश्व विकास सूचक, विश्व बैंक, 2014

योजना और बैंकिंग ढांचे के दायरे

पीएमजेडीवाई मुख्यत: बैंक खाता खोलने के बारे में है, लेकिन इसकी कुछ अन्य विशेषताएं भी हैं। रुपे डेबिट कार्ड, एक लाख के कवर के साथ दुर्घटना बीमा पॉलिसी और 30,000 के कवर के साथ जीवन बीमा पॉलिसी उन लोगों के लिए जो 2015 के स्वतंत्रता दिवस से पहले बैंक खाता खुलवाते हैं। खाते के प्रदर्शन पर नजर रखी जाएगी और एक ओवरड्राफ्ट सुविधा दी जाएगी। पीएमजेडीवाई के अंतर्गत लक्ष्य प्राप्ति करना मुश्किल हो सकता है, क्योंकि खाते खुलवाने में समय लगता है। एक खाता खोलने में लगभग 20 मिनट का समय लगता है (तीन-चार लोगों वाली बेहद छोटी बैंक शाखाएं, ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी असुविधाएं और इससे पहले तक कभी भी बैंक नहीं गए लोगों के साथ समन्वय बनाने में ज्यादा समय की जरूरत होती है)। एक ग्रामीण शाखा में एक दिन के आठ कार्य घंटों के दौरान संभवत: 24 खाते खोले जा सकते हैं। कुछ साल पहले, आरबीआई ने

कहा था कि देश में वित्तीय समावेशन के लिए आधारभूत बैंक खाते खोले जा सकते हैं। 10 करोड़ के लगभग खाते खोले गए थे, लेकिन इसमें तीन सालों से ज्यादा का समय लगा और पीएमजेडीवाई की विशेषताएं इस पैमाने पर काफी ज्यादा हैं।

पीएमजेडीवाई की शुरुआत के पहले ही दिन 2 करोड़ से ज्यादा खाते खोले गए, जिसमें शहरी क्षेत्रों के खाते भी शामिल हैं लेकिन भारत में खातों के खुलने की संख्या में बढ़ोत्तरी बैंकिंग ढांचे पर अत्यधिक दबाव बना सकती है। आकृति 2 और 3 अन्य विश्व से भारत में बैंकिंग ढांचे की तुलना करती है।

प्रति लाख जनसंख्या पर बैंक शाखाओं की संख्या धीरे-धीरे बढ़ी है, लेकिन अब भी यह ब्राजील, रूस और यहां तक कि मैक्सिको से कम है। भारत में वित्तीय प्रतिरोध काफी ज्यादा है। कुल जनसंख्या का लगभग 42 प्रतिशत अधिकृत बैंकिंग व्यवस्था से बाहर है और ऋण जरूरतों के लिए जमींदारों या अन्य अनधिकृत सुविधाओं पर निर्भर करता है।

फिलहाल, 115,082 बैंक शाखाओं का नेटवर्क है और 160,055 एटीएम नेटवर्क हैं। इनमें से 43,962 शाखाएं और 23,334 एटीएम ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। इस ग्रामीण बैंकिंग ढांचे का निर्माण आरबीआई के बैंकों को यह निर्देश देने के बाद शुरू हुआ कि सभी बैंकों को अपनी कुछ निश्चित शाखाएं और एटीएम गांवों में भी खोलने होंगे। इस वित्तीय समावेशन को सही तरीके से क्रियांवित करने के लिए मौजूदा बैंकिंग नेटवर्क को और विस्तार दिए जाने की जरूरत है। इसमें सभी प्रादेशिक संस्थानों में से सबसे ज्यादा गहरी पैठ रखने वाले पोस्ट ऑफिस नेटवर्क को भी बैंकिंग माध्यम के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। पीएमजेडीवाई की डेबिट कार्ड जारी करने की योजना है। आकृति 3 भारत के प्रति एक लाख जनसंख्या वाले एटीएम तंत्र की तुलना अन्य विकासशील देशों से करती है। 182 एटीएम प्रति लाख जनसंख्या रूस में, 118 ब्राजील में, 47 मेक्सिको में और 37 चीन में। रूस में, दिया गया अनुपात 2007 में 45 से बढ़कर 2012 में 182 पर पहुंच गया। भारत में इससे जुड़ी हुई बढ़ोत्तरी 3 से 11 में हुई थी लेकिन इन पांच सालों में भारत में एटीएम की वृद्धि की दर उच्चतम दूसरे स्तर पर थी। पीएमजेडीवाई खातों की संख्या में बढ़ोतरी

आकृति 3: प्रति एक लाख आबादी पर एटीएम उपलब्धता

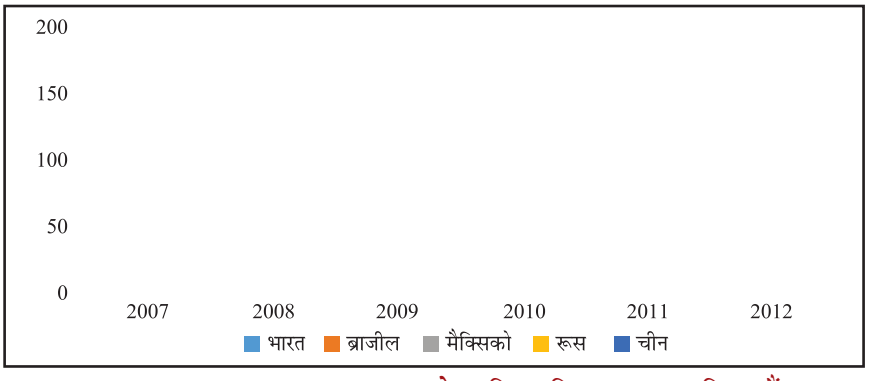

स्रोत: विश्व विकास सूचक, विश्व बैंक, 2014

(एक साल से भी कम में 7.5 करोड़) का यह मतलब भी होगा कि बैंकिंग तंत्र को मौजूदा ग्राहकों के साथ डेबिट कार्ड और 7.5 करोड़ डेबिट कार्ड धारकों को अन्य सुविधाएं भी देनी होंगी। यह मौजूद बैंकिंग ढांचे पर काफी दबाव बनाएगा और ज्यादा इसलिए क्योंकि एटीएम का विस्तार देशभर या ग्रामीण क्षेत्रों में समान रूप से नहीं हैं। वित्तीय प्रतिरोध को खत्म करने के लिए, दुनिया भर में अपनाई गई बेहतरीन योजनाओं पर ध्यान देना फायदेमंद होगा।

इंश्योरेंस रेगुलेट्री एंड डेवलपमेंट अथॉरिटी एक्ट 1999 के बाद से भारत में बीमा बाजार की छह राष्ट्रीय कंपनियों से बढ़कर आज 51 निजी जीवन और जीवनेतर बीमा कंपनियों तक पहुंच गयी है। विभिन्न जरूरतों के लिए यह सामाजिक उत्पादों का विस्तृत क्रॉससेक्शन पेश करता है। 2011-12 में बीमा उद्योग की शेयर पूंजी 32,328 करोड़ रुपये थी, जीवन बीमा क्षेत्र का शेयर 77 प्रतिशत है। जीवनेतर बीमा क्षेत्र जीवन बीमा के मुकाबले ज्यादा तेजी से वृद्धि करता है। 2011-12 के दौरान भारत में जीवन बीमा प्रीमियम 8.5 प्रतिशत कम हुआ (2.7 प्रतिशत दुनियाभर में), जीवनेतर बीमा 13.5 प्रतिशत तक बढ़ा (लेकिन 1.8 प्रतिशत दुनियाभर में)।

2011 में राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में बीमा उत्पादों को लेकर जागरूकता, निवेश और अनुभव का आकलन करने के लिए पैन इंडिया इश्योरेंस अवेयरनेस कैंपेन शुरू किया गया था। इसका उद्देश्य बीमा कवर को कस्बों, छोटे शहरों और कम विकसित जिलों तक बढ़ाना था, क्योंकि अगर पीएमजेडीवाई को प्रभावी तरीके से क्रियांवित किया जाए, तो गरीबों को बीमा कवरेज से सबसे ज्यादा लाभ होगा। यह प्रगतिशील बीमा प्रोडक्टस, बेहतर वितरण नेटवर्क, जोखिम प्रबंधन और ज्यादा निवेश की मांग करता है।

ग्राहक आधार को बनाए रखने और बढ़ाते हुए, आईआरडीए के अनुमान के अनुसार बीमा कंपनियों को 61,200 करोड़ रुपये की जरूरत होगी, यह भारतीय पूंजी बाजार के लिए काफी ज्यादा मात्रा है। हालांकि निजी और देशी कंपनियों की सहभागिता ने बीमा क्षेत्र की पहुंच में सुधार किया है। जीवन और जीवनेतर बीमा दोनों क्षेत्र में बीमा पैठ 4.1 प्रतिशत के कमजोर स्तर पर है। भारत को दुनियाभर में जीवनेतर बीमा के लिए 52 नंबर पर रखा गया है, 2011-12 में निवेश 0.7 प्रतिशत था। हालांकि जीवन बीमा में निवेश 3.4 प्रतिशत था (लेकिन 2.8 प्रतिशत दुनिया भर में, 12.5 प्रतिशत यूके में, 10.5 प्रतिशत जापान के लिए, 10.3 प्रतिशत कोरिया के लिए और 9.2 प्रतिशत अमेरिका के लिए)।

अन्य सूचक जो बीमा क्षेत्र में अविकसित है, वह है बीमा घनत्व (पर कैपिटा प्रीमियम) भारत में पर कैपिटा प्रीमियम जीवन बीमा के लिए 49 डॉलर है और जीवनेतर बीमा के लिए 10 डॉलर। लेकिन चीन में यह क्रमशः 99 डॉलर और 64 डॉलर है। इस संदर्भ में, इन मूलभूत खाताधारकों को जो कि वास्तव में गरीब हैं, पीएमजेडीवाई के अंतर्गत इश्योरेंस देने की सरकार की योजना काफी बड़ा कदम है। हालांकि इसकी सफलता इसके लिए उचित क्रियान्वयन और बैंकिंग व वित्तीय ढांचे में सुधार पर निर्भर करती है।

विदेश में वित्तीय समावेशन

समावेशी बैंकिंग को दुनियाभर में बहुत से विकासशील देशों में एक मुख्य विकास कार्यक्रम

के तौर पर पहचान दी गई है, और वित्तीय समावेशन के कुछ खास मामले उच्च स्तर की नवीनता प्रदर्शित करते हैं। बहुत से देशों ने भौतिक बुनियादी ढांचे की स्थापना से जुड़ी समस्या को दूर करने के लिए कॉरेस्पोंडेंट बैंकिंग मॉडल पेश किया है, उदाहरण के लिए, ब्राजील ने बैंकरहित ब्राजीलियाइयों को कल्याणकारी राशि वितरित करने के लिए बड़े स्तर पर बैंक कॉरेस्पोंडेंट नियुक्त किए हैं। 2000 में लगभग एक तिहाई ब्राजील नगर पालिकाओं के पास बैंक शाखाएं थीं, जब से कॉरेस्पोंडेंट मॉडल लॉन्च किया गया, लगभग 95,000 कॉरेस्पोंडेंट ने तीन साल में ब्राजील की सभी नगर पालिकाओं को सम्मिलित करते हुए एक करोड़ बी लाख बैंक खाते खोलने में मदद की है। ब्राजील की सफलता ने अन्य दक्षिणी अमेरिकी देशों जैसे कोलंबिया, पेरु, मेक्सिको और चिली को भी इस तरह की योजना अपनाने के लिए प्रेरित किया है।

इस मॉडल के कीमत लाभ भी पर्याप्त हैं। इसके अलावा, ब्राजील में शाखा और एटीएम नेटवर्क भारत की तुलना में कहीं ज्यादा तेज है।

तकनीक का इस्तेमाल समावेशी बैंकिंग की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है, खासतौर पर अफ्रीका में, जहां भौतिक ढांचा काफी कमजोर है, लेकिन टेलीकम्युनिकेशन की पहुंच वहां काफी ज्यादा है। उदाहरण के लिए केन्या में, मोबाइल नेटवर्क ऑपरेटर सफारीकॉम इलेक्ट्रॉनिक मनी ट्रांसफर सेवा उपलब्ध कराती है, जिसे एम-पैसा के नाम से कहा जाता है, जिसके कई मिलियन ऐसे रजिस्टर्ड यूजर हैं, जो इससे पहले बैंक रहित थे। जबसे यह प्रोजेक्ट शुरू हुआ, वित्तीय सेवाओं से वंचित जनसंख्या का अनुपात कुछ ही सालों में लगभग छह प्रतिशत तक कम हुआ है। केन्या की 75 प्रतिशत जनसंख्या के पास आज वित्तीय सेवाओं की पहुंच है। उपसहारा अफ्रीका में यह सबसे ज्यादा है। एम-पैसा जैसी ही सेवा मेक्सिको में भी है, जहां बैंक खाते कल्याणकारी राशि के लेन-देन में इस्तेमाल किए जाते हैं। मोबाइल फोन द्वारा नकद हस्तांतरण कार्यक्रम के प्रभाव का बेतरतीब मूल्यांकन कार्यान्वयन एजेंसी के लिए वितरण की लागत और कार्यक्रम प्राप्तकर्ता के लिए नकद हस्तांतरण प्राप्त करने की लागत दोनों में कटौती दिखाता है। भारत के संदर्भ में इस बारे में काफी मुद्दों पर चर्चा की जा चुकी है। यह भ्रष्टाचार, नकल और सब्सिडी के जरिये फर्जी राशन को काबू करने में मदद करेगा और राष्ट्रीय राजकोष का बोझ कम होगा। मेक्सिको इसका अच्छा उदाहरण पेश करता है कि कैसे सरकार से व्यक्ति को भुगतान वास्तव में किस तरह बैंक सुविधा से वंचित लोगों को अधिकृत बैंकिंग के दायरे में ला सकता है। मेक्सिको दिखाता है कि मोबाइल तकनीक का विस्तार शाखाओं की कमी से निबटने में मदद कर सकता है।

पीएमजेडीवाइ की सफलता की संभावना

सिर्फ बैंक खाता खोलना वित्तीय समावेशन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए काफी नहीं है, पीएमजेडीवाई द्वारा दी गई सुविधाओं के कई पक्ष हैं। वास्तव में, इन खातों के माध्यम से कल्याणकारी उद्देश्य के लिए किए गए स्थानांतरण भुगतान करने की संभावना इन खातों के झूठ बोलकर खुलवाए जाने, अप्रयुक्त होने और इस्तेमाल न किए जाने की आशंका भी पैदा करती है। इसके अलावा जब सरकारी भुगतान का प्रवाह होगा, तब लाभार्थियों को जमा की गई रकम निकलवाने और निजी राशि जमा करने के लिए इन खातों का इस्तेमाल करने को प्रेरित किया जाएगा।

सिर्फ खाता खोलना वित्तीय समावेशन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए काफी नहीं है। पीएमजेडीवाई की सुविधाओं के कई पक्ष हैं। सरकारी भुगतान का प्रवाह होने पर लाभार्थियों को जमा राशि निकलवाने और निजी राशि जमा करने के लिए इन खातों का इस्तेमाल करने को प्रेरित किया जाएगा।

इससे बैंक व्यवस्था से वंचित लोगों को संस्थागत वित्तीय व्यवस्था में शामिल करने में मदद मिलेगी। उल्लिखित प्रक्रिया दक्षिण अमेरिका में नकद लाभ ब्राजील, मेक्सिको और अन्य विकासशील देशों में भी लागू की जानी है। इससे बिचौलियों से निबटने में बड़ी मदद मिलेगी और धन का उपयोग करने के लिए परिवारों को सब्सिडी वितरण में अधिक पारदर्शिता और बेहतर स्वायत्तता भी सुनिश्चित होगी।

इसी तरह, ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग की सुविधा के लिए पोस्ट ऑफिस नेटवर्क का उपयोग एक निर्माण और कम समय में ग्रामीण क्षेत्रों में ताजा वित्तीय बुनियादी ढांचे को बनाए रखने से वित्तीय बहिष्कार से निपटने के लिए एक आसान तरीका हो सकता है, वह भी तब जब यह माना जा चुका है कि बैंकिंग सुविधाओं तक पहुंच से लोग काफी दूर हैं। गरीबों को बैंकिंग व्यवस्था से जोड़ने की एक अहम विशेषता बैंक खाता खोलने की प्रक्रिया को आसान बनाए रखा और लक्षित वर्ग को संस्थागत बैंकिंग साधनों के बारे में जागरूक करना है, दोनों ही एजेंट बैंकिंग समाधान का अनिवार्य हिस्सा रहे हैं, यह दुनिया के अन्य भागों में भी सफल साबित हुआ है। वहीं सकारात्मक पक्ष पर, यह भी कहा जा रहा है कि पीएमजेडीवाई सरलीकृत मोबाइल बैंकिंग के द्वारा अपनी सेवाओं में सुधार करेगा। सर्विस कोड '*99#' का इस्तेमाल कर उपयोगकर्ता, अपना अकाउंट बैलेंस और ट्रांसफर की जानकारी जीएसएम मोबाइल फोन पर भी प्राप्त कर सकते हैं।

बैंक संवाददाताओं के पास खाते खोलने और विभिन्न लाभ हस्तांतरण के लिए नकदी पहुंचाने की जिम्मेदारी है, लेकिन जब तक उन पर नजर रखने के लिए उचित तंत्र की व्यवस्था नहीं की जाती तब तक समयबद्धता और वितरण के मामले में बहुत ज्यादा विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। सरकार उन्हें पांच हजार रुपये प्रति माह देने का वादा रकती है, लेकिन फिलहाल 1500-2000 रुपये प्रति माह दिए जा रहे हैं। यह एक अच्छा और प्रोत्साहित बैंक कॉरेस्पोंडेंट बनने के लिए काफी नहीं है। इसलिए यह उन कुछेक चुनौतियों में से एक है जिन पर सरकार को प्रभावी तरीके से ध्यान देना चाहिए। पीएमजेडीवाई में विविध सुविधाएं संकलित हैं, हो सकता है कि मौजूदा ढांचा, खासतौर पर भारत के भीतरी क्षेत्रों में गरीबों के लिए लगाए गए एटीएम इस व्यवस्था को पूरी तरह सहयोग करने में समर्थ न हों। यह योजना डेबिट कार्ड कवरेज बढ़ाने पर भी जोर देती है, जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में एटीएम कवरेज में सुधार करने में भी सहायक होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में भारत की जनसंख्या की 70 प्रतिशत से ज्यादा आबादी रहती है और वहां देश के कुल एटीएम का 15 प्रतिशत से भी कम है। हालांकि बैंकीय शाखाओं की व्यवस्था इस मामले में काफी ज्यादा है। वित्तीय व्यवस्था में और ज्यादा साधन आपूर्ति प्रक्रिया को मजबूत बनाने में सहायक होंगे। विस्तारित वित्तीय ढांचे को कर्मचारियों की जरूरत होगी, जिसकी कमी है

(शेषांश पृष्ठ 52 पर)

गांधीजी और स्वच्छता

सुदर्शन अय्यंगार

भारत में स्वच्छता परिदृश्य अभी भी निराशाजनक है। हमने गांधी को एक बार फिर विफल कर दिया है। गांधीजी ने समाज शास्त्र को समझा और स्वच्छता के महत्व को समझा। पारंपरिक तौर पर सदियों से सफाई के काम में लगे लोगों को गरिमा प्रदान करने की कोशिश की। आजादी के बाद से हमने उनके अभियान को योजनाओं में बदल दिया। योजना को लक्ष्यों, ढांचों और संख्याओं तक सीमित कर दिया गया। हमने मौलिक ढांचे और प्रणाली से 'तंत्र' पर तो ध्यान दिया और उसे मजबूत भी किया लेकिन हम 'तत्व' को भूल गये जो व्यक्ति में मूल्य स्थापित करता है

गुजरात विद्यापीठ के बेहतरीन कार्यकर्ताओं और शिक्षकों में से एक ने ग्राम और ब्लॉक स्तर के सरकारी अधिकारियों के रवैये को लेकर पिछले दिनों चिंता जाहिर की थी। इन अधिकारियों को व्यक्तिगत शौचालय निर्माण और उसके लिए धन की व्यवस्था के बारे में प्रस्ताव संभावित लाभार्थियों द्वारा दिये गये थे। लेकिन उन्होंने इस बात को ही नकार दिया कि उन्हें ऐसे प्रस्ताव मिले हैं।

हमारी स्वयं से की गई प्रतिबद्धता की वजह से ही शौचालय के निर्माण को सन्धि रूप से प्रोत्साहित करने के लिए विद्यापीठ शामिल है। यह संकल्प श्री नारायण देसाई की 108वीं गांधी कथा (भारतीय परंपरा के अनुसार पौराणिक कथाएं सार्वजनिक तौर पर सुनाई जाती हैं। गुजरात विश्वविद्यालय के कुलपति नारायण खली गांधीजी की कहानियों को उसी तरह सुनाया करते थे) के बाद किया गया था। हालांकि प्रारम्भ में बताई गई दिक्कतों के साथ भी हमने सदरा के आसपास के गांवों में जो विद्यापीठ का परिसर है उस ग्रामीण इलाके में पिछले दो वर्षों में 1300 से ज्यादा शौचालयों का निर्माण कराने में मदद की है। विद्यापीठ गुजरात की राजधानी से 20 किलोमीटर की दूरी पर है और यहां लोग आसानी से नहीं पहुंच पाते। ऐसे में भ्रष्ट अधिकारियों और सरकार की उदासीनता से मुश्किलें और भी बढ़ जाती हैं।

ज्यादातर भारतीयों के पास मोबाइल फोन तो हैं लेकिन घर में शौचालय नहीं है। यह लोगों की स्वच्छता के प्रति जागरूकता, समाज और प्राचलिकता को दर्शाता है। गांधीजी ने अपने बचपन में ही भारतीयों में स्वच्छता के प्रति उदासीनता की कमी को महसूस कर लिया था उन्होंने किसी भी सभ्य और विकसित मानव समाज के लिये स्वच्छता के उच्च मानदंड की आवश्यकता को समझा। उनमें यह समझ पश्चिमी समाज में उनके पारंपरिक मेलजोल और अनुभव से विकसित हुई। अपने दक्षिण अफ्रीका के दिनों से लेकर भारत तक वह अपने पूरे जीवन काल में निरंतर बिना थके स्वच्छता के प्रति लोगों को जागरूक करते रहे। गांधीजी के लिये स्वच्छता एक बहुत ही महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा था। 1895 में जब ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों और एशियाई व्यापारियों से उनके स्थानों को गंदा रखने के आधार पर भेदभाव किया था, तब से लेकर अपनी हत्या के एक दिन पहले 20 जनवरी 1948 तक गांधीजी लगातार सफाई रखने पर जोर देते रहे। लोक सेवक संघ के संविधान मसौदे में उन्होंने कार्यकर्ताओं के सम्बध में जो लिखा था वह इस प्रकार है: 'कार्यकर्ता को गांव की स्वच्छता और सफाई के बारे में जागरूक करना चाहिए और गांव में फैलने वाली बिमारियों को रोकने के लिए सभी जरूरी कदम उठाने चाहिए' (गांधी वाङ्मय, भाग 90, पृष्ठ 528) इस लेख में स्वच्छता पर गांधीजी के विचारों को संक्षेप में देने और वर्तमान स्थिति में इसकी समीक्षा की कोशिश की गई है।

सार्वजनिक मंच पर स्वच्छता: दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी

यह दिलचस्प है कि पहली बार गांधीजी ने स्वच्छता के मसले को दक्षिण अफ्रीका में भारतीय व्यापारियों को अपने अपने व्यापार के स्थानों को साफ रखने के संबंध में उठाया था। भारतीय और एशियाई समुदाय की ओर से एक याचिकाकर्ता के रूप में दक्षिण अफ्रीका में दी गई एक याचिका में गांधीजी ने भारतीय व्यापारियों की स्वच्छता के प्रति उनके रवैये और व्यवहार का बचाव किया और उन्होंने सभी समुदायों से सफाई रखने के लिए लगातार

लेखक गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के कुलपति तथा प्रसिद्ध गांधीवादी विद्वान हैं उन्होने देश-विदेश में गांधीजी के बारे में प्रचुर लेखन और भाषण किया है। ईमेल: sudarshan54@gmail.com

अपील भी की थी। लार्ड रिपन स्वच्छता मामले में एक मुद्दे को एक याचिका में इस प्रकार उठाया गया था: 1881 के सम्मेलन का 14वां खंड जो मूलनिवासियों के साथ साथ सभी व्यक्तियों के हितों की समान रक्षा करता है, उसमें कहा गया था कि ट्रांसवाल में भारतीय स्वच्छता का पालन नहीं करते हैं और यह कुछ लोगों द्वारा गलत धारणा के आधार पर

गांधीजी भारतीय लोगों की साफ सफाई कम रखने की आदतों से भी परिचित थे। इसलिए उन्होंने 1914 तक अपने 20 वर्षों के प्रवास के दौरान साफ सफाई रखने पर विशेष बल दिया।

बनाया था। (गांधीजी वाङ्मय, भाग-1, पृष्ठ 204)। गांधीजी यह स्थापित करना चाहते थे कि भारतीयों को व्यापार का लाइसेंस इस लिए नहीं दिया जा रहा था क्योंकि वह अंग्रेज व्यापारियों को कड़ी टक्कर दे रहे थे। दूसरे, उन्होंने यह तर्क भी दिया कि भारतीय व्यापारी और अन्य लोग सफाई रखने के आदी होते हैं। उन्होंने म्यूनिसिपल डॉक्टर वियेले का उदाहरण दिया जिन्होंने भारतीयों को सफाई के प्रति सचेत और जागरूक बताया था। डॉक्टर वियेले ने भारतीयों को धूल और लापरवाही से होने वाली बीमारियों से मुक्त बताया था। (गांधी वाङ्मय, भाग-1 1969 संस्करण पृष्ठ 215) भारतीय व्यापारियों को व्यापार का लाइसेंस देने से इंकार क्यों किया जा रहा था उस संबंध में भी याचिका में दिए गए तर्क में बताया था कि यह व्यापारिक जलन की वजह से किया गया है। भारतीय स्वभाव से मितव्ययी और शांत होते हैं। भारतीय व्यापारी जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की कीमत कम रखते थे और उन्हें सस्ते दाम में बेचते थे जिससे श्वेत व्यापारियों के साथ वह भी प्रतिस्पर्धा में आ गये थे।

गांधीजी भारतीय लोगों की साफ सफाई कम रखने की आदतों से भी परिचित थे। इसलिए उन्होंने 1914 तक अपने 20 वर्षों के प्रवास के दौरान साफ सफाई रखने पर विशेष बल दिया। गांधीजी इस बात को समझते थे कि किसी भी इलाके में बहुत अधिक भीड़भाड़ गंदगी की एक मुख्य वजह होती है। दक्षिण अफ्रीका के कुछ शहरों में विशेष इलाकों में भारतीय समुदाय के लोगों को पर्याप्त जगह और ढांचागत सुविधाएं नहीं मुहैया कराई गई थीं। गांधीजी मानते थे कि उचित स्थान, मूलभूत और ढांचागत सुविधाएं और स्वच्छ वातावरण उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी नगरपालिका की है। गांधीजी ने इस संबंध में जोहानिसबर्ग के चिकित्सा अधिकारी को एक पत्र भी लिखा था। उन्होने पत्र में लिखा था। 'मैं आपको भारतीयों के रहने वाले इलाकों की स्तब्ध कर देने वाली स्थिति के बारे में लिख रहा हूं। एक कमरे में कई लोग एक साथ इस तरह ठूंस कर रहते हैं कि उनके बारे में बताना भी मुश्किल है। इन इलाकों में सफाई सेवाएं अनियमित हैं और सफाई न रखने के संबंध में बहुत से निवासियों ने मेरे कार्यालय में शिकायत करके बताया है कि अब स्थिति पहले से भी बदतर हो गई है।' (गांधी वाङ्मय, भाग-4, पृष्ठ 129)।

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा था, 'नगरपालिका की आपराधिक लापरवाही और सफाई के प्रति भारतीय निवासियों की अज्ञानता की वजह से कई इलाकों को पूरी तरह गंदा रखने की साजिश रची गई थी।' (एक आत्मकथा, पृष्ठ 265) एक बार दक्षिण अफ्रीका में काले प्लेग का प्रकोप फैला। सौभाग्य से उसके लिए भारतीय जिम्मेदार नहीं थे। यह जोहानिसबर्ग के आसपास के क्षेत्र में सोने की खदानों वाले इलाके में फैला था। गांधीजी ने अपनी पूरी शक्ति के साथ, स्वेच्छा से और स्वयं के जीवन को खतरे में डालकर रोगियों की सेवा की। नगर चिकित्सक और अधिकारियों ने गांधीजी की सेवाओं की बहुत तारीफ की। गांधी जी चाहते थे कि लोग उस घटना से सबक लें। उन्होंने एक जगह लिखा था 'इस तरह के कठोर नियमों पर निस्संदेह हमें गुस्सा आता है। परन्तु हमें इन नियमों का मानना चाहिये क्योंकि इससे हम गलती दोहराएगें नहीं। हमें स्वच्छता और सफाई का मूल्य पता होना चाहिए... गंदगी को हमें अपने बीच से हटाना होगा... क्या स्वच्छता स्वयं ईनाम नहीं है? हाल ही में जो घटना हुई है यह हमारे देशवासियों के लिये एक सबक है।' (गांधी वाङ्मय, भाग-4, पृष्ठ 146)।

हालांकि स्वच्छता के बारे में दक्षिण अफ्रीका और भारत दोनों ही जगह दी गई उनकी सलाह के 100 साल बाद भी हमने एक समुदाय के रूप में प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की है। देश की राजधानी सहित कई भारतीय शहरों में मलेरिया, चिकुनगुनिया, डेगूं और अन्य खतरनाक बीमारियां गंदगी की वजह से ही फैलती हैं। डेगूं की वजह से अहमदाबाद के सिविल अस्पताल में हुई मौतों और डॉक्टरों और नर्सों में फैली बीमारियों की जांच के लिये लेखक को गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा गठित की गई जांच समिति का सदस्य नियुक्त किया गया था। समिति ने दो वर्ष पहले स्वच्छता के बारे में सुझावों के साथ अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी, लेकिन अहमदाबाद के सिविल अस्पताल और स्थानीय प्रशासन द्वारा संचालित अन्य अस्पतालों में इन सुझावों को प्रभावी तरीके से कार्यान्वित करना संभव नहीं हो सका। जिससे वहां होने वाली मौतें और बीमारियां बदस्तूर जारी हैं।

भारत में स्वच्छता: गांधीजी के प्रयास

भारत में गांधीजी ने गांव की स्वच्छता के संदर्भ में सार्वजनिक रूप से पहला भाषण 14 फरवरी 1916 में मिशनरी सम्मेलन के दौरान दिया था। उन्होंने वहां कहा था 'देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा की सभी शाखाओं में जो निर्देश दिये गये हैं, मैं स्पष्ट कहूंगा कि उन्हें आश्चर्यजनक रूप से समूह कहा जा सकता है... गांव की स्वच्छता के सवाल को बहुत पहले हल कर लिया जाना चाहिए था।' (गांधी वाङ्मय, भाग-13, पृष्ठ 222)।

गांधीजी ने स्कूली और उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में स्वच्छता को तुरंत शामिल करने की आवश्यकता पर जोर दिया था। 20 मार्च 1916 को गुरुकुल कांगड़ी में दिए गए भाषण में उन्होंने कहा था 'गुरुकुल के बच्चों के लिये स्वच्छता और सफाई के नियमों के ज्ञान के साथ ही उनका पालन करना भी प्रशिक्षण का एक अभिन्न हिस्सा होना चाहिए... इन अदम्य स्वच्छता निरीक्षकों ने हमें लगातार चेतावनी दी कि स्वच्छता के संबंध

गांधीजी ने नील की खेती करने वाले किसानों की समस्याओं को सुलझाने के लिये चंपारण गये थे। जांच दल के रूप में तैनात एक गोपनीय पत्र में उन्होंने उस स्थिति में स्वच्छता की महत्ता को बताया। गांधी जी चाहते थे कि अंग्रेज प्रशासन उनके कार्यकर्ताओं को स्वीकारें ताकि वे समाज में शिक्षा और सफाई के कार्यों को भी शुरू कर सकें।

में सबकुछ ठीक नहीं है.. मुझे लग रहा है कि स्वच्छता पर आगन्तुकों के लिये वार्षिक व्यावहारिक सबक देने के सुनहरे मौके को हमने खो दिया।' (गांधी वाङ्मय, भाग-13, पृष्ठ 264)।

गांधीजी नील की खेती करने वाले किसानों की समस्याओं को सुलझाने के लिये चंपारण गये थे। जांच दल के रूप में तैनात एक गोपनीय पत्र में उन्होंने उस स्थिति में स्वच्छता की महत्ता को बताया। गांधी जी चाहते थे कि अंग्रेज प्रशासन उनके कार्यकर्ताओं को स्वीकारें ताकि वे समाज में शिक्षा और सफाई के कार्यों को भी शुरू कर सकें। इस बारे में उन्होंने कहा, 'क्योंकि वे गांवों में ही रहते हैं, इसलिए

वे गांव के लड़के और लड़कियों को सिखा सकते हैं और वे स्वच्छता के बारे उन्हें जानकारी भी दे सकते हैं' (गांधी वाङ्मय, भाग-13, पृष्ठ 393)।

1920 में गांधीजी ने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। यह विद्यापीठ आश्रम की जीवन पद्धति पर आधारित था, इसलिये वहां शिक्षकों, छात्रों और अन्य स्वयं सेवकों और कार्यकर्ताओं को प्रारंभ से ही स्वच्छता के कार्य में लगाया

लोग गांधीजी के साथ रहने की इच्छा जाहिर करते तो इस बारे में उनकी पहली शर्त होती थी कि आश्रम में रहने वालों को आश्रम की सफाई का काम करना होगा जिसमें शौच का वैज्ञानिक निस्तारण करना भी शामिल है।

जाता था। यहां के रिहायशी क्वार्टरों, गलियों, कार्यालयों, कार्यस्थलों और परिसरों की सफाई दिनचर्या का हिस्सा थी। गांधीजी यहां आने वाले हर नये व्यक्ति को इस संबंध में विशेष पढ़ाते थे। यह प्रथा आज भी कायम है।

गांधीजी ने रेलवे के तीसरे श्रेणी के डिब्बे में बैठकर देशभर में व्यापक दौरे किये थे। वह भारतीय रेलवे के तीसरे श्रेणी के डिब्बे की गंदगी से स्तब्ध और भयभीत थे। उन्होंने समाचार पत्रों को लिखे पत्र के माध्यम से इस ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया था। 25 सितंबर 1917 को लिखे अपने पत्र में उन्होंने लिखा, 'इस तरह की संकट की स्थिति में तो यात्री परिवहन को बंद कर देना चाहिए लेकिन जिस तरह की गंदगी और स्थिति इन डिब्बों में है उसे जारी नहीं रहने दिया जा सकता क्योंकि वह हमारे स्वास्थ्य और नैतिकता को प्रभावित करती है। निश्चित तौर पर तीसरी श्रेणी के यात्री को जीवन की बुनियादी जरूरतें हासिल करने का अधिकार तो है ही। तीसरे दर्जे के यात्री की उपेक्षा कर हम लाखों लोगों को व्यवस्था, स्वच्छता, शालीन जीवन की शिक्षा देने, सादगी और स्वच्छता की आदतें विकसित करने का बेहतरीन मौका गवां रहे हैं।' (गांधी वाङ्मय, भाग-13, पृष्ठ 264 पृष्ठ 550)।

गांधीजी ने धार्मिक स्थलों में फैली गंदगी की ओर भी ध्यान दिलाया था। 3 नवंबर 1917 को गुजरात राजनैतिक सम्मेलन में उन्होंने कहा था, 'पवित्र तीर्थ स्थान डाकोर यहां से बहुत दूर नहीं है। मैं वहां गया था। वहां की पवित्रता की कोई सीमा नहीं है। मैं स्वयं को वैष्णव भक्त मानता हूं, इसलिए मैं डाकोर जी की स्थिति की विशेष रूप से आलोचना कर सकता हूं। उस स्थान पर गंदगी की ऐसी स्थिति है कि स्वच्छ वातावरण में रहने वाला कोई व्यक्ति वहां 24 घंटे तक भी नहीं ठहर सकता। तीर्थ यात्रियों ने वहां के टैंकरों और गलियों को प्रदूषित कर दिया है।' (गांधी वाङ्मय, भाग-14, पृष्ठ 57)। इसी तरह यंग इंडिया में 3 फरवरी 1927 को उन्होंने बिहार के पवित्र शहर *गया* की गंदगी के बारे में भी लिखा और यह इंगित किया कि उनकी हिन्दू आत्मा गया के गंदे नालों में फैली गंदगी और बदबू के खिलाफ बगावत करती है।

भारतीय रेलवे में आज भी गंदगी का वही आलम है। रेलवे के डिब्बों को और शौचालय साफ रखने के लिये श्रमिकों और कर्मचारियों को तो रखा जाता है जहां तक स्वच्छता और सफाई से संबंधित प्रश्न है हम भारतीय यात्रियों को इस बारे में कोई शर्म महसूस नहीं होती। शौचालयों का सही तरीके से इस्तेमाल नहीं किया जाता। यहां तक कि वातानुकूलित डिब्बों में यात्रा करने वाले पढ़े लिखे लोग भी अपने बच्चों को शौचालय सीट का इस्तेमाल नहीं करवा कर उन्हें बाहर ही शौच करवाते हैं। डिब्बों में कूड़ा फैलना तो आम बात है।

गांधीजी ने सार्वजनिक रूप से स्वच्छता की ओर सबका ध्यान खींचा

29 दिसंबर 1999 को अमृतसर कांग्रेस में एक भाषण में सी एफ एन्ड्रयूज का हवाला दिया। उनके अनुसार यूरोपीय मानते हैं कि बाहर से देखने पर भारतीय बहुत आकर्षक नहीं लगते क्योंकि वह सफाई और स्वच्छता के प्रति बहुत अधिक ध्यान नहीं देते और उसे गैर जरूरी समझते हैं।

कांग्रेस के करीब-करीब हर सम्मेलन में दिये अपने भाषण में गांधीजी ने स्वच्छता के मामले को उठाया 1 अप्रैल 1924 में उन्होंने दाहोद शहर के कांग्रेस सदस्यों को अच्छी साफ सफाई रखने के लिये बधाई दी और उन्हें सुझाव दिया कि वह अछूत समझे जाने वाले समुदाय के इलाकों में जाएं और उनमें स्वच्छता के प्रति जागरूकता जगाएं। उन्होंने उसी तरह 1925 में कानपुर कांग्रेस में सफाई रखने के इन्तजामों की भी बहुत प्रशंसा की थी।

गांधीजी मानते थे कि नगरपालिका का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सफाई रखना है। उन्होंने कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को पार्षद बनने के बाद स्वच्छता के काम करने का सुझाव दिया (कांग्रेस सम्मेलनों के दौरान गांधीजी के भाषण/संपूर्ण गांधी वाङ्मय, भाग 23 पृष्ठ 15, 387 /भाग 25, 40, 441 /भाग 26 /भाग 28, पृष्ठ 400, 412, 461, 471)। गांधीजी के लिये अस्वच्छता बुराई थी। 25 अगस्त 1925 को कलकत्ता अब (कोलकाता) में दिए गये भाषण में उन्होंने कहा, 'वह (कार्यकर्ता) गांव के धर्मगुरु या नेता के रूप में लोगों के सामने न आएं बल्कि अपने हाथ में झाड़ू लेकर आएं। गंदगी, गरीबी निठल्लापन जैसी बुराइयों का सामना करना होगा और उससे झाड़ू कुनैन की गोली और अरंडी के तेल साथ लड़ना होगा.. . (गांधी वाङ्मय, भाग-28, पृष्ठ 109)। 19 नवंबर 1925 के यंग इंडिया के एक अंक में गांधी जी ने भारत में स्वच्छता के बारे में अपने विचारों को लिखा। उन्होंने लिखा, 'देश के अपने भ्रमण के दौरान मुझे सबसे ज्यादा तकलीफ गंदगी को देखकर हुई... इस संबंध में अपने आप से समझौता करना मेरी मजबूरी है।' (गांधी वाङ्मय, भाग-28, पृष्ठ 461)।

स्वच्छता शिक्षा

कई लोगों ने गांधीजी को पत्र लिखकर आश्रम में उनके साथ रहने की इच्छा जाहिर की थी। इस बारे में उनकी पहली शर्त होती थी कि आश्रम में रहने वालों को आश्रम की सफाई का काम करना होगा जिसमें शौच का वैज्ञानिक ढंग से निस्तारण करना भी शामिल है। गांधीजी ने हमारा ध्यान इस ओर खींचा। उन्होंने हमें बताया कि हमें पश्चिमी देशों में सफाई रखने के तरीकों को सीखना चाहिये और उनका उसी तरह पालन करना चाहिए।

पंचायतों की भूमिका के बारे में गांधीजी ने कहा था कि गांव में रहने वाले प्रत्येक बच्चे, पुरुष या स्त्री की प्राथमिक शिक्षा के लिये, घर घर में चरखा पहुंचाने के लिये, संगठित रूप से सफाई और स्वच्छता के लिये पंचायत जिम्मेदार होनी चाहिये।

21 दिसंबर 1924 को बेलगांव में अपने नागरिक अभिनंदन के जवाब में उन्होंने कहा था, 'हमें पश्चिम में नगरपालिकाओं द्वारा की जाने वाली सफाई व्यवस्था से सीख लेनी चाहिये... पश्चिमी देशों ने कोरपोरेट स्वच्छता और सफाई विज्ञान किस तरह विकसित किया है उससे हमें काफी कुछ सीखना चाहिये... पीने के पानी के स्रोतों की उपेक्षा जैसे अपराध को रोकना होगा... (गांधी वाङ्मय, भाग-25, पृष्ठ 461)।

प्रातीय कांग्रेस कमेटी के लिये मसौदा मॉडल नियमों में उन्होंने पंचायत की भूमिका को रेखांकित किया और लिखा, 'गांव में रहने वाले प्रत्येक बच्चे, पुरुष या स्त्री की प्राथमिक शिक्षा के लिये, घर घर में चरखा पहुंचाने के लिये, संगठित रूप से सफाई और

स्वच्छता के लिये पंचायत जिम्मेदार होनी चाहिये।' (गांधी वाङ्मय, भाग-19, पृष्ठ 217)। उन्होंने स्वच्छता के लिये शिक्षा के पक्ष में स्पष्ट रुख ले लिया। 1933 में उन्होंने लिखा, 'शिक्षा देने के लिये तीन *आर* का ही ज्ञान होना काफी नहीं है। *हरिजन* मानवता के लिये अन्य चीजों का भी अर्थ होता है। शिष्टाचार और स्वच्छता का तीनों आर की शिक्षा से पहले अपरिहार्य है।' (गांधी वाङ्मय, भाग-56, पृष्ठ 91)। उन्होंने फिर 1935 में स्वच्छता की सीख देने का प्रयास किया और तीन *आर* की चिंता किये बिना लोगों को सफाई के प्रति जागरूक किया। उन्होंने 'हरिजन' के एक अंक में लिखा भी था कि सफाई और स्वच्छता के मामले में '*तीन आर*' का मतलब सिर्फ कहने भर के लिये ही है। वास्तव में उसका कोई महत्व नहीं है।' (गांधी वाङ्मय, भाग-60, पृष्ठ 120)।

शहरी मूलभूत सुविधाएं गावों से पलायन करके शहरों में आये लोगों तक पहुंच नहीं पातीं। 2012 में हमारे देश में करीब 62.6 करोड़ लोग जो कि जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत है, वह खुले में शौच करते हैं।

यह दुखद है कि हमने हार मान ली है। हमारे शिक्षा संस्थानों में सफाई कर्मचारी हैं। 'अधिकार' के प्रति सचेत कार्यकर्ता मानते हैं कि बचपन से ही स्वच्छता की आदतें सीखना बालश्रम है। अभी भी देर नहीं हुई है। नई तालीम को नये सिरे से शुरू करना होगा। ऐसी शिक्षा जिसे करके सीखा जाये वही उपयोगी होती है।

गांधी, स्वच्छता और सफाई कर्मचारी

गांधीजी को अस्पृश्यता से घृणा थी। बचपन से बालक मोहन के मन में अपनी मां के प्रति स्नेह सम्मान होने के बावजूद उस छोटी आयु में भी अपनी मां की उस बात का विरोध किया जब उनकी मां ने सफाई करने वाले कर्मचारी के न छूने और उससे दूर रहने के लिये कहा था। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि स्वच्छता और सफाई प्रत्येक व्यक्ति का काम है। वह हाथ से मैला ढोने और किसी एक जाति के लोगों द्वारा ही सफाई करने की प्रथा को समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने भारतीय समाज में सदियों से मौजूद अस्पृश्यता की कुरीति और जातीय प्रथा का विरोध किया। सफाई करने वाले जाति के लोगों को गांवों से बाहर रखा जाता था और उनकी बस्तियां बहुत ही खराब, मलीन और गंदगी से भरी हुई थीं। समाज में हेय समझे जाने, गरीबी और शिक्षा की कमी की वजह से वह ऐसी बुरी स्थिति में रहते थे। गांधी जी उन मलिन बस्तियों में गये और उन्होंने अस्पृश्य समझे जाने वाले लोगों को गले लगाया और अपने साथ गये अन्य नेताओं और कार्यकर्ताओं को भी वैसा करने के लिये कहा। गांधी जी चाहते थे कि इन लोगों की स्थिति सुधरे और वह भी समाज की मुख्यधारा में शामिल हों। उन्होंने पूरे भारत में छात्रों सहित सभी से ऐसी मलिन बस्तियों के लोगों की मदद करने के लिये कहा।

गांधीजी ने भारतीय समाज में सफाई करने और मैला ढोने वालों द्वारा किये जाने वाले अमानवीय कार्य पर तीखी टिप्पणी की उन्होंने कहा, 'हरिजनों में गरीब सफाई करने वाला या 'भंगी' समाज में सबसे नीचे खड़ा है जबकि वह सबसे महत्वपूर्ण है। अपरिहार्य होने के नाते समाज में उसका सम्मान होना चाहिए 'भंगी' जो समाज की गंदगी साफ करता है उसका स्थान मां की तरह होता है। जो काम एक भंगी दूसरे लोगों की गंदगी साफ करने के लिये करता है वह काम अगर अन्य लोग भी करते तो यह बुराई कबकी समाप्त हो जाती'। (गांधी वाङ्मय,, भाग-54, पृष्ठ 109)।

स्वच्छता: वर्तमान स्थिति

75 साल पहले गांधी जी द्वारा मैला ढोने की प्रथा खत्म करने की अपील के बावजूद यह आज भी कायम है। 1993 में बनाये गये कानून में किसी एक को भी सजा नहीं हुई और इसी लिये 2013 में हाथ से मैला ढोने की प्रथा को समाप्त करने के लिये नया कानून बनाया गया। राज्यों ने उस कानून को अभी लागू नहीं किया है। गुजरात सरकार ने तो हाथ से मैला ढोने वालों की मौजूदगी को ही नकार दिया है मिलैनियम डवलेपमेंट गोल (सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों) स्थायी विकास के लक्ष्यो में बदलने वाले हैं और भारत में अभी भी सुरक्षित स्वच्छता की स्थिति निराशाजनक है। विश्व स्टील के पेसीफिक इंसट्टियूट के आंकड़ों के अनुसार भारत की जनसंख्या के बहुत बड़े प्रतिशत के पास सुरक्षित स्वच्छता की पहुंच नहीं हो पाई है। संस्थान के अनुसार 1970 में केवल 19 प्रतिशत घरों (85 प्रतिशत शहर और 57 प्रतिशत गांव) में साफ सफाई थी। 2008 में यह 30 प्रतिशत जनसंख्या तक पहुंच सकी जिसमें 52 प्रतिशत शहरों और 20 प्रतिशत ग्रामीण इलाकों में थे। शहरी मूलभूत सुविधाएं गावों से पलायन करके शहरों में आये लोगों तक पहुंच नहीं पाती। 2012 में हमारे देश में करीब 62.6 करोड़ लोग जो कि जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत है, वह खुले में शौच करते हैं। (यूनिसेफ और विश्व स्वास्थ्य संगठन)।

स्वच्छता केवल शौचालयों तक ही सीमित नहीं है। भारत में 2012 तक अपने सभी ग्रामीण क्षेत्रों में संपूर्ण स्वच्छता को पहुंचाने का काम किया है, लेकिन यह अभी दूर लगता है। 1981 में भारत की ग्रामीण जनसंख्या के एक प्रतिशत तक ही संपूर्ण स्वच्छता कार्यक्रम का लाभ पहुंच सका था। 1991 में यह बढ़कर 11 प्रतिशत जनसंख्या तक पहुंचा। 2001 में 22 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को इस कार्यक्रम में शामिल किया गया और 2011 में दावा किया गया कि इस कार्यक्रम का लाभ 50 प्रतिशत जनसंख्या तक पहुंच गया। संपूर्ण स्वच्छता कार्यक्रम के तहत प्रत्येक घर में और हर स्कूल में शौचालय का निर्माण और अपशिष्ट पदार्थ प्रबंधन करना शामिल है। इस कार्यक्रम का पूरी तरह कार्यान्वयन अभी दूर की कौड़ी लगता है।

स्वच्छता और सफाई के काम के विस्तार और स्वीकारने में सांस्कृतिक बाधाएं भी आड़े आती हैं। इस संबंध में दो विशेष बातें हैं।

स्वच्छता और सफाई के काम के विस्तार और स्वीकारने में सांस्कृतिक बाधाएं भी आड़े आती हैं। इस संबंध में दो विशेष बातें हैं। पहली धार्मिकता और धर्मपरायणता स्वच्छता और सफाई से ज्यादा महत्वपूर्ण है।

पहली धार्मिकता और धर्मपरायणता स्वच्छता और सफाई से ज्यादा महत्वपूर्ण है। जैसा कि मैंने पहले भी बताया है कि ऐसा भारत में ज्यादातर धार्मिक स्थलों पर देखा जाता है। गांवों कस्बों और मंदिरों के आस-पास अक्सर बहुत गंदगी दिखाई देती है। इन जगहों पर कूड़े के ढेर, खुले में शौच, प्रदूषण और दूषित पीने का पानी आम बात है। ग्रामीण इलाकों और छोटे शहरों में जाति से संबंधित भावनायें अभी भी प्रबल और प्रचलित हैं। बड़े शहरों में यह कम हैं। प्रदूषण की अवधारण की सामाजिक स्वीकृति अभी जारी है जिसमें स्वच्छता और सफाई की उपेक्षा होती रही है।

दूसरी बात, फैक्टरियां और वायरस के रूप में स्वच्छ जीवों का अस्तित्व बहुत बढ़ गया है। ज्यादातर लोग जिन्होंने स्कूली शिक्षा हासिल की है और बुनियादी विज्ञान में पढ़ाई की है उन्हें भी सूक्ष्म जीवों द्वारा संदूषण और प्रदूषण की अवधारणा की समझ नहीं है। शहरी पढ़े

(शेषांश पृष्ठ 35 पर)

देशज कॉल सेंटर में रोजगार असुरक्षा

बाबू पी रमेश

अंतर्राष्ट्रीय कॉल सेंटर के विपरीत ज्यादातर घरेलू कॉल सेंटर्स में न्यूनतम आधारभूत संरचनाएं, मामूली गुणवत्ता की प्रौद्योगिकी और कार्यस्थल पर सुविधाएं ख़राब हैं। खचाखच भरा हुआ कार्यस्थल और हरदम नज़र रखने वाले पारंपरिक पर्यवेक्षी कर्मचारी-वर्ग वाले ये कॉल सेंटर किसी अनौपचारिक फ़ैक्टरी-सा माहौल देते हैं, जहां कर्मचारियों पर कड़ी निगाह रखी जाती है, इनकी कार्यावधि बड़ी लंबी होती है और कड़क प्रबंधन व्यवस्था होती है। ये केन्द्र बड़े पैमाने पर हो रहे शोषण की कोई सीमा नहीं जानते। यहां कौशल विकास की कोई उम्मीद नहीं होती। कार्य के स्तर में भी न्यूनता होती है

अनौपचारिक क्षेत्रों में नौकरियां सामान्य तौर पर विभिन्न तरह की रोज़गार असुरक्षा और कामगारों के जोखिम की शिकार हैं। इन व्यवसायों में अनिश्चितता की स्थिति की अभिव्यक्तियों में शामिल हैं: कम संगठित कार्यस्थल, अनौपचारिक कार्य संविदाओं की प्रधानता, निश्चित नियोक्ता-कर्मचारी संबंधों का अभाव, कम पगार, कार्यों के बढ़े हुए घंटे, काम करने की ख़तरनाक स्थिति, कार्य तीव्रता और शोषण के उच्च स्तर, सामाजिक सुरक्षा और सुरक्षात्मक / कल्याण के उपाय की अपर्याप्त पहुंच, कामगारों के बीच उनकी सामूहिकता का अभाव और बुनियादी श्रम अधिकारों से इन्कार। तदनुसार ऊपर ज़िक्र की गईं ज्यादातर (या सभी) विशेषताओं को आम तौर पर अनौपचारिक क्षेत्र के हिस्से के रूप में देखा जाता है और और जहां ये लक्षण नहीं होते या लगभग नहीं होते उन्हें औपचारिक क्षेत्र के घटक के रूप में देखा जाता है। हालांकि व्यावहारिक तौर पर इन अनौपचारिक और औपचारिक क्षेत्रों के बीच निर्विवाद रूप से फ़र्क कर पाना मुश्किल है क्योंकि प्रचलित विधि या औपचारिकता एक ही रोज़गार के अंदर या रोज़गारों के बीच पर्याप्त रूप से घटते-बढ़ते रहते हैं।

असंगठित क्षेत्र के उद्यमों के लिए राष्ट्रीय आयोग (एनसीईयूएस) की व्याख्या है कि हालात ऐसे भी हो सकते हैं कि 'औपचारिक क्षेत्र में अनौपचारिक रोजगार' और 'अनौपचारिक क्षेत्रों में औपचारिक रोज़गार' जैसी हो (एनसीईयूएसए 2009)। फलत: कुछ निश्चित रोज़गार जो ज़ाहिरा तौर पर औपचारिक क्षेत्र में आते हैं, उनके भीतर भी कुछ ऐसे लक्षण या चिह्न हो सकते हैं जो अनौपचारिक क्षेत्रों के होते हैं और ठीक इसके उल्टा भी हो सकता है। विभिन्न व्यवसायों की औपचारिक-अनौपचारिक विशेषताओं पर किसी निर्णय पर पहुंचने से पहले इसकी हदों को समझना बेहद ज़रूरी है। यह आलेख स्पष्ट रूप से औपचारिक या संगठित व्यवसायों ख़ासकर भारत के कॉल सेंटर के कार्यों की अनौपचारिकता के लक्षण की पहचान करता है।

कॉल सेंटर कार्य भारत में आधुनिक सेवा क्षेत्र में आता एक नया उभार है। प्रत्यक्षत: कॉल सेंटर अर्थव्यवस्था के औपचारिक क्षेत्र में आता है क्योंकि कार्यस्थल संगठित है (आम तौर पर उम्दा वास्तु और तकनीक से लैस चमचमाती इमारतों में ये कॉल सेंटर होते हैं)। ये फ़र्म राज्य सरकार या केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित नियम क़ायदे के अंतर्गत ही कार्य करती हैं । इसके अलावा ये रोज़गार सामान्य तौर पर बेहतर वेतनमान, सुविधाएं और मुआवाज़ा पैकेज मुहाये कराने वाले के रूप में जाने जाते हैं, जहां का कार्यस्थल लचीला, सक्षम और सशक्तीकरण से भरा हुआ होता है। अबतक उपलब्ध सूक्ष्म अनुभवजन्य अध्ययन पर आधारित एक नज़दीकी विश्लेषण इस बात पर से पर्दा उठाता है कि इस व्यवसाय में कार्यों और कामगारों के बीच अंतर्निहित असुरक्षा का अहसास बुरी तरह पसरा हुआ है, इस विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि इनके बीच अनौपचारिकता धीरे धीरे अपना पांव जमा रही

लेखक इंदिरागांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) में अन्तरनुशासन एवं पार-अनुशासन अध्ययन केन्द्र में असोसिएट प्रोफेसर हैं। वह बीपीओ क्षेत्र में श्रम से संबधित मुद्दों पर लगातार शोध कर रहे हैं और घरेलू तथा विदेशी दोनों ही कॉलसेंटरों के संबध में विशिष्ट अनुसंधान किए हैं। इन दिनों वह इग्नू के लिए 'श्रम और विकास' विषय पर स्नाकोत्तर पाठ्यक्रम तैयार कर रहे हैं। असंगठित क्षेत्र और जीविका, सामाजिक सुरक्षा आदि उनकी रुचि के शोध विषय हैं। ईमेल: **babu@ignou.ac.in.**

है। इस आलेख का बाद वाला हिस्सा विधिवत रूप से वर्ष विकास और भारत में कॉल सेंटर कार्य और आउटसोर्सिंग क्षेत्र के विचलन के संदर्भीकरण और उसकी संकल्पना के ज़रिये इन पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

आउटसोर्सिंग: आगमन, वृद्धि और विकास

बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग (बीपीओ) कॉल सेंटर कार्य को संगठित करने का केन्द्रीय सिद्धांत है। कार्य संगठन के इस मॉडल के अनुसार, एक जनक फ़र्म की कुछ गैर बुनियादी प्रक्रियाएं निश्चित मगर पहले से ही तय सहयोगी फ़र्म या फर्मों की तरफ़ स्थानांतरित कर दी जाती है। ऐसा मुख्य रूप से सिर्फ़ श्रम लागत कम करने के लिए किया जाता है। हालांकि आउटसोर्सिंग का तर्क काफी पुराना है और इसका प्रारंभिक एवं अविकसित रूप काफ़ी लंबे समय से दुनिया में प्रचलन में रहा है लेकिन इस पर ज्यादा से ज्यादा निर्भरता की ज़रूरत 1980 के आख़िर से महसूस की जाने लगी क्योंकि पश्चिमी दुनिया में विकसित अर्थव्यवस्थाओं के बीच कारोबार की प्रतिद्वंद्विता बढ़ती जा रही थी।

लागत को न्यूनतम करने के निरंतर प्रयास ने कुछ नई कम्पनियों को कुछ गैर बुनियादी प्रक्रियाओं वाली आउटसोर्स कार्य प्रक्रियाओं (जनक कंपनियों की आवश्यकतानुसार) को एकीकृत करने के लिए वह अनुकूल कारक थी जिसने दूर स्थित इन कंपनियों में कार्य प्रक्रियाओं को स्थानांतरित किये जाने को प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप बीपीओ फ़र्म की पहली खेप विकसित देशों के छोटे छोटे शहरों और ग्रामीण इलाक़ों में उभरी। चूंकि गांवों के मुक़ाबले शहरों की पगार ज्यादा थी, इसलिए यह बदलाव जनक कंपनियों को कुछ लोगों की क़ीमत पर बहुत सारे लोगों को संलग्न किये जाने की इजाज़त देता था। आउटसोर्सिंग की यह प्रारंभिक अवस्था थी और पश्चिम देशों में हो रही इस घटना को घरेलू आउटसोर्सिंग की तरह देखा जा रहा है क्योंकि आउटसोर्सिंग ख़ास-ख़ास देशों के भीतर ही दूर दराज़ क्षेत्रों में अपना आकार ले रही थी।

फलस्वरूप 1990 के मध्य तक पश्चिमी देशों की आउटसोर्सिंग की यह अवधारणा सस्ते श्रम की खोज करती हुई उल्लेखनीय विकास की अपनी दूसरी अवस्था में प्रवेश कर गयी। अब यह वैश्विक घटना थी और भारत, फिलिपीन्स जैसे देशों में स्थानांतरित होती गई। नौकरी प्राप्त करने वाले देशों में कई स्थितियां / कारकों ने उत्पादन प्रणालियों के इतने बड़े पैमाने पर सीमा पार से विस्तार में मदद की। इन कारकों में थे, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति द्वारा की जा रही पेशकश की नई संभावनाएं, फायदेमंद समय क्षेत्र और सस्ते एवं कुशल कामगारों की विस्तृत उपलब्धता आदि।

लिहाज़ा 1990 के मध्य से भारत में नई पीढ़ी में ख़ासकर सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक ग़ज़ब का मगर स्पष्ट उछाल देखा जाता रहा है और इस सूचना प्रौद्योगिकी ने सेवा क्षेत्र / बीपीओ को ख़ासा लाभ पहुंचाया। इस समय,भारत वैश्विक आउटसोर्सिंग उद्योग में एक बड़ी भूमिका निभा रहा है और आईटी आईटीईएस/बीपीओ भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे ज्यादा विकसित हो रहे क्षेत्रों में से एक है। सॉफ्टवेयर और सेवा कंपनियों के राष्ट्रीय संगठन (नैसकॉम) के अनुमान के अनुसार, भारत में सूचना प्रौद्योगिकी और बीपीओ उद्योग का सबसे प्रमुख व्यापार संघ है। जीडीपी में इस क्षेत्र की हिस्सेदारी जहां 1998 में सिर्फ़ 1.2 प्रतिशत थी,वही 2012 में बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो गई। 2013-14 का आर्थिक सर्वे यह बताता है कि 2012 के 55 प्रतिशत के मुक़ाबले भारत 2013 में कुल वैश्विक आउटसोर्सिंग मार्केट (इंजीनियरिंग सेवाओं एवं शोध-विकास कार्यों कों छोड़कर) का 55 प्रतिशत हिस्से पर अपना कब्ज़ा जमाये हुआ है। 2013-14 के दौरान हुए सर्वे के मुताबिक़ आईटी बिजनेस प्रोसेस प्रबंधन (BPM) क्षेत्र (हार्डवेयर को छोड़कर) ने 10.3 प्रतिशत की दर से 105 अरब अमेरिकी डॉलर की वृद्धि की है। सूचना प्रौद्योगिकी पर राष्ट्रीय नीति का अनुमान है कि आईटी एवं आईईएस उद्योग से होने वाली राजस्व प्राप्ति में लगातार बढ़ोतरी की संभावना है। 2011-12 में होने वाली प्राप्ति 100 अरब अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 2020 तक 300 अरब अमेरिकी डॉलर तक हो जाएगी और 2011-12 में 69 अरब अमेरिकी डॉलर के मुक़ाबले 2020 तक 200 अरब अमेरिकी डॉलर तक का सेवा निर्यात संभव है। रोज़गार के मोर्चे पर भी इस क्षेत्र ने उल्लेखनीय प्रदर्शन किया है। जहां 2013-14 में प्रत्यक्ष रूप से इस क्षेत्र में 31 लाख लोगों को रोज़गार मिला हुआ है वही अप्रत्यक्ष रूप से 10 लाख लोगों ने रोज़गार हासिल किया हुआ है।

नौकरी प्राप्त करने वाले देशों में कई स्थितियां / कारकों ने उत्पादन प्रणालियों के इतने बड़े पैमाने पर सीमा पार से विस्तार में मदद की। इन कारकों में थे, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति द्वारा की जा रही पेशकश की नई संभावनाएं, फायदेमंद समय क्षेत्र और सस्ते एवं कुशल कामगारों की विस्तृत उपलब्धता आदि।

भारत में आईटी आईटीईएस/बीपीओ क्षेत्र के विकास को मोटे तौर पर दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है। पहले चरण में (1990 के मध्य से लगभग 2005 के आसपास तक) मुख्य रूप से इस क्षेत्र के अंतर्राष्ट्रीय प्रक्षेत्र में रोज़गार का सृजन हुआ। इस चरण के दौरान कर्मचारी मुख्य रूप से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आउटसोर्स व्यापार प्रक्रियाओं में लगे हुए थे। इस चरण के बाद, हाल के ज्यादातर वर्षों में (2005 से) घरेलू अर्थव्यवस्था में आईटी आईटीईएस बीपीओ रोजगार का एक सतत विस्तार हुआ है। 2009 तक घरेलू क्षेत्र में 4 लाख 50 हज़ार का रोज़गार सृजन हुआ (रमेश, 2009) और समग्र विकास की यह प्रवृत्ति बताती है कि घरेलू रोज़गार के ये अवसर आगे भी लगातार विस्तार पाते रहेंगे। नासकॉम के अनुमान के मुताबिक़ घरेलू आईटी-बीपीओ बाज़ार 2012 में 20.7 प्रतिशत की प्रभावशाली दर से बढ़ रहा है।

कॉल सेंटर कार्य की संकल्पना व्यवस्था

भारत की आईटी आईटीईएस / बीपीओ का सबसे महत्वपूर्ण और दिखाई पड़ने वाला क्षेत्र कॉल सेंटर है। हालांकि इस क्षेत्र में हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर विकास, मेडिकल ट्रांसक्रिप्शन, वर्ड प्रोसेसिंग और डेस्कटॉप मुद्रण, कानूनी और वित्तीय प्रक्रिया की आउटसोर्सिंग, कार्यालय संचालन सहयोग, डिजाइन और ग्राफिक्स विकास और इसी तरह के और भी कार्य और क्षेत्र भी इस सेक्टर में शामिल हैं। कॉल सेंटर का महत्व महज़ इस कारण से नहीं है कि जीडीपी में इसका बड़ा योगदान है बल्कि इन फ़र्मों की रोज़गार सृजनशीलता अच्छे खासे अनुपात में है

आम धारणा है कि फ़ोन करना या फ़ोन

उठाना ही कॉल सेंटर का सबसे बड़ा काम है, लेकिन सच तो यह है कि टेलीमार्केटिंग/ टेलीसेल या कस्टमर केयर / संपर्क आपरेशन इसका एक हिस्सा भर है। इसके अलावा कुछ कॉल सेंटर ऑफिस सेवाओं में सहयोगी कार्यों जैसे बिलिंग सैलरी आदि और ग्राहकों के सहयोग जैसे डेटा संकलन को भी अंजाम देते हैं। विश्व स्तर पर और भारत में भी ये कॉल सेंटर और इसमें लगे हुए बहुत सारे लोग स्वर आधारित कार्यों में ही लगे हुए हैं। ऐसे अन्य दूसरे कार्यों मे प्रमुख है बैंक में इंटरनेट आधारित वार्तालाप और ईमेल संचार।

भारत में ग्राहकीय आधार पर आधारित कॉल सेंटर को दो भागों, कैप्टिव कॉल सेंटर और नॉन कैप्टिव (या तीसरे पक्ष) कॉल सेंटर में बांटा जा सकता है। कैप्टिव कॉल सेंटर जहां किसी एक ग्राहक की ज़रूरतों को अकेले ही पूरा करता है,वहीं नॉन कैप्टिव कॉल सेंटर कई फर्मों का सेट होता है और वो एक साथ कई ग्राहकों के लिए कार्य करता है। भारत में सही मायने में सभी अग्रणी कॉल सेंटर कैप्टिव श्रेणी में आते हैं। इस समय इन फ़र्मों के ज्यादातर भाग तीसरे पक्ष के संचालन में लगे हुए हैं। कार्य और कार्य दल सामान्य रूप से प्रक्रिया के लिहाज से संगठित है और तदनुसार कई प्रक्रियाएं (और विषम प्रकृति वाले दल) इकलौते कॉल सेंटर (जो तीसरे पक्ष के केन्द्रों के साथ विशेष रूप से सच है) के रूप में सह अस्तित्व कर सकती हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि कॉल सेंटर समरूप संस्थाएं नहीं हैं । फ़र्म के आकार, प्रकृति और प्रक्रियाओं की संलग्नता, कार्य समय, मुआवज़ा पैकेज,भौतिक कार्य दशाएं, ग्राहकों और कामगारों की सामाजिक आर्थिक विभिन्नताओं के हिसाब से इन कॉल सेंटर के बीच काफ़ी विभिन्नताएं मौजूद होती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू कॉल सेंटर

आईटी-आईटीईएस/बीपीओ की समग्र स्थिति के रूप में भारत में कॉल सेंटर का प्रवेश और उसका विस्तार दो चरणों में हुआ। पहला चरण 1990 के मध्य में शुरू हुआ और ज़ोर भी पकड़ने लगा। इस चरण को ख़ास तौर पर 'अंतर्राष्ट्रीय कॉल सेंटर' की शुरुआत और विस्तार के रूप में देखा जाता है। इस चरण के दौरान, भारत के लगभग सभी कॉल सेंटर की गतिविधियां अंतर्राष्ट्रीय रूप से आउटसोर्स सेवा सेक्टर कार्य का ही हिस्सा थीं। इसकी भाषा (चाहे स्वर आधारित रही हो या फिर इसके अलग रही हो) मुख्य रूप से अंग्रेज़ी थी लेकिन उत्तरोत्तर इसमें बदलाव आता गया। 21वीं सदी के पहले दशक के मौजूदा चरण में घरेलू कॉल सेंटर का वजूद आना शुरू हुआ। इस चरण में मुख्य रूप से देश के भीतर के ग्राहकों को अपनी सेवा मुहैया करा रहा है। इन कॉल सेंटर्स की भाषाएं अलग-अलग हैं और वो आवश्यकतानुसार क्षेत्रीय भाषाओं में ग्राहकों को अपनी सेवाएं दे रहे हैं। तदनुसार ये भाषाएं अंग्रेज़ी, हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाएं भी हो सकती हैं और कभी कभी इनका ग़ज़ब-सा तालमेल भी होता है।

अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू कॉल सेंटरों के बीच सिर्फ़ भाषाई आधार पर अंतर नहीं किया जा सकता बल्कि फ़र्क करने वाले और भी दूसरे कारक हैं। उदाहरण के लिए कई अनुभव आधारित अध्ययन हमें बताते हैं कि अपने घरेलू कॉल सेंटर के मुक़ाबले अंतर्राष्ट्रीय कॉल सेंटर में काम करने वाले कर्मचारी अपेक्षाकृत ज्यादा शिक्षित और वित्तीय रूप से ज्यादा संपन्न होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय कॉल सेंटर के ज्यादातर कर्मचारी शहरी इलाक़ों के क्रीमी लेयर (सामाजिक-आर्थिक रूप से समृद्ध) वाली पृष्ठभूमि से आते हैं, जबकि घरेलू कॉल सेंटर का एक बड़ा भाग ग्रामीण इलाक़ों से आता है और उनके मुक़ाबले इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति पिछड़ी हुई होती है। इनका शैक्षणिक और कुशलता स्तर भी अपेक्षाकृत कम होता है। अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू कॉल सेंटर्स में काम करने वाले कर्मचारियों के कार्य और उनके प्रोफाइल की प्रकृति के बीच इतने अंतर्विरोध के होते हुए यह ज़रूरी हो जाता है कि इनके कार्य और रोज़गार सुरक्षा को लेकर अलग से बात की जाए।

अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू कॉल सेंटरों के बीच सिर्फ़ भाषाई आधार पर अंतर नहीं किया जा सकता बल्कि फ़र्क करने वाले और भी दूसरे कारक हैं। उदाहरण के लिए कई अनुभव आधारित अध्ययन हमें बताते हैं कि अपने घरेलू कॉल सेंटर के मुक़ाबले अंतर्राष्ट्रीय कॉल सेंटर में काम करने वाले कर्मचारी अपेक्षाकृत ज्यादा शिक्षित और वित्तीय रूप से ज्यादा संपन्न होते हैं।

असुरक्षित रोजगार और श्रम

भारत में कॉल सेंटर के विस्तार और विकास के शुरुआती चरण को लेकर किये गए अग्रणी अध्ययनों में इन क्षेत्रों में मिल रहे रोज़गार के आधार को कमज़ोर पाया गया (रमेश, 2004 टेलर एंड बेन, 2005, उपाध्याय एवं वासावी, 2006)। इन अध्ययनों द्वारा प्राप्त विस्तृत विश्लेषण ने यह स्थापित कर दिया है कि अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा वेतन और चमचमाते कार्य के माहौल (घरेलू अर्थव्यवस्था के दूसरे क्षेत्रों के मुक़ाबले) के बावजूद यहां भी न्यून रोज़गार सुरक्षा, लचीली रोज़गार व्यवस्था का प्रतिकूल प्रभाव, अनुपयुक्त सामाजिक सुरक्षा के उपाय, कठोर कार्य संगठन के साथ कठोर नियंत्रण व्यवस्था, कैरियर / कौशल में सुधार के लिए निराशाजनक गुंजाइश, कामगार संघ का लगभग अभाव और कमजोर सामाजिक संवाद तंत्र जैसे परेशान करने वाले लक्षण मौजूद हैं।

अध्ययन में यह पाया गया कि रोज़गार असुरक्षा अपने चरम पर है क्योंकि रोज़गार या तो संविदा पर आधारित है या ज्यादातर रोज़गार प्रोजेक्ट आधारित हैं, जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बीपीओ के ज़रिये हासिल किया जाता है। क्योंकि कॉल सेंटर का रोजगार अर्थव्यवस्था में रोज़गार सृजन की जगह व्युत्पन्न स्थित से प्राप्त किया जाता है, यही कारण है कि इस क्षेत्र में रोज़गार और संबद्ध सुरक्षा का आम तौर पर अभाव पाया जाता है।

व्यापक रूप से समझा जाता है कि वैश्विक उत्पादन श्रृंखला की मांग का पालन और लागत में कटौती क अपना अंतर्निहित तर्क इस बात के लिए उकसाता है कि कठोर काम संगठन की प्रणाली, निगरानी और नियंत्रण का पालन के ज़रिये कार्य और कार्यबल के युक्तिकरण की व्यवस्था की जाए (टेलर एवं बेन, 2005)। नयी अर्थव्यवस्था में टेलर के सिद्धांत के अत्यधिक उपयोग ने कर्मचारियों को कार्यों में इतना उलझाया है कि अब वे साइबर कूली की स्थिति में पहुंचा दिये गए हैं (रमेश, 2004)। आगे काम के घंटों के दबाव, विचित्र समय सारिणी और असामान्य सिद्धांत (लोकेशनल मास्किंग, जहां कर्मचारियों ने छद्मनाम धारण किया हुआ है) के कारण यह सेक्टर ग्राहक उन्मुख बन गया है, जहां कर्मचारी अपने आपको समाज से कटा हुआ और ख़ुद को नीचे दिखता हुआ पाता है।

कर्मचारियों को आधारभूत अधिकारों से भी पूरी तरह वंचित रहना पड़ता है। न तो वो कोई संगठन बना सकते हैं और न ही किसी तरह के श्रमिक अधिकार के अपनी वाजिब मांग रख सकते हैं, लिहाज़ा वहां प्रतिनिधित्व और आवाज़ उठाने की असुरक्षा भी है (रमेश, 2007) सावधानी से नियोजित प्रबंधन रणनीति के माध्यम से कर्मचारी अक्सर एक व्यक्ति की तरह प्रशिक्षित किये जाते हैं और सामाजीकरण की सीमा प्रबंधन की इच्छाओं से तय की जाती है। इस क्षेत्र में मानव संसाधन प्रबंधन के बदले हुए मानदंड इस बात का खाका खींचते हैं कि प्रबंधन इन कर्मचारियों के लिए चिंतातुर देखभाल करने वाले प्रकृति का है, यही कारण है कि कर्मचारी इन संकल्पनाओं की ज़द से बाहर जाकर न तो संगठित हो पाते हैं और न ही कोई संगठन बनाने के लिए सोच पाते हैं (नॉरोन्हा एंड डीक्रूज़ 2006)।

कुल मिलाकर भारत में कॉल सेंटर के आने के शुरुआती चरण (1990 के मध्य से 2005 के बीच) के दौरान शोध का केन्द्रीय बिन्दु रोज़गार की गुणवत्ता का वैश्विक आउटसोर्स्ड कार्य विकल्पों के अंतर्निहित ख़तरों और उसकी जटिलताओं की समझ थी। तदनुसार यह पाया गया कि नई पीढ़ी के ये व्यवसाय अपनी अंतर्निहित असुरक्षा, कमज़ोरियों और 'गरिमामय कार्य' के अभावों से जूझ रहे हैं।

घरेलू कॉल सेंटर में तीव्र असुरक्षा

भारत में आउटसोर्सिंग आंदोलन के दूसरे चरण में इस क्षेत्र में रोज़गार की गुणवत्ता में तेज़ी से गिरावट आयी है। दूसरे चरण में घरेलू क्षेत्र की कंपनियों के लिए अपनी सेवाएं उपलब्ध कराने वाले रोजगार खूब फूले फले।

घरेलू कॉल सेंटर पर किये गए अग्रणी अध्ययन (रमेश, 2010) में बताया गया है कि कार्यबल के प्रोफाइल, कार्य संगठन, कार्य की शर्तों, कार्य संबंधों को लेकर घरेलू कॉल सेंटर अपने समकक्ष दूसरे अंतर्राष्ट्रीय कॉल सेंटर से बिल्कुल अलग हैं। काम के समय में ज़बर्दस्त परिवर्तन और ग्राहकों की ज़रूरतों में बदलाव के बावजूद घरेलू क्षेत्र में काम की भारी असुरक्षा और अप्रभावी कार्य दशा है। इन व्यवसायों में घटिया सैलरी पैकेज, कार्य की अप्रभावी शर्तें, निचले स्तर के कौशल की आवश्यकता और कठोर नियंत्रण तंत्र है।

अंतर्राष्ट्रीय कॉल सेंटर के विपरीत ज्यादातर घरेलू कॉल सेंटर्स में न्यूनतम आधारभूत संरचनाएं, मामूली गुणवत्ता की प्रौद्योगिकी और कार्यस्थल पर ख़राब सुविधाएं हैं। खचाखच भरा हुआ कार्यस्थल और हरदम नज़र रखने वाले पारंपरिक पर्यवेक्षी कर्मचारी-वर्ग वाले ये कॉल सेंटर किसी अनौपचारिक फ़ैक्टरी-सा माहौल देते हैं, जहां कर्मचारियों पर कड़ी निगाह रखी जाती है, इनके काम के घंटों का दरमियान बड़ा लंबा होता है और कड़क प्रबंधन व्यवस्था होती है। ये केन्द्र बड़े पैमाने पर हो रहे शोषण की कोई सीमा नहीं जानते, ख़ासकर इस कारण कि यहां के कर्मचारियों में सामूहिकता का पूरा अभाव होता है। यहां कौशल विकास की कोई उम्मीद नहीं होती, कार्य के स्तर में भी न्यूनता होती है और ऊपर से इनके रोज़गार को लेकर इनमें असुरक्षा होती है। इसके अलावा जो कंपा देने वाले पहलू हैं, वो हैं, सामाजिक सुरक्षा और श्रम कल्याण के उपाय का अतिनिम्न स्तर पर होना।

काम के समय में ज़बर्दस्त परिवर्तन और ग्राहकों की ज़रूरतों में बदलाव के बावजूद घरेलू क्षेत्र में काम की भारी असुरक्षा और अप्रभावी कार्य दशा है। इन व्यवसायों में घटिया सैलरी पैकेज, कार्य की अप्रभावी शर्तें, निचले स्तर के कौशल की आवश्यकता और कठोर नियंत्रण तंत्र है।

अभी तक किये गए अन्य अध्ययनों का निष्कर्ष भी इस तथ्य की पुष्टि करता है (टेलर आदि, अल, 2013)। इन अध्ययनों से यह साफ़ हो जाता है कि आईटी एवं आईटीईएस-बीपीओ के अंतर्राष्ट्रीय प्रक्षेत्र के मुक़ाबले घरेलू क्षेत्रों के रोज़गार की गुणवत्ता अनाकर्षक है।

समापन टिप्पणी

उपर्युक्त विश्लेषण से यह साफ़ है कि हालांकि कॉल सेंटर में रोजगार औपचारिक प्रतीत होता है (संगठित कार्यस्थलों, नियंत्रणकारी ढांचा, अपेक्षाकृत कार्य की मज़बूत शर्तें और स्थितियां जैसी विशेषताओं के कारण)। ऐसे कई अन्य लक्षण यहां भी मौजूद हैं जो इन्हें अनौपचारिक क्षेत्र के ज्यादा नजदीक लाकर खड़ा करते हैं। इस प्रकार रोज़गार असुरक्षा को संबोधित करते और इनके लिए निर्णायक उपाय सुझाते हुए कहा जा सकता है कि कार्यक्रम बनाते हुए या इसकी डिज़ाइनिंग करने हुए इस बात का ख्याल रखना ज़रूरी है कि नीतियां और कानूनी / नियंत्रणकारी उपाय इस तरह अपनाये जाएं ताकि कॉल सेंटर्स के कर्मचारियों के रोज़गार के 'स्वास्थ्य' की ताक़त बढ़ायी जाए और उनके कल्याण की पुरज़ोर व्यवस्था की जाए। इस आलेख में हुई चर्चाएं सुझाव देती हैं कि सूचना व्यवसायों में कई अन्य अमानक / रूढ़ व्यवसायों की अंतर्निहित असुरक्षा को लेकर एक व्यवस्थित और विश्लेषणात्मक समझ की ज़रूरत है। ❑

सन्दर्भ:

- **एनसीईयूएस (2009):** द चैलेंजेज ऑफ इम्प्लॉयमेंट इन इंडिया: एन इनफॉर्मल इकोनॉमी पर्सपेक्टिव, फ़ाइलन रिपोर्ट आफ़ॅ द नेशनल कमिशन फॉर इंटरप्राइजेज इन द अनऑरगनाइज्ड सेक्टर, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- **नॉरोन्हा, अर्नेस्टो एंड डीक्रूज़, प्रमिला (2006):** इकनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली, वर्ष 41, अंक 21, 27 मई।
- **रमेश, बाबू पी. (2004):** इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल विकली, वर्ष 39, अंक 5, 31जनवरी।
- **रमेश बाबू पी (2007):** द इन्टरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन 'लेबर एंड चैलेंजेज ऑप डेवलपमेंट' ग्लोबल लेबर यूनिवर्सिटी आफ़ॅ द विटवाटरस्रैंड, जोहानिसबर्ग, साउथ अफ्रीका में प्रस्तुत शोधपत्र, 1-3 अप्रैल।
- **रमेश बाबू पी. (2009):** आईएलओ/ जेआईएलपीटी फिफ्थ राउंड ज्वाइंट इन्वेस्टिगेटिव स्टडिज़, इन्टरनेशनल लेबर ऑर्गेनाइजेशन, बैंकॉक।
- **रमेश बाबू पी. (2010):** चेंजिंग प्रोफ़ाइल ऑफ वर्क ऑर्गेनाइजेशन, टर्म्स ऑफ वर्क एंड लेबर इन इंडियाज सर्विस सेक्टर: ए केस स्टडी आफ़ॅ डोमेस्टिक कॉल सेंटर्स, लेबर एंड डेवलपमेंट, वोल्युम 17
- **टेलर, पी.एंड बेन, पी.एम. (2005):** इंडिया कॉलिंग टू द फार अवे टाउन्स: द कॉल सेंटर लेबर प्रोसेस एंड ग्लोबलाइजेशन, वर्क, एंप्ल्वायमेंट एंड सोसाइटी, वर्ष 19, अंक 2.
- **टेलर, पी. व अन्य (2013):** द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट, वर्ष 24, अंक 2.
- **उपाध्याय, कैरल एंड वासावी, ए.आर.(2006):** वर्क, कल्चर एंड सोसाइटी इन द इंडियन आईटी इंडस्ट्री: ए सोसियोलॉजिकल स्टडी, फाइनल रिपोर्ट सबमिटेड टू आईडीपीएड, स्कूल ऑफ सोशल साइन्सेज़, नेशनल इंस्टीच्युट ऑफ एडवान्स्ड स्टडीज़, बंगलुरू।

स्वच्छता आंतरिक और बाह्य दोनों ही होनी चाहिए, आंतरिक स्वच्छता का मतलब है सच्चाई, सच्चाई ही शुद्धता का मूल तत्व है, यही शुद्धता निर्मलता का दूसरा नाम है: महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय भाग 49, पृष्ठ 414)

हाशिए से उठकर अर्थव्यवस्था का केन्द्र बनने की क्षमता

प्रवीण शुक्ला

असंगठित क्षेत्र का दायरा व्यापक है और इसमें शामिल कई पेशे ऐसे हैं जो सामान्य दृष्टिकोण से तो हाशिए पर हैं परंतु इनमें संभावनाएं अनंत हैं। बीड़ी निर्माण और कबाड़ संग्रह कारोबार मिसाल के तौर पर देखे जा सकते हैं। अगर इन्हें ठीक से व्यवस्थित-संगठित किया जाए तो सरकार के लिए बड़े पैमाने पर राजस्व प्राप्ति के नये द्वार खुल सकते हैं, वहीं ऐसा करने पर इन पेशों में अंतिम सोपान पर कार्यशील आबादी का भी कल्याण हो सकेगा और सरकारी कल्याण योजनाओं पर उनकी निर्भरता कम हो सकेगी

भोजन की खोज छोड़ उसके उत्पादन की तरफ बढ़ते हुए मानव में सामाजिकता का विकास होने पर समाज के सक्षम लोग वस्तुओं के उत्पादन व सेवाओं के जरिये अपनी सामाजिक सहभागिता सुनिश्चित करने लगे। यह सहभागिता ना केवल लोगों की आजीविका का साधन बनी बल्कि उनकी आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान को सुदृढ़ करने का जरिया भी बन गयी। कालान्तर में इन वस्तुओं के उत्पादन व सेवाओं की भी भिन्न भिन्न श्रेणियां बन गयीं जिनको लोग एकल, पारिवारिक या संगठित होकर बड़ी इकाईयों में मसलन को-ओपरेटिव, कम्पनी या अन्य सोसाईटी बनाकर प्रदान करने लगे। कर्म आधारित समाजिक संरचनाओं ने ग्रामीण स्तर पर समाज को स्वालम्बन तो प्रदान कराया पर इस व्यवस्था से बहुत ज्यादा बड़ी इकाई स्थापित नहीं हो पायी।

पर्याप्तता के मूल मन्त्र पर चलते हुए गांव में जहां एक ओर कुम्हार, बढ़ई, धोबी, नाई जैसे मूलभूत सेवा प्रदाताओं की व्यवस्था थी तो वहीं कृषि व्यवसाय के लिये कृषि मजदूरों का श्रम उपलब्ध था। ग्रामीण समाज की जरूरतें थोड़ी थीं, अतिरिक्त उत्पाद और सेवाएं एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना भी मुश्किल था सो यह उत्पादन व सेवाओं में लगी छोटी छोटी इकाईयां ना तो कभी संगठित हुईं और ना ही विस्तार कर पायीं। अपने पर्याप्तता के लक्ष्य तक महदूद यह सेवाएं ना तो विशिष्टता पैदा कर पायीं ना ही बड़े उपक्रम में तब्दील हो पायीं मसलन कोई नाईयों का समूह संगठित होकर बड़े नामचीन हेयर ट्रीटमेंट और सज्जा कम्पनियों में नहीं बदल पाया और ना ही विविधता लाते हुए मसाज या बॉडी फिटनेस सरीखी सेवाए दे पाया। यह व्यवस्थाएं पीढ़ी दर पीढ़ी निर्बाध रूप से चलती रहीं। गाव में बसने वाले भारत की इन्हीं छोटी असंगठित इकाइयों ने भारत के मौजूदा श्रम का स्वरूप तय कर दिया।

18वीं सदी में यूरोप के औद्योगीकरण ने ना केवल दुनिया की भौगौलिक - राजनीतिक - आर्थिक व्यवस्था बदल दी बल्कि इस क्रांति ने भारत में श्रम के स्वरूप को भी बदलने में काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस क्रान्ति से बनी औद्योगिक इकाइयों ने बड़े बड़े नगर स्थापित कर डाले। पिछले दो सौ वर्षों से लगातार बढ़ रहे इन शहरों ने सदियों से चली आ रही श्रम व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर उत्पाद-सेवाओं के उपभोग के बड़े बड़े केन्द्रों का निर्माण कर दिया। बढ़े केन्द्रों और बढ़ी मांगों ने उत्पाद-सेवाएं देने वाले लोगों को संगठित करना शुरू किया, इस प्रक्रिया ने ही बाद में बड़ी बड़ी कम्पनियों का निर्माण किया। मांग और पूर्ति के चक्र ने बाजार को पर्याप्तता की मूल राह से हटा कर विशेषीकृत होने पर बाध्य लगी, जो काम एक आदमी कर लेता था उसको विभाजित कर श्रेणियां बन गयीं।

शहरों के उद्भव ने अनेकानेक विशेष योग्यतायें एक जगह पर सृजित कर टेलेंट पूल का निर्माण कर दिया जबकि कम आबादी और पर्याप्तता के सिद्धांत वाली ग्राम व्यवस्था में यह सम्भव नही था। पहले प्रत्येक गाव के लिए चिकित्सक हो सकते थे पर शल्य चिकित्सा या नेफ्रालॉजिस्ट जैसी विशेषताएं नहीं विकसित की जा सकती थीं। ऐसी विशेषीकृत व्यवस्थाओं ने श्रम को संगठित होने पर ज्यादा बल दिया जिस से आज

लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं। ज्यूरिख विश्वविद्यालय में अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं का अध्ययन करने के बाद आईसीआईसीआई बैंक के साथ मिलकर छोटे कारोबारियों के लिए माइक्रोफाइनैंस के क्षेत्र में काम कर चुके हैं। ईमेल: prathak.batohi@gmail.com

आरेख 1: भारत की जीडीपी में असंगठित क्षेत्र की भागीदारी

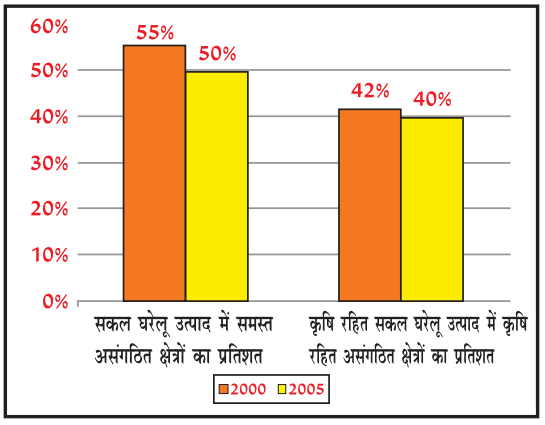

स्रोत: विश्व बैंक व क्रेडिट स्विस

हम अपने बीच निजी स्वास्थ्य सेवा प्रदाता पाते है। संगठित श्रम ने बाजार के उत्पादन से जुड़े तीन अहम सवालों क्या, कैसे और किनके लिए के नए मायने तय कर दिए, अब अधिकतम मुनाफा कमाना, समाज की जरूरतों की पूर्ति के मूल उद्देश्य से ऊपर हो गया। श्रम ज्यादा से ज्यादा संगठित किया जाने लगा, संगठित लोगों ने ज्यादा से ज्यादा संसाधन पर नियंत्रण स्थापित कर लिया ऐसे में संसाधन विहीन लोगों की एक बड़ी ज़मात पैदा हो गयी। जो केवल अपने श्रम के आधार पर जीविकोपार्जन करने पर विवश हो गयी यही संसाधनविहीन -असंगठित श्रम भारत की कुल श्रम शक्ति का लगभग 93 प्रतिशत है।

कुछ उद्योग जैसे वस्त्र उद्योग, हीरा तराशने का उद्योग, स्वर्ण आभूषण उद्योग में तो असंगठित कामगारों व इकाइयों का ही वर्चस्व है। मोटे तौर पर यह देश की आबादी का लगभग 32 प्रतिशत है और यह मजदूर सकल घरेलू उत्पाद में 50-55 प्रतिशत तथा राष्ट्रीय बचत में 45 प्रतिशत का योगदान करते हैं। उपर्युक्त उद्योगों में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के द्वारा किये गए सर्वेक्षण को आधार मानकर साल 2013 में लोकसभा में जो असंगठित क्षेत्र के आंकड़े रखे गए थे उसके अनुसार देश में करीब 43.7 करोड़ कामगार असंगठित क्षेत्र में कार्यरत थे जिसमें 24.6 करोड़ अकेले कृषि क्षेत्र में, 4.4 करोड़ निर्माण में व शेष अन्य विनिर्माण एवं सेवाओं के क्षेत्र में कार्यरत थे। असंगठित क्षेत्र को चिह्नित करना भी चुनौती है जिसे इस बार के लोकसभा सत्र में श्रम मंत्री ने स्वयं स्वीकार किया, सरकार की मानें तो असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों का वास्तविक आंकड़ा उपलब्ध ही नहीं है और इसका कारण यह है कि ऐसा करने के लिए अभी तक कोई प्रक्रिया नहीं बन पायी है।

अब जब असंगठित क्षेत्रों को चिह्नित व परिभाषित करने की कोई स्पष्ट प्रक्रिया नहीं है तो इनकी समस्याएं भी सही से समझ नहीं आएंगी। असंगठित क्षेत्रों की अपनी मजबूरियां हैं मसलन हजारों बादाम कामगारों के होने के बावजूद बादाम को पैक करने वाली औद्योगिक इकाइयों को घरेलू उत्पाद की श्रेणी में माना जाता है, रेहड़ी पटरी वालों को जीवनयापन करने के लिए लगातार घूस का सहारा लेना पड़ता है या बीड़ी मजदूरों की राज्यवार मजदूरी तय होने से बीड़ी उद्योग में गहराता संकट हो या शिवकाशी के पटाखे बनाने के क्षेत्र में जुड़े करीब सवा लाख बाल मजदूर जो कि कुल श्रम का 30 प्रतिशत हैं, यह अपने आप में चिंता का विषय है, इन चिंताओं के अलावा इन क्षेत्रों के लिए प्रोत्साहन बुनियादी ढांचा और वित्तीय पोषण भी समस्या है। भारतीय रिजर्व बैंक की एक समिति ने पाया है कि करीब 90 फीसदी छोटे दुकानदारों और कम आय वर्ग वालों के पास बैंक खाते ही नहीं हैं। पूरी तरह बैंक प्रणाली से दूर यह तबका ना केवल असंगठित रूप से काम करने को मजबूर है बल्कि वित्तीय पोषण से भी दूर हैं।

आज भी निवेश का 80 प्रतिशत हिस्सा संगठित क्षेत्रों में जा रहा है जिसमे 7 प्रतिशत लोग काम कर रहे हैं और यह संख्या भी बेहतर तकनीक की मदद से लगातार घट रही है जबकि कृषि में यह निवेश बमुश्किल 4-5 फीसदी है। सन 1992 से चल रहे आर्थिक सुधारों की कड़ी में नरसिम्हन कमेटी ने बैंकों को कर्ज देने की प्राथमिकता को हटा लेने की तजवीज कर दी। हालांकि इसे माना तो नहीं गया पर खेती मशीनरी और गृहऋण को भी वही तरजीह देकर उसको कमजोर जरूर किया गया। एनएसएसओ के आंकड़े देखें तो सन 2011-12 में असंगठित क्षेत्र में करीब 60 प्रतिशत लोग (20-25 करोड़) घरेलू मजदूरी और स्वरोजगार में लगे हैं जो लगभग बैंकिंग प्रणाली से बाहर हैं। असंगठित क्षेत्र में से महज 6 प्रतिशत को ही बैंकिंग ऋण प्राप्त है, इसी सबके मद्देनजर नाफुस (नेशनल फंड फार ऑर्गेनाइज्ड सेक्टर) का गठन किया गया था। माइक्रोफाइनेंस और स्वयं सेवी समूहों के द्वारा भी इसी उद्देश्य के लिए काम किया जा रहा है, असंगठित कामगारों को राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा कोष और हाल ही में शुरू की गयी जन-धन योजना से भी बैंकिंग से जोड़ने के प्रयास हो रहे हैं।

संगठनविहीन होने की वजह से इनकी मांगें मुद्दे सार्वजनिक नहीं हो पाती हैं, पर सामाजिक रूप से बहुत बड़ी होने की वजह से सरकारें इनकी इन मांगों से अनभिज्ञ हैं ऐसा भी नहीं है। असंगठित क्षेत्रों और हाशिये में जा चुके समाज का आपसी मेल जोल भी कमाल का है, यह बात एनएसएसओ के 2004-2005 के आंकड़ों में और भी स्पष्टता से निकल आई थी। आंकड़ों के हिसाब से गैर कृषि असंगठित क्षेत्रों में अनुसूचित जाति के कुल कामगारों की संख्या का 66.55 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति

तालिका 1: विभिन्न सामाजिक वर्गों की आबादी का कृषीतर असंगठित क्षेत्र में कार्यरत प्रतिशत

कामगार	हिंदु				मुस्लिम	
	अ.जा.	अ.ज.जा.	अ.पि.व.	सवर्ण	अ.पि.व.	अन्य
पुरुष	64.4	71.4	73.7	62.4	88.5	81.70
महिला	68.7	75.1	75.8	63.2	87.4	87.40
औसत	66.55	73.25	74.75	62.8	87.95	84.55

स्रोत: एनएसएसओ 61वें चक्र भारत में रोजगार एवं बेरोजगारी की स्थिति

के कुल कामगारों की संख्या का 73.25, हिन्दू ओबीसी के कुल कामगारों की संख्या का 74.75 प्रतिशत और मुस्लिम ओबीसी के कुल कामगारों की संख्या का 87.95 प्रतिशत, हिस्सा कार्यरत है।

तालिका 1 से स्पष्ट है कि कृषीतर असंगठित व्यवसायों में अनुसूचित जाति/जनजाति व अल्पसंख्यक समुदाय के लोग ही बड़े पैमाने पर कार्यरत हैं। यही वे वर्ग हैं जिनपर सरकार के सामाजिक क्षेत्र में व्यय का अधिकतम हिस्सा खर्च होता है। अर्थात् अगर इस तथ्य पर विचार किया जाए तो एक तीर से दो

शिकार हो सकते हैं। एक तरफ असंगठित होने के कारण इन वर्गों के समक्ष पेश आने वाली समस्याएं दूर की जा सकती हैं, वहीं दूसरी ओर इन वर्गों का सामाजिक-आर्थिक उत्थान होने से सामाजिक क्षेत्रक राजकोषीय व्यय में भी कमी लाने का अवसर मिल सकेगा। इतना ही नहीं इनमें से कई कारोबार तो ऐसे हैं जिनका ठीक से नियमन हो तो सरकार के लिए राजस्व प्राप्ति के नये द्वार भी खुल जाएंगे। बीड़ी उद्योग और कबाड़ कारोबार के इन बिन्दुओं के सन्दर्भ में समीक्षा आलेख के अन्तिम भाग में की गयी है।

मोटे तौर पर गैर असंगठित क्षेत्रों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग की हिस्सेदारी करीब 62 फीसदी है, ऐसे में असंगठित क्षेत्रों की तरक्की सीधे तौर पर समाजी उन्नति का सबब भी बनेगी। भारतीय अर्थव्यवस्था में हाल के दिनों में एक गंभीर बहस चल पड़ी है, इस बहस में असंगठित क्षेत्र का भी अहम किरदार है। इस बहस का केंद्र है सेन-ड्रीज़ माडल, जिसमें मानवीय मूल्यों और गुणों के विस्तार से विकास और प्रतिव्यक्ति आय से जोड़कर देखा गया है। इनके अनुसार मानवीय मूल्यों और गुणों के विस्तार के लिए खुराक, शिक्षा और स्वास्थ्य पर ज्यादा से ज्यादा निवेश की जरूरत है जिससे विकास की दर तेज होती है। इनका यह भी मानना है की मानवीय मूल्यों और गुणों के विस्तार के बिना हुआ विकास समाज में असमानता लाता है, इसमें मानवीय मूल्यों और गुणों को मानवीय विकास इंडेक्स (एचडीआई) के जरिये नापने की कोशिशें कर ज्यादा एचडीआई वाले राज्य केरल की कामयाबी को उदाहरण माना गया है।

इन दावों से इतर भगवती-पाणिग्रही का माडल है, जिसके अनुसार विकास ने ही गरीबी उन्मूलन कर मानवीय मूल्यों और गुणों का विस्तार किया है ऐसे में विकास को तेज करने के प्रयास होने चाहिए, इस माडल की सफलता भारत के उदारीकरण में देखे जा सकते हैं। पाणिग्रही ने एनएसएसओ के सन 2004-05 के आंकड़ों के आधार पर केरल को बड़े पन्द्रह राज्यों में सबसे ज्यादा असमानता का उदाहरण देते हुए, उसकी बढ़ी हुई आय के लिए खाड़ी व अन्य अन्य मुल्कों से आये आप्रावासियों के रेमिटेंस को प्रमुख कारण बताया। केरल में जीवन प्रत्याशा दर की बड़ोतरी के पीछे भी पाणिग्रही स्वास्थ्य में सन 2004-05 में राज्य के सकल घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) के मात्र 0.9 प्रतिशत सरकारी निवेश के बनिस्बत निजी क्षेत्रों के द्वारा 8.2 प्रतिशत किये गए निवेश को जिम्मेवार मानते है। शिक्षा में सन 2010 में स्वयं सेवी संस्था 'प्रथम' की रिपोर्ट का हवाला देते हुए 7-16 आयु वर्ग के 53 प्रतिशत बच्चों का निजी क्षत्रों में पढ़ने की बात को रख केरल में चारों बिंदु स्वास्थ्य, शिक्षा, असमानता, प्रति व्यक्ति आय पर सेन ड्रीज़ माडल को कमजोर पाया। अगर भगवती पाणिग्रही माडल की मानें तो अगर हमारे यहां सब्सिडी और कल्याण के मद में जो खर्च हो रहा है वह असंगठित क्षेत्रों को कौशल, शिक्षा, वित्त और कच्चे माल में मदद के लिए खर्च किया जाय तो ना केवल एक बड़ी आबादी में स्वावलंबन बढ़ेगा बल्कि इनकी विकास दर पूरे भारत की विकास दर को प्रभावित करेगी, यह अप्रत्याशित रूप से समाजिक क्रान्ति भी कर देगा।

असंगठित व्यवसायों में अनुसूचित जाति/जनजाति व अल्पसंख्यक समुदाय के लोग ही बड़े पैमाने पर कार्यरत हैं। यही वे वर्ग हैं जिनपर सरकार के सामाजिक क्षेत्र में व्यय का अधिकतम हिस्सा खर्च होता है। अर्थात् अगर इस तथ्य पर विचार किया जाए तो एक तीर से दो शिकार हो सकते हैं।

असंगठित मजदूरों का मौजूदा स्वरूप बदल रहा है, कृषि जहां एक समय में 80 फीसद से ऊपर मजदूर थे आज वहां से मजदूरों का पलायन अन्य क्षेत्रों के लिए हो रहा है, श्रम का सही आवंटन हो रहा है। उन्नत राष्ट्रों में खेती में मजदूर कुल मजदूरों की कुल आबादी का बमुश्किल 2-10 प्रतिशत होते हैं, कम उत्पादक श्रमिक हमारी गरीबी की एक वजह रही है, पर (एनएसएसओ) के आंकड़े बताते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों वहां गरीबी 1993/94 में 30.7 प्रतिशत से घटकर 2004/05 में 22 प्रतिशत रह गयी मतलब जहां से कृषि मजदूरों का पलायन हुआ है वहां समपन्नता बढ़ी है। श्रम का सही आवंटन हो इसके लिए कृषि मजदूरों को अन्य तरह के कौशल और सहायताएं देकर की उत्पादकता बढ़ानी होगी साथ ही आवंटन कृषि उत्पादकता भी बढ़ायेगी।

आरेख 2: वस्त्र उद्योग में संगठित/असंगठित इकाइयां

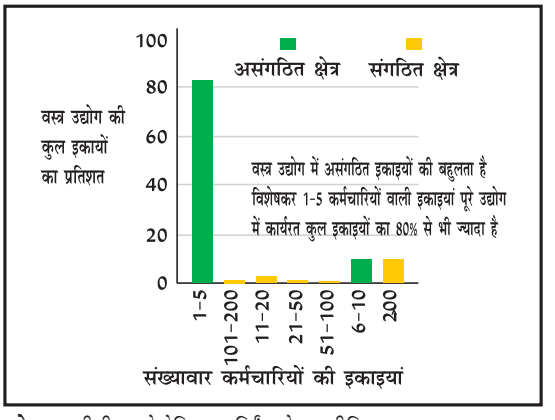

स्रोतः एडीबी इकोनोमिक वर्किंग पेपर सीरिज 213, अगस्त 2010

बेहतर निवेश व बैंकिंग से जुड़े होने की वजह से संगठित क्षेत्र ज्यादा से ज्यादा कच्चा माल, उन्नत तकनीकी और कुशल कामगारों को तो अपने दायरे में ले लेती है, असंगठित क्षेत्र के उद्यमों पर राष्ट्रीय आयोग की 2007 की रिपोर्ट इसे चिह्नित करते हुए कहती है कि हमारे संगठित उद्योग क्षेत्र में मजदूरी का हिस्सा 1980 के दशक के बाद आधा ही रह गया है, जो आज पूरी दुनिया में सबसे कम है। सनद रहे 90 के दशक का बाद से ही आर्थिक सुधार व विनिवेश बदस्तूर जारी है और इसी दौर में भारत में श्रमिक तेजी से असंगठित क्षेत्र में धकेले गये हैं साथ ही लघु उद्योग आधारित असंगठित क्षेत्र के लिए सन 1967 में 47 उत्पाद आरक्षित थे जो सन 1978 में बढ़कर 504 हो गये फिर सन 1984 में यह संख्या 872 उत्पादों तक पहुंच गयी, पर उसके बाद से आर्थिक सुधारों के चलते सन 2007 में यह संखया 239 उत्पादों तक सिमट गयी।

भारत के परिप्रेक्ष्य में सरकारी निवेश कार्यक्रमों ने भी श्रम को संगठित किया था पर ज्यों ज्यों सरकारी विनिवेश बढ़े हैं संगठित मजदूर असंगठित होता जा रहा है। सरकारों की मजबूरी भी है वैश्विक टक्कर के चलते श्रम कानूनों में भी ढील देनी पड़ती है मसलन फिलिपीन में उदय हो रहे सस्ते काल सेंटरों से भारतीय काल सेंटरों को सुरक्षित करना है तो लचीली श्रम नीति का होना जरूरी है। आज भारत में साठ के ऊपर कानून संगठित क्षेत्र में काम करने वाले साढ़े तीन करोड़ लोगों की सुरक्षा करते हैं पर असंगठित क्षेत्र में काम

आरेख 2: वस्त्र उद्योग में संगठित/असंगठित इकाइयां

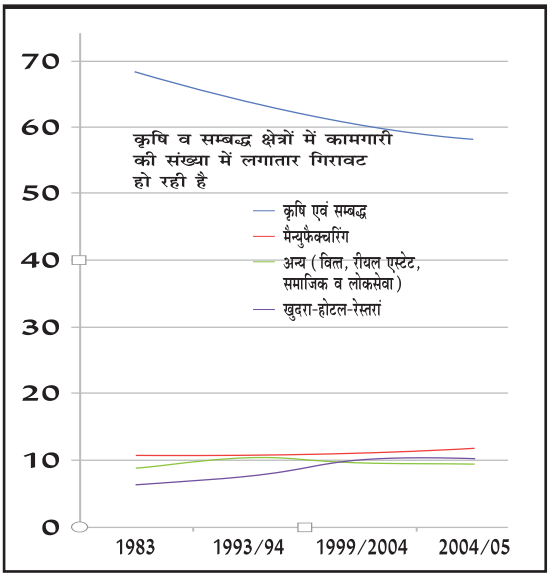

स्रोत: एनएसएसओ 61वां चक्र भारत में रोजगार स्थिति, पृष्ठ 515

करने वाले 43.7 करोड़ लोगों की सुरक्षा के लिए सम्पूर्ण रूप से लग सकने वाले महज दो कानून है (समान पगार व बंधुआ मजदूरी निरोधक), आठ कानून असंगठित क्षेत्रों के किन्हीं हिस्सों में लगाये जा सकते हैं। ऐसे में नियोक्ता और नियुक्त के बीच कोई स्पष्ट औपचारिक अनुबंध से वंचित असंगठित कई चुनौतियों को चुपचाप सह रही है। इस स्थिति में सरकार अगर कड़े श्रम कानून नहीं बना सकती तो स्वयं सहायता समूह और स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से हस्तक्षेप को बढ़ाना चाहिए।

बहुराष्ट्रीय कंपनियां मुनाफा कमाने के लिए ही गरीब देशों में निवेश करती हैं उनका मुख्य उद्देश्य उत्पादन खर्च में कटौती कर खुद को बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी बनाये रखना है, यह बात मजदूरों को जरूर असंगठित कर दे पर असंगठित क्षेत्र के लिए सकरात्मक होती है। बड़े उद्योग, असंगठित क्षेत्र को वे ठेके देकर सस्ते में काम कराकर इस क्षत्र का लगातार विस्तार कर रहे हैं, जिसका एक बहुत बड़ा कारण है की असंगठित क्षेत्रों में कई ऐसे नियम है जो संगठित क्षेत्रों की अपेक्षा लचर है साथ ही असंगठित क्षेत्र में लगने वाला कर-टैक्स भी काफी कम या नगण्य है। ऐसे में बड़े उद्योग अपना काम इन असंगठित इकाइयों को सौंप कर अपना काम और लागत दोनों के दबाव को कम कर लेते हैं।

40-50 लाख कामगारों के बीड़ी उद्योग भारत के असंगठित क्षेत्र का सबसे अच्छा उदाहरण है इसमें से करीब दो तिहाई महिला कामगार हैं इसके साथ ही अगर हम इस उद्योग के कच्चा माल के रूप में उपयोग में लाये जाने वाले तेंदू के पत्तों को एकत्र करने वाले असंगठित मजदूर और जोड़ लें तो यह संख्या करीब करीब 70-75 लाख हो जायेगी। इस उद्योग को सरकारी नीतियों और सिगरेट से मिलने वाली चुनौतियों से लगातार दो चार होना पड़ता है, जिसका नतीजा इसकी बिक्री लगातार गिर रही है, आईएलओ के एक शोध के अनुसार बीड़ी का कारोबार सन 1988 में 2885 करोड़ रुपये से गिरकर सन 1999 में करीब 781 करोड़ रुपये का रह गया। बीड़ी उत्पाद की अधिक खपत उत्तर के क्षेत्रों में अधिक होने से मध्य, दक्षिण और पूर्व में मौजूद इनकी इकाइयों में प्रतिस्पर्धा लगातार बनी रहती है जिसमें राज्य सरकार की मजदूरी नीति उसके बीड़ी उत्पाद की सफलता को तय करती है। बीड़ी उद्योग देश के कुछ हिस्सों तक ही सीमित है और जहां यह व्यापक है केवल वहीं की सरकारों ने अलग अलग मजदूरी तय की हुई है। बीड़ी उद्योग में करीब 60 से 70 फीसद लाभ केवल मजदूरी भुगतान में जाता है, ऐसे में मजदूरियों में फर्क उद्योग की सबसे बड़ी चुनौती बन कर उभरी है।

बीड़ी का उद्योग घर से चलने वाला उद्योग है जिसे सरकारी प्रभाव में संगठित करने का प्रयास हाल दशक में हो रहा है, इसके बचाव में बीड़ी कम्पनियों ने बिचौलियों का सहारा लिया है। छोटे छोटे ठेकेदारों लगभग उसी कीमत और कम जिम्मेदारी पर माल तैयार करवाये जा रहे हैं जो उन्हें अपनी इकाइयों में करने पड़ते, इस प्रक्रिया में कामगार को भी सहूलियत मिलती है। मजदूर एक कम्पनी से बंधे रहने की जगह कई ठेकेदारों के लिए काम करने के लिए स्वतंत्र रहता है जिससे उसके पास विकल्प और काम की निरंतर उपलब्धता रहती है। सरकारी हस्तक्षेप के बावजूद इस उद्योग में मजदूरी को कम करने का प्रयास लगातार होता रहता है मजदूरों की बनाई बीड़ियों में से एक हिस्सा लगातार रिजेक्ट किया जाता है जिससे कम मजदूरी दी जा सके। इस पर ठेकेदारों ने अघोषित स्वीकृति ले रखी है। इस रिजेक्शन के मानक भी तय हुए हैं पर उत्पाद की गुणवत्ता और कामगार की अकुशलता के बहाने रिजेक्शन लगातार किया जाता है।

बीड़ी उद्योग के उलट कई असंगठित ऐसे हैं जहां ना तो सरकारी नीति है ना नजर, मसलन कबाड़ का प्रबंधन शहरी क्षेत्रों का सबसे बड़ा असंगठित व्यवसाय है जिसमें मजदूर दिन भर घरों से, फैक्टरियों से या उद्योग से

तालिका 2: विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार स्थिति

क्षेत्र	1983	1993-94	1999-2004	2004-05
कृषि एवं सम्बद्ध	68.29	63.89	60.28	58.17
मैन्युफैक्चरिंग	10.76	10.65	10.99	11.81
अन्य *	8.91	10.65	9.56	9.46
खुदरा-होटल-रेस्तरां	6.38	7.6	10.26	10.32

स्रोत: एनएसएसओ 61वां चक्र भारत में रोजगार स्थिति, पृष्ठ 515

** वित्त, रियल स्टेट, सामाजिक क्षेत्र और लोकसेवा*

आरेख 4: संगठित क्षेत्र पर लगने वाला कर बनाम सकल घरेलू उत्पाद

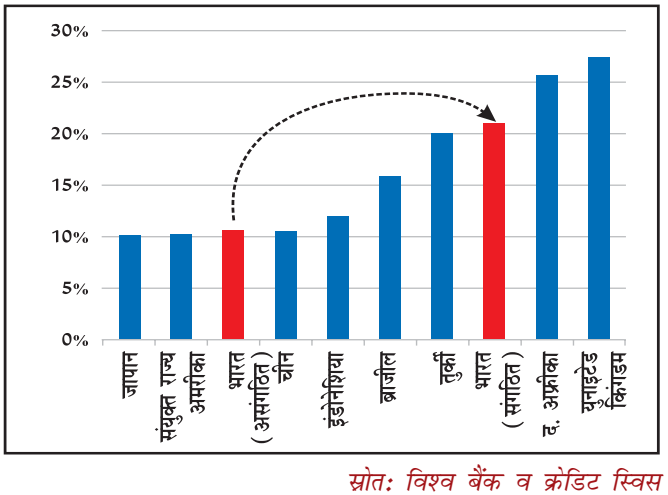

स्रोत: विश्व बैंक व क्रेडिट स्विस

कबाड़ खरीदकर उसे बड़े कबाड़ कारोबारियों को बेचते हैं। दिन भर मजदूरी और शाम को एकत्रित कबाड़ का व्यापार कर रहे खुदरा कबाड़ी बड़े शहरों हर इलाके में मौजूद हैं दस से पचास लाख की दूकानों वाले यह कबाड़ी लगभग कोई टैक्स जमा नहीं करते हैं ना ही पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल असर वाले कबाड़ पर ही बहुत ज्यादा शिक्षित हैं।

यह बड़ी सहजता से इधर उधर से आए गाड़ी या अन्य मशीनों के स्पेयर पार्ट्स व अन्य वस्तुएं, ई वेस्ट और यहां तक की खतरनाक रासायनिक पदार्थ तक खरीद लेते हैं। कबाड़ से जुगाड़ सम्भव होता है फिर चाहे आतंकवादियों के आजमाए हथकंडे हो या दुपहिया के इंजनों से बने जनरेटर हों। कबाड़ और कबाड़ियों की महिमा अपरम्पार, दिल्ली में लालकिले पर लगने वाला कबाड़ी बाजार भी हर इतवार लोगों की दिलचस्पी को पैदा करता है इसलिए सरकार इन्हें बंद भी नहीं कर सकती और इन पर विचार भी नहीं करती।

'खाली डिब्बा खाली बोतलें ... ले ले मेरे यार' गाकर महमूद ने कबाड़ और दुनिया के खालीपन को साथ लाकर दार्शनिक ऊंचाई दी पर यह बहुत सम्मान का व्यापार नहीं, अक्सर ऐसे पेशे जरायम से भी जोड़कर देखे जाते हैं जिसका एक कारण कबाड़ और चोरी के माल में एक चोली दामन का रिश्ता होना है। सरकारी बेरुखी की वजह से असंगठित कबाड़ उद्यम पर शायद ही कोई जमीनी शोध हुआ हो, इस व्यवसाय में खुदरा कबाड़ कलेक्शन से आगे कई और काम भी जोड़ लिये हैं, इसमें पहला काम औद्योगिक इकाइयों का है। इन इकाइयों में कबाड़ की अपनी टेक्नोलोजी है गैर जरूरती और कभी कभी जरूरत से ज्यादा माल मंगवाकर स्टोरेज करने पर जंग लगने या कुछ हल्के फुल्के रिजेक्शन पर माल स्क्रैप में बेच दिया जाता है। कबाड़ी तौल में हेर फेर या रात में माल उड़ा देते हैं, बड़े संयत्रों के आसपास मालवाहक लगे होते हैं जिसमें कबाड़ लाद कर कबाड़ियों के गोदामों तक रात में पहुंचाया जाता है भिलाई इण्डस्ट्रियल जोन में यह उपक्रमों की अक्षमता की वजह भी बना रहा है। कबाड़ का अवैध कारोबार भ्रष्टाचार का भी हिस्सा है जिसमें पहले अच्छे माल को कबाड़ बताकर बेचना फिर उसी कबाड़ को कबाड़ी छटाई कर उसे खरीद के कई गुना अधिक दाम में खपा देते हैं। इन्सुरेंस साल्वेज भी एक महत्वपूर्ण काम है, दरअसल साल्वेज वह डैमेज सामान है जिसे इन्सुरेंस कम्पनी भुगतान के बाद ले जाती है, यह सामान ये कम्पनियां कबाड़ी को बेच देती हैं इन सामान को रसीद लेकर खरीदा जाता है। कबाड़ियों के लिए कोई आखिरी उपयोग की सख्ती नहीं होने की वजह से बाद में साल्वेज को खुदरा मार्किट में बेचकर उनकी रसीद का इस्तेमाल बाद में कई बार चोरी की गाड़ियों के हिस्सों के लिये किया जाता है। दुर्घटनाग्रस्त गाड़ियों में चोरी की गाड़ियों के वे हिस्से जिनमें नम्बर नहीं होता लगा दिए जाते हैं इस काम का कोडनेम पासपोर्ट है। इस काम की भी बाकायदा मंडियां हैं जिनमें मेरठ का सोतीगंज, व दिल्ली की मायापुरी आदि प्रमुख हैं।

आजकल कुछ वेबसाइटें घर से ही कूड़ा उठाने का काम करती हैं। ई-प्रबंधन के लिए भी वेब का इस्तेमाल हो रहा है ये कम्पनियां भी बहुत ज्यादा बड़ी नहीं हैं और असंगठित हैं पर खुदरा कबाड़ियों की तरह ही इन सबका अच्छा खासा टर्नओवर है पर बिक्री नगण्य है।

इस असंगठित क्षेत्र पर नीति निर्देशों की जरूरत है, काले धन की तरह ही इसके लिए भी 'स्रोत-गंतव्य-अंतिम प्रयोग' यानी कबाड़ कहां से लिया गया, और इसका क्या होगा, आदि पर बात हो। फिर टैक्स बैंकिंग व इन्श्योरेंस आदि के दायरे में इन्हें लाया जाय। आज कबाड़ में काम में भी विविधता आ गयी है ई-कचरा और बायोमेडिकल कचरा का मैनेजमेंट बेहद गंभीर काम है। आजकल kuppathotti.com जैसी साइटें घर से ही कूड़ा उठा लेती हैं साथ ही ई-प्रबंधन के लिए भी वेब का इस्तेमाल हो रहा है यह सब कम्पनियां भी बहुत ज्यादा बड़ी नहीं हैं और असंगठित हैं पर खुदरा कबाड़ियों की तरह ही इन सबका अच्छा खासा टर्नओवर है पर बिक्री नगण्य है। अंत में, असंगठित क्षेत्र की वित्तीय सहायता, कर वसूल करके उनकी दशा सुधारने की दिशा में काम करने और नीति निर्धारण कर निवेश आकर्षित कराये जाने की जरूरत है, आबादी के इतने बड़े हिस्से की इसमें भागीदारी होने की वजह से इन क्षेत्रों के विकास से भारत की अर्थव्यवस्था को नयी तेजी प्रदान होगी। ❑

जो हमारी बाह्य स्वच्छता के लिए सत्य है, वही हमारी आंतरिक स्वच्छता के लिए भी सत्य है, अगर हमारा पड़ोसी आंतरिक रुप से अस्वच्छ है तो वह हमें भी प्रभावित करेगा: महात्मा गांधी (मसूरी में 02 जून 1946 को)

(पृष्ठ 26 का शेषांश)

लिखे लोगों में पीने के पानी का रखरखाव अभी दोषपूर्ण और खतरनाक ढंग से किया जाता है। शहरों में जब आरओ और जल शुद्धिकरण वाले यंत्र (वाटर प्यूरीफायर) नहीं थे तब लोग मटकों का पानी पीते थे, तब भी वह मटके से पानी निकालने के लिए कलछुल या डोई का इस्तेमाल करते थे जिससे पानी गंदा नहीं हो सके। हालांकि यह अधिकतर घरों में रखा ही नहीं जाता था। जिन घरों में होता भी था तो केवल शो पीस की तरह दीवार पर लटका रहता था।

भारत में स्वच्छता परिदृश्य अभी भी निराशाजनक है। हमने गांधी को एक बार फिर विफल कर दिया है। गांधीजी ने समाज शास्त्र को समझा और स्वक्षता के महत्व को समझा। पारंपरिक तौर सदियों से सफाई के काम में लगे लोगों को गरिमा प्रदान करने की कोशिश की। आजादी के बाद से हमने उनके अभिमान को योजनाओं में बदल दिया। योजना को लक्ष्यों, ढांचों और संख्याओं तक सीमित कर दिया गया।

हमने मौलिक ढांचे और प्रणाली से 'तंत्र' पर तो ध्यान दिया और उसे मजबूत भी किया लेकिन हम 'तत्व' को भूल गये जो व्यक्ति में मूल्य स्थापित करता है। हमें स्वच्छता के लिये ढांचागत सुविधाओं की जरूरत तो है लेकिन हममें स्वच्छता के लिए बुनियादी मूल्यों आरोग्य तत्व (गांधी जी सेनीटेशन' 210द के लिये 'आरोग्य' इस्तेमाल करते थे, क्योंकि भारतीय भाषाओं में सेनीटेशन के लिये कोई सटीक शब्द नहीं है) को भी स्थापित करने की जरूरत है। यह शिक्षा के माध्यम से ही लाया जा सकता है। गांधीजी ने स्वच्छता के प्रति शिक्षा और जागरूकता पर बल दिया था। भारत में आज हममें से अधिकतर को 'शौचालय प्रशिक्षण' और स्वच्छता और सफाई की शिक्षा की जरूरत है। गांधीजी इस मामले में हमारे पथ प्रदर्शक साबित हो सकते हैं। ❑

* इस लेख में दिए गए गांधी वाङ्मय के सभी संदर्भ स्वच्छाग्रह के मूल संस्करणों से उद्धृत किए गए हैं।

स्वच्छ भारत अभियान

चुनौतियां और समाधान

गांधी जयंती के अवसर पर 2 अक्टूबर, 20014 को शुरू हो रहे स्वच्छ भारत अभियान का लक्ष्य 2019 तक भारत को खुले में शौच की प्रवृति से मुक्त बनाना है। यह उद्देश्य व्यक्तिगत, सामूहिक और सामुदायिक शौचालय के निर्माण के माध्यम से हासिल किया जाना है। ग्राम पंचायत के ज़रिये ठोस और तरल अपशिष्ट प्रबंधन के साथ गांवों को साफ़ रखे जाने की योजना है। मांग के आधार पर सभी घरों को नलों के साथ जोड़कर सभी गांवों में पानी पाइपलाइन 2019 तक बिछाये जाने हैं। इस लक्ष्य को सभी मंत्रालयों तथा केन्द्रीय एवं राज्य की योजनाओं के बीच सहयोग और तालमेल, सीएसआर एवं द्विपक्षीय/बहुपक्षीय सहायता के साथ सभी तरह के नवीन एवं अभिनव उपायों के वित्तपोषण के माध्यम से हासिल किया जाना है।

भारत में 1.21 अरब लोग रहते हैं और दुनिया की आबादी का छठा हिस्सा यहां निवास करता है। देश में 1980 के दशक की शुरुआत में स्वच्छता आवृत्ति क्षेत्र एक प्रतिशत जितना कम था। 2011 की जनगणना के हिसाब से, 16.78 करोड़ घरों की लगभग 72.2 प्रतिशत भारतीय जनसंख्या 6,38,000 गांव में रहती है। इनमें से सिर्फ़ 5. 48 करोड़ ग्रामीण घरों में शौचालय है जिसका मतलब है कि देश के 67.3 प्रतिशत घरों की पहुंच अब भी स्वच्छता सुविधा तक नहीं हो पायी है। राज्यों के माध्यम से पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय से कराये गए आधारभूत सर्वेक्षण 2012-13 के अनुसार पाया गया है कि 40.35 प्रतिशत ग्रामीण घरों में शौचालय हैं।

चुनौतियां

गांवों में लगभग 59 करोड़ व्यक्ति खुले में शौच करते हैं। जनसंख्या के बड़े हिस्से की मानसिकता खुले में शौच करने की है और इसे बदलने की आवश्यकता है। उनमें से कई पहले से ही शौचलाय होने पर भी खुले में शौच करना पसंद करते हैं। इसलिए सबसे बड़ी चुनौती आबादी के इस बड़े हिस्से में शौचालय के इस्तेमाल को लेकर उनके व्यवहार में बदलाव लाने की है। मनरेगा और निर्मल भारत अभियान के बीच तालमेल की समस्या जैसे मुद्दे, शौचालय के उपयोग के लिए पानी की उपलब्धता, निष्क्रिय/बेकार हो चुके शौचालय पहले से निर्मित शौचालयों का क्या किया जाए जैसे मुद्दों के साथ ग्रामीण स्वच्छता के कार्यान्वयन के लिए क्षेत्रीय स्तरीय कर्मचारियों की अपर्याप्त संख्या के बारे में भी गंभीरता से सोचा जाना है।

बढ़ते क़दम

बदल रही मानसिकता बहुत महत्वपूर्ण है। चूंकि अधिकतर आईईसी (सूचना, शिक्षा एवं संचार) कोष राज्यों के पास हैं, इसलिए राज्य सरकारों को छात्रों, आशा कार्यकर्ताओं, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, चिकित्सकों, शिक्षकों, प्रखंड संयोजकों आदि के माध्यम से अंतर्व्यक्ति संचार (आईपीसी) पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। इसके लिए इन्हें घर-दर-घर भी संपर्क करना होगा। लघु फ़िल्मों की सीडी, टेलीविज़न, रेडियो, डिजिटल सिनेमा, पंफलेट के उपयोग भी करने होंगे।

सुरक्षित स्वच्छता व्यवहार के प्रति अपनी मानसिकता में बदलाव लाने के लिए स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ियों/सिनेमा की हस्तियों की भी इस अभियान में भागीदारी ज़रूरी है। पाइप जल आपूर्ति एवं घरों में शौचालय के लिए ज़िला स्तरीय सामेकित डीपीआर (डिटेल्ड प्रोजेक्ट रिपोर्ट्स) के जरिए एकदम निचले स्तर की योजना में पानी और स्वच्छता दोनों को एक साथ शामिल करना होगा। इसके लिए राज्य स्तरीय योजना स्वीकृति समिति की मंज़ूरी लेनी होती है। माइक्रोफाइनेंस एवं बैंकों के माध्यम से एपीएल परिवारों के लिए इस तरह के शौचालयों का पुनर्निर्माण भी कराया जा सकता है।

वर्तमान में अनावश्यक दोहराव और भ्रम से बचने के लिए राज्य स्तर पर पेयजल की आपूर्ति और स्वच्छता विभागों के विलय के माध्यम से प्रशासनिक आधारभूत ढांचे के सशक्तीकरण की योजना है। प्रखंड संयोजक एवं स्वच्छता दूत अब अनुबंध के आधार पर भर्ती किये जा रहे हैं एवं लोगों के प्रोत्साहन सूचना के प्रसार के लिए एनजीओ, स्व सहायता समूह, स्कूली छात्र, स्थानीय महिला समूह आदि के ज़रिये अंतर्वैयक्तिक संचार के नये तरीकों का पता लगाया जा सकता है। मिशन के भीतर कंपनी अधिनियम के अंतर्गत एक कंपनी के रूप में एसपीवी (विशिष्ट उद्देश्य वाहन) स्थापित किये जाने की योजना है। सीएसआर कोष, सरकारी एवं गैर सरकारी कोषों के अलावे एक बाहरी स्रोत होगा एवं सीएसआर परियोजना को लागू करेगा। यह केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा दिये गए जल एवं स्वच्छता के लिए विशिष्टता प्राप्त पीएमसी के रूप में भी काम करेगा। यह राजस्व स्रोतों, सामुदायिक शौचालयों, सामुदायिक जल उपचार संयंत्रों आदि मामलों में भी कार्रवाई करेगा। जल एवं स्वच्छता के लिए कई ज़िलों में काम करने वाली बहु ग्रामीण पाइपलाइन परियोजनाओं के लिए राज्यों द्वारा ज़िला डीपीआर की तैयारी के लिए पीएमससी (प्रोजेक्ट मैनेजमेंट कंसल्टेंट) की ज़रूरत पड़ने पर नौकरियों पर भी रख सकेगा। केन्द्र/राज्यों द्वारा भुगतान के आधार पर एक पीएमसी के रूप में आईईसी/आईपीसी गतिविधियों को भी अपने हाथ में ले सकता है। आधारभूत सर्वेक्षण 2013 में, राज्यों ने बताया है कि देश में निम्निलिखत स्वच्छता सेवा उपलब्ध कराने की आवश्यकता है:

क्रम संख्या	घटक	संख्या
	भारत में कुल घरों की संख्या	17.13 करोड़
1	आईएचएचएल	11.11 करोड़*
2.	विद्यालय में शौचालय	56,928
3.	आंगनवाड़ी शौचालय	1,07,695
4.	सामुदायिक स्वच्छता परिसर	1,14,315

*(इनमें से केवल 8,84,39,786 ही पात्र# श्रेणी के अंतर्गत है)

योजना के लिए शेष परिवार:

कुल परिवार जिनके लिए आधारभूत सर्वेक्षण में शौचालय की आवश्यकता दिखायी गयी है	**11.11 करोड़**
(-) अपात्र एपीएल	0.88 करोड़
(-) निष्क्रिय	1.39 करोड़
#शुद्ध बीपीएल पात्र एवं एपील पात्र	**8.84 करोड़**

इस प्रकार स्वच्छ भारत / निर्मल भारत अभियान योजना के अंतर्गत अगले पांच सालों में 2019 तक प्रतिवर्ष 177 लाख की दर से 8.84 करोड़ परिवारों को प्रोत्साहन दिया जाना है। इस समय परिवारों में शौचालय की वृद्धि दर 3 प्रतिशत है जिसे स्वच्छ भारत के ज़रिये 2019 तक तीन गुणा से ज्यादा बढ़ाकर 10 प्रतिशत तक की उपलब्धि पर ले जाना है। इस समय 14,000 शौचालय प्रतिदिन बनाये जा रहे हैं। इस योजना में शौचालय निर्माण दर 48,000 तक प्रतिदिन करना है। नाबार्ड/सिडबी के सहयोग से 2.27 करोड़ शौचालय (एपीएल श्रेणी के अंतर्गत) और बनाये जाने हैं। इसे अनुनय-विनय, सामूहिक दबाव के इस्तेमाल से सूचना, शिक्षा एवं संचार (आईईसी) एवं अंतर्वैयक्तिक संचार (आईपीसी) उपायों के माध्यम से अंजाम देना है।

यदि हम अपने घरों के पीछे सफाई नहीं रख सकते तो स्वराज की बात बेईमानी होगी: महात्मा गांधी

स्वच्छ भारत अभियान की शुरूआत 2 अक्टूबर, 2014 को गांधी जयंती के अवसर पर हो रही है । इस अभियान का लक्ष्य 2019 में गांधीजी की 150वीं जयंती तक पूरे देश को शौचालय सुविधा से युक्त और खुले में शौच की प्रवृति से मुक्त करना है। इस क्रम में केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने 'शहरी क्षेत्रों के लिए स्वच्छ भारत मिशन' कार्यक्रम को 24 सितम्बर को स्वीकृति भी दे दी। मिशन के तहत कुल 4041 सांविधिक नगरों में 5 वर्षों तक चलने वाले इस कार्यक्रम की अनुमानित लागत 62,009 करोड़ रुपये होगी। जिसमें केन्द्रीय सहायता 14,623 करोड़ रुपये की होगी।

क्रियान्वयन प्रणाली

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता के क्षेत्र में क्रियान्वयन प्रणाली को मजबूत करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जायेंगे:

❖ जल एवं स्वच्छता पर राज्यों के साथ एक सहमति ज्ञापन होगा जिसमें राज्य 2019 तक स्वच्छ भारत के लिए प्रतिबद्ध होंगे। राज्य 2015 तक जल एवं स्वच्छता के बीच अंतर्विनिमय कोष के साथ जल एवं स्वच्छता दोनों के कार्यान्वयन के लिए राज्यस्तरीय एक एकीकृत संरचना का निर्माण करेंगे। ❖ केन्द्रीय के कोष से अतिरिक्त खर्च से बचने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा अपनायी गई नीति, 'समय पर काम, की अवधारणा को राज्यों के साथ मिलकर अंजाम दिया जाएगा । ❖ जल एवं स्वच्छता दोनों के पूर्ण रूप में ज़िलों के एफ़आर (फ़िल्ड रिपोर्ट)/डीपीआर के आधार पर कोष को परियोजना आधार पर निर्गत किया जाएगा। ❖ केंद्रीय स्तर पर एक एसपीवी (स्थापित किया जा सकता है) एक पीएमसी के रूप में कार्य करेगा और यह सीएसआर का वित्तपोषण करेगा और पीपीपी परियोजनाओं के अंतर्गत सामुदायिक शौचालयों, जल शुद्धिकरण की प्रक्रियाओं को अंजाम दिया जा सकेगा। ❖ एसपीवी भी प्रभावी ढंग से आईईसी/आईपीसी गतिविधियों को लागू करेगा। नाबार्ड, सिडबी जैसी एजेंसियों के ज़रिये उन घरों के शौचालय के लिए लघु ऋण तंत्र को प्रभावी बनायेगा, जिन्हें या तो प्रोत्साहन की ज़रूरत नहीं है या शायद स्नान करने की जगह के साथ जिन्हें बेहतर शौचालय के निर्माण की आवश्यकता है। ❖ प्रखंड स्तरीय स्वच्छता संयोजक कार्यकर्ताओं की प्रणाली को विकसित किये जाने की ज़रूरत है, जो ग्राम पंचायतों के मुख्य सहयोगी होंगे और जो सूचनाओं एवं स्वच्छता गतिविधियों के सशक्तीकरण में मददगार साबित होंगे। ❖ देशभर की प्रत्येक ग्राम पंचायतों के लिए स्वच्छता दूत की पहचान करनी होगी, जिन्हें स्वच्छता के कौशल से लैस करना होगा और उन्हें उनके प्रदर्शन पर प्रोत्साहन राशि दी जायेगी। ❖ घर के स्तर पर मंत्रालय की एमआईएस के माध्यम से गहन निगरानी रखी जायेगी। प्रतिपुष्टि के लिए केन्द्र एवं राज्यों के वरिष्ठ अधिकारियों के अलावे सरपंचों से भी संवाद करने की ज़रूरत है। ❖ निर्मित शौचालयों के वास्तविक उपयोग के आधार पर जुटाये गए आंकड़ों पर केन्द्रित करते हुए वार्षिक स्वच्छता सर्वेक्षण किया जाएगा।

निर्मल भारत पुरस्कार स्थगित कर दिया जाएगा और पंचायती राज्य संस्थाओं - ग्राम पंचायत, प्रखंड पंचायत एवं जिला पंचायत एवं व्यक्तियों, अधिकारियों, संस्थाओं एवं एनजीओ के सर्वोत्तम प्रयासों को पुरस्कृत करने के लिए व्यापक आधार पर स्वच्छ भारत पुरस्कार योजना शुरु की जायेगी।

तालमेल

घरों में शौचालय निर्माण के लिए मनरेगा, आईएवाई, सीएससी निर्माण के लिए बीआरजीएफ और विद्यालय एवं आंगनवाड़ी शौचालयों के निर्माण तथा सामुदायिक स्वच्छता परिसर के विकास के लिए ज़िम्मेदार एमडब्लूसीडी के साथ मिलकर एक सम्मिलन बिन्दु का पता लगाया जा सकता है। • घरों में शौचालयों के लिए पानी की आपूर्ति करने वाली परियोजना एनआरडीडब्लूपी के ज़रिये विद्यालय एवं आंगनवाड़ी शौचालयों के निर्माण तथा सामुदायिक स्वच्छता परिसर के लिए जल आपूर्ति को भी सुनिश्चित किया जाएगा। (अगर आवश्यकता हुई तो दो क्षेत्रों में धन एवं कार्यकर्ताओं की अदल बदल लागू की जाएगी)। • राजीव गांधी पंचायत सशक्तिकरण योजना के माध्यम से पंचायती राज मंत्रालय के साथ अपनी स्वच्छता परियोजना गतिविधि, जो ग्राम पंचायतों के लिए सबसे उच्च प्राथमिकता वाली होगी। • जल आपूर्ति योजनाओं के साथ सीएससी एवं एसएलडब्लूएम (ठोस एवं तरल अपशिष्ट प्रबंधन) और खासकर विद्यालयों, आंगनवाड़ियों में स्वच्छता सुविधा के निर्माण के लिए सांसद/विधायक विकास कोष का दोहन और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के साथ अन्य कंपनियों से हासिल सीएसआर कोष के सम्मिलन को आगे बढ़ाना। • इसके अलावा, राज्य स्तरीय राज्य जल एवं स्वच्छता मिशन (एसडब्लूएसएम) एवं ज़िला स्तरीय डीडब्लूएसएम को सीएसआर फ़ंड के दोहन के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। • एकीकृत महिला स्वच्छता परिसर के निर्माण के लिए एम/ओ डब्लूसीडी का सम्मिलन तथा शौचालयों एवं पीने के लिए पानी उपलब्ध कराना।

सामुदायिक नेतृत्व में संपूर्ण स्वच्छता (सीएलटीएस) सामुदायिक नेतृत्व में संपूर्ण स्वच्छता (सीएलटीएस) पूरी तरह से खुले में शौच (ओडी) को खत्म करने के लिए समुदायों के बीच एकजुटता कायम करने की एक अभिनव पद्धति है। समुदायों को अपने स्वयं के मूल्यांकन का संचालन करने के लिए मदद किया जाता है एवं खुले में शौच (ओडी) के विश्लेषण करने तथा खुले में शौच से मुक्त (ओडीएफ) करने के लिए उनके स्वयं की कार्रवाई में भी मदद की जाती है। सामुदायिक नेतृत्व में स्वच्छता के हृदय पर यह एक झूठी पहचान की तरह चस्पा है कि वो वैसे शौचालय उपलब्ध करा रहे हैं जिनके न तो उपयोग की गारंटी है और न ही उन्नत स्वच्छता एवं स्वास्थ्य रक्षा जैसे परिणाम देती है। सामुदायिक नेतृत्व में पूर्ण स्वच्छता व्यावहारिक बदलाव पर अपना ध्यान पर केन्द्रित करती है, जिसमें वास्तविक और स्थायी सुधार की जरूरत है- हार्डवेयर के बजाय समुदाय को एकजुट करने में निवेश एवं व्यक्तियों के लिए शौचालय निर्माण की बजाय खुले में शौच मुक्त गांव के निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करना।

शहरी क्षेत्रों में स्वच्छ भारत अभियान के लिए आवश्यक धन

क्रमांक	घटक	कुल राशि*	अभ्युक्ति
1.	व्यक्तिगत शौचालय	4,165	दो वर्षों में पूर्ण
2.	सामुदायिक शौचालय	655	-तथैव-
3.	सार्वजनिक शौचालय	0	पीपीपी के जरिए
4.	ठोस अपशिष्ट प्रबंधन	7,366	दूसरे व तीसरे वर्ष में 90% कवरेज
5.	जनजागृति	1,828	
6.	क्षमता निर्माण आदि मद	14,625	

*(रु. करोड़ में) स्रोत: www.pib.nic.in

यहां तक कि एक अल्पसंख्यक के रूप में उनके बीच जागरुकता बढ़ाकर उन्हें इस बात के लिए आगाह करना कि खुले में शौच करना किसी रोग के खतरे की आहट है, सामुदायिक नेतृत्व में संपूर्ण स्वच्छता समुदाय को अपनी इच्छा में बदलाव के लिए उन्हें आग्रही बनाती है, कार्रवाई के लिए प्ररित करती है और अभिनव प्रयोग, परस्पर सहयोग एवं उचित स्थानीय समाधान के लिए उन्हें प्रोत्साहन देती है, इस प्रकार अधिक से अधिक स्वामित्व और स्थिरता के लिए अग्रणी भूमिका निभाती है। इस दृष्टीकोण को व्यक्तिगत प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं है और राज्य के साथ अधिक से अधिक चर्चा किये जाने की जरूरत है। हालांकि कुछ प्रारंभिक प्रखंड अनुदान पंचायत के लिए भी विचारणीय है,यह भी एक पुरस्कार से कम नहीं है अगर एक बार में पूरा गांव खुले में शौच करने से मुक्त हो जाता है। ❑

(स्रोत: जल संसाधन एवं स्वच्छता मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों के लिए जारी परामर्श का मसविदा)

हर किसी को स्वयं अपना सफाईकर्मी होना चाहिए: महात्मा गांधी

Eye Donat

Enlighten someone's w

Facts about Eye Donation

- 1.2 lakhs corneally blind people require cornea for transplantation to get back their vision in one eye.
- Approx 20,000 new cases get added every year.
- Majority of them are young
- The eyes you donate can give sight to two-four corneally blind persons.
- Eyes can be pledged before and donated only after death.
- Eyes must be retrieved within 6-8 hours of death.
- All religions endorse the practice of eye donation.

Prevent Corneal Blindness - Avoid eye Injuries. Blur
Do not ignore eye injuries, seek the
Consume Vitar

सत्यमेव जयते

NATIONAL PROGRAME FO
Ministry of Health & Family Welfare, D
Nirman Bhawan, New Delhi-110

ion is a Noble Act
vorld by Donating Eyes.

- MAHADAAN

Immediate action to be taken for Donating Eyes

- At Home / Neighbourhood: Toll Free 1919 (from MTNL / BSNL) or nearest eye bank.
- At hospital: contact Doctor on duty / Eye Donation Counselor, under Hospital Cornea Retrieval Programme.

Make
Eye Donation
a family tradition.

nt and perforating eye injuries need urgent attention.
advice of eye specialist immediately.
min A rich diet.

davp 17138/13/0002/1415

YH - 186/2014

R CONTROL OF BLINDNESS
irectorate General of Health Services,
08, www.mohfw.nic.in/npcb.nic.in

NATIONAL PROGRAMME FOR CONTROL OF BLINDNESS

आस्था, आजीविका और पारिस्थितिकी के सवाल

सुभाष शर्मा

क्या गंगा महज एक नदी है? क्या गंगा एक तीर्थ है? क्या गंगा खेतों की सिंचाई मात्र करती है? क्या गंगा शहरों में जलापूर्ति मात्र करती है? क्या गंगा उद्योगों को पानी मात्र देती है? गंगा भारतीय जन-मानस, संस्कृति और सभ्यता में कई रूपों में सदियों से विद्यमान रही है। कोई इसे आजीविका के स्रोत के रूप में देखता है, कोई गंगा को मां या देवी के रूप में आस्था के प्रतीक स्वरूप देखता है, तो कोई पारिस्थितिकी के अंग (नदी के रूप में) के रूप में देखता है

क्या गंगा महज एक नदी है? क्या गंगा एक तीर्थ है? क्या गंगा खेतों की सिंचाई मात्र करती है? क्या गंगा शहरों में जलापूर्ति मात्र करती है? क्या गंगा उद्योगों को पानी मात्र देती है? गंगा भारतीय जन-मानस, संस्कृति और सभ्यता में कई रूपों में सदियों से विद्यमान रही है। कोई इसे आजीविका के स्रोत के रूप में देखता है, कोई गंगा को मां या देवी के रूप में आस्था के प्रतीक स्वरूप देखता है, तो कोई पारिस्थितिकी के अंग (नदी के रूप में) के रूप में देखता है। वास्तव में, गंगा जीवनदायिनी है। मुख्य रूप से आस्था का प्रतीक है गंगा क्योंकि एक हिन्दू मिथक के अनुसार राजा भगीरथ ने अपने पुरखों का तर्पण करने के लिए सुदीर्घ तपस्या करके गंगा को भारत भूमि पर लाया। मगर धरती पर पहुंचने के पूर्व वह शिव की जटा में उलझ गयी थी और अन्ततः शिव ने उन्हें भारत भूमि पर आने दिया। तब से भारतीय उन्हें 'देवी' के रूप में पूजते रहे हैं (उन्हें 'मां' का सम्बोधन देते रहे हैं और उनके जल को 'पवित्र गंगा जल' के रूप में सभी धार्मिक, वैवाहिक एवं पर्व-त्योहार के अवसरों पर उपयोग में लाते रहे हैं)। यह गंगाजल मानव जीवन की तीन महत्वपूर्ण अवस्थाओं जन्म, विवाह एवं मृत्यु के दौरान उपयोग में लाया जाता है। मगर यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि हम गंगा को 'देवी' कहकर हजारों टन चमड़े का अपशिष्ट रोजाना गंगा में गिराते हैं (विशेषकर कानपुर में), 'मां' कहकर हजारों मुर्दों को जलाकर उनकी राख गंगा में विसर्जित करते हैं या अधजली या पूरी लाश प्रवाहित कर देते हैं (हरिद्वार से लेकर कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, पटना, गंगासागर तक), और 'पवित्र' कहकर नगर-निगम/नगरपालिका की लापरवाही से नालों का गन्दा जल (मल-मूत्र, अपशिष्ट आदि) तथा विभिन्न धार्मिक उत्सवों (दुर्गा पूजा, काली पूजा, लक्ष्मी पूजा, सरस्वती पूजा, गणेश पूजा आदि) में स्थापित लाखों मूर्तियों का अन्ततः विसर्जन तथा अस्थि-विसर्जन (मुख्यतः हरिद्वार, प्रयाग, बनारस में) गंगा में करते हैं। क्या गंगा के प्रति हमारे सम्बोधनों (देवी, मां एवं पवित्र) का यही हश्र होना चाहिए?

दूसरी ओर एक जर्मन नागरिक या ब्रिटिश नागरिक अपने देश की सबसे महत्वपूर्ण नदी क्रमशः राइन और टेम्स को न देवी कहता है, न मां कहता है और न पवित्र मानता है, मगर उसे नदी मात्र के रूप में स्वच्छ रखता है। क्या यह तथ्य भारत के राष्ट्रीय चरित्र के (मनसा, वाचा एवं कर्मणा) दोहरेपन को परिलक्षित नहीं करता? कभी टेम्स की दुर्दशा वर्तमान दूषित गंगा की तरह ही थी मगर उन्होंने एक कालब हो) योजना बनाकर सही एवं सच्चे तरीके से टेम्स को साफ-सुथरा बना दिया और आज वहां प्रदूषण नहीं है। भारत में भी गंगा कार्य योजना बनी थी (1985 से 2003 तक दो चरणों में)। इसमें मुख्यतः औद्योगिक एवं घरेलू अपशिष्टों की सफाई करना था। मगर तीन हजार करोड़ रुपये खर्च करने के बावजूद 25 प्रतिशत भी सफाई नहीं हो सकी। रकम की कमी लूट-खसोट शासन-प्रशासन में इच्छाशक्ति एवं प्रतिबद्धता की कमी, योजना बनाने में खामियां, जन-भागीदारी स्थानीय लोगों की उदासीनता, शासक-प्रशासक एवं जनता में परस्पर विश्वास

लेखक बिहार राज्य योजना परिषद में परामर्शी हैं। पर्यावरण, नारी विमर्श, बालश्रम व शिक्षा आदि विषयों पर केंद्रित, दो दर्जन से अधिक पुस्तकें पकाशित हो चुकी है। 'भारत में मानवाधिकार' पुस्तक 2011 में राष्ट्रीय मानवाधिकार की और से पुरस्कृत। ईमेल: sush84br@gmail.com

आदि में से कोई या शायद ये सभी कारण गंगा कार्रवाई योजना (गंगा ऐक्शन प्लान) की विफलता के लिए जिम्मेदार हैं।

कालान्तर में नेशनल गंगा बेसिन अथॉरिटी (2009) की स्थापना हुई मगर 5 वर्ष के बाद भी परिणाम वही ढाक के तीन पात। वर्ष 2014-15 के राष्ट्रीय बजट में 'नमामि गंगे' परियोजना की घोषणा की गई है जिसमें 2037 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। इसके अलावा हरिद्वार, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस तथा पटना में गंगा नदी के घाटों और आस-पास के क्षेत्रों के विकास के लिए 100 करोड़ रुपये का अतिरिक्त प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त अनिवासी भारतीय निधि की भी स्थापना की गई है। भारत सरकार के शहरी विकास मंत्रालय ने 'नमामि गंगे' निर्मल धारा योजना के तहत गंगा तट पर बसे 118 शहरों में जल-मल शोधन के लिए आधारभूत ढांचे का विकास करने की योजना बनायी है जिसमें 51000 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। सचिवों के समूह द्वारा सौंपी गई रपट के आधार पर सात औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों का समूह दीर्घकालीन योजना बनायेगा। फिर इलाहाबाद से हल्दिया के बीच (1620 कि.मी.) गंगा जलमार्ग विकास परियोजना की भी घोषणा की गई है जिससे कम से कम 1500 टन माल की ढुलाई रोजाना हो सकेगी। इस पर 4200 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत लगेगी और यह छः वर्षों में पूरी होगी।

मगर *तरुण भारत संघ* और जल बिरादरी के प्रमुख राजेन्द्र सिंह ने इस बाबत सावधानी बरतने को कहा है - हल्दिया और इलाहाबाद के बीच गंगा नदी पर सोलह बराज बनाने के पहले फरक्का बराज का गंगा के जल के अविरल प्रवाह, जैव-विविधता तथा प्रदूषण खपाने की क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव का विधिवत् मूल्यांकन किया जाना चाहिए क्योंकि स्पष्टतः फरक्का बराज के निर्माण से गंगा के अविरल प्रवाह में रुकावट आयी है, उसकी जैव-विविधता प्रभावित हुई है, बड़े पैमाने पर भूक्षरण हुआ है, इससे बाढ़ में वृद्धि हुई है तथा स्थानीय लोगों का विस्थापन हुआ है। इन नये बराजों के बनने से बिहार में बाढ़ का खतरा अस्सी गुना बढ़ने की सम्भावना है। उनके अनुसार गंगा नदी के पेट से गाद को निकालकर 100 टन क्षमता का जहाज चलाया जा सकता है किन्तु भारत सरकार 450 टन क्षमता का दो तल्ले का जहाज चलाना चाहती है जिसके लिए दस मीटर ऊंचाई के बराज बनाने होंगे। इससे गंगा नदी काफी दूर तक प्रभावित होगी तथा आम लोगों के बजाय उद्योगपतियों को ही ज्यादा लाभ मिलेगा। उन्होंने जल सुरक्षा अधिनियम बनाने का सुझाव दिया है जिससे समुदाय का अधिकार जल, नदी, सीवरेज से जल अलग करने, औद्योगिक उद्देश्य एवं सिंचाई के लिए शहरी गन्दे पानी का शोधन करके उपयोग आदि पर मुमकिन हो सकेगा तथा गंगा के कम से कम 51 प्रतिशत पारिस्थितिकीय प्रवाह को सुनिश्चित किया जा सकेगा।

गंगा नदी की एक बड़ी समस्या इसका भयंकर प्रदूषण है। गंगा विश्व की छठी सबसे ज्यादा प्रदूषित नदी है और विश्व की उन दस बड़ी नदियों में शामिल है जिनका अस्तित्व खतरे में है। 'गंगा बचाओ' किताब लेखक और बनारस में गंगा बचाओ अभियान से जुड़े के. चन्द्रमौलि के अनुसार सिंचाई के बाद खेतों में गंगा बेसिन में हर साल 96.3 लाख टन रासायनिक उर्वरक प्रयुक्त होता है जिसमें से कम से कम 5 प्रतिशत (4.8 लाख टन) रसायन बहकर गंगा नदी में जाता है। दूसरे, गंगा बेसिन में 26346 टन कीटनाशक हर साल प्रयुक्त होता है जिसमें से 5 प्रतिशत (1320 टन) कीटनाशक बहकर गंगा नदी में जाता है । तीसरे, उद्योगों से निकलने वाला विषैला बहिस्रावी तत्व गंगा बेसिन में रोजाना 340 करोड़ लीटर अशोधित रहता है। चौथे, रोजाना 750 करोड़ लीटर (2011 के अनुसार) अशोधित गंदा जल गंगा नदी में बह जाता है। पांचवें, गंदे नालों के जरिये अस्पतालों, नगरनिगमों/नगरपालिकाओं का कचरा, नहाने-धोने, शौच, पूजा-मूर्ति विसर्जन, दाह संस्कार आदि से नाना प्राकर के प्रदूषण गंगा में किये जाते हैं। दूसरे अनुमान के अनुसार भारत के 181 शहरों का कचरा- अपशिष्ट (1100 करोड़ लीटर) गंगा में गिरता है जिसका मात्र एक तिहाई से 45 प्रतिशत तक ही शोधित होता है। उल्लेखनीय है कि 2009 में राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन प्राधिकार की स्थापना की गई जिसका मुख्य उद्देश्य था कि संपूर्णवादी (होलिस्टिक) पद्धति के जरिये 2020 तक गंगा में एक भी प्रदूषक तत्व नहीं जाने दिया जायेगा। इसमें सात प्रमुख भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों द्वारा विस्तृत शोध-अध्ययन करने का भी प्रस्ताव शामिल था। इसमें स्थानीय समुदायों से परामर्श तथा सहभागी प्रबन्धन का विचार भी शामिल किया गया था। मगर जैसा कि के. चन्द्रमौलि ने रेखांकित किया है, इसमें खेती की जमीन से बहकर गंगा में आने वाला प्रदूषित पानी, ठोस अपशिष्ट आदि को नहीं

तालिका 1: गंगा जल विकास परियोजना के नकारात्मक आयाम

	आयाम	नकारात्मक कारक
1.	आर्थिक	गाद-बालू निकालने तथा रखरखाव में काफी खर्च
2.	पारिस्थितिकीय	जैव-विविधता को खतरा सूँस, कछुआ, मगरमच्छ, उदविलाव, जलमुर्गी
3.	प्राकृतिक आपदा	फरक्का बराज निर्माण से भूक्षरण, बाढ़, विस्थापन, बिहार में ज्यादा बाढ़
4.	मौसमी प्रवाह	गर्मी में पर्याप्त स्थिर पानी का न होना

'यमुना जिये अभियान' के संयोजक मनोज मिश्र की आपत्ति है कि गंगा में पानी का जहाज चलाने के लिए बालू एवं गाद निकालने हेतु नदी के पेट को गहरा करने से उसका पारिस्थितिकी तन्त्र (जैव-विविधता) प्रभावित होगा क्योंकि गंगा में नाना प्रकार के कछुआ, सूंस (डॉल्फिन), मगरमच्छ आदि प्रभावित होंगे। दूसरे, उसके रखरखाव पर काफी खर्च होगा जैसा कि नीदरलैंड, ब्रिटेन एवं संयुक्त राज्य द्वारा नदियों को गहरा करने पर रखरखाव खर्च बढ़ा है। तीसरे, पानी का जहाज चलने से नये प्रकार का प्रदूषण गंगा में होगा क्योंकि गंगा में जहाजों से तेल आदि गिरेगा। चौथे, नदी में जहाज चलाने के लिए बारहों महीने स्थिर जल स्तर होना चाहिए जबकि गंगा में गर्मी में जल स्तर की काफी कमी हो जाती है। इस प्रकार गंगा जल विकास परियोजना के सम्भावित नकारात्मक आयामों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता (देखें तालिका 1)।

तमाम बराजों एवं बांधों ने भारत की कई नदियों, विशेषकर गंगा और यमुना, को काफी अवरुद्ध किया है तथा निचले क्षेत्र में धीमा होता जलप्रवाह, गाद में वृद्धि, गुणवत्ता में घटोतरी आदि समस्याएं पैदा हो गई हैं। इसलिए समय से पहले जोखिम का मूल्यांकन हो, पर्यावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन हो, तथा वास्तविक लागत-लाभ का विस्तृत विश्लेषण हो।

जोड़ा गया है। दूसरे, इसमें 15-20 सालों में बढ़ने वाले अशोधित सीवेज के गंदे जल को आंका नहीं गया है। इसमें 32000 करोड़ रुपये तक खर्च हो सकता है जबकि कुल बजट प्राक्कलन 16000 करोड़ रुपये मात्र का है। तीसरे, इसमें सम्पूर्णतावादी पद्धति परिलक्षित नहीं होती क्योंकि संवेदनशील पहाड़ियों, पारिस्थितिकी संरक्षण, टिकाऊ विकास आदि का ब्योरा नहीं दिया गया है। चौथे, स्थानीय समुदाय से परामर्श तथा सहभागी प्रबन्धन महज नारे हैं क्योंकि उसे कैसे व्यवहार में लाया जायेगा, इसका उल्लेख नहीं किया गया है। दरअसल पूरे परिदृश्य की विधिवत् समीक्षा करने से ज्ञात होता है कि गंगा में विभिन्न औद्योगिक इकाइयां 75 से 80 प्रतिशत प्रदूषक तत्व डालती हैं, नगर-निगम/ नगरपालिकाएं 15 से 20 प्रतिशत प्रदूषक तत्व डालती हैं तथा स्थानीय लोग एवं पर्यटक 5 प्रतिशत प्रदूषक तत्व डालते हैं। 1985 में गंगा के तट पर बसे 25 शहरों (उ.प्र., बिहार, प. बंगाल में) में कुल 134 करोड़ लीटर गन्दा पानी प्रतिदिन गंगा में गिरता था जो 1993 में 253. 8 करोड़ लीटर प्रतिदिन हो गया। यह 2011 में 750 करोड़ लीटर प्रतिदिन हो गया।

1973 में शुरु किये गये चिपको आन्दोलन की जड़ में उत्तराखंड में पूर्व में आयी बाढ़ भी थी जिसका मुख्य कारण वनों का विनाश था। जून 2013 में केदारनाथ क्षेत्र में भयंकर बाढ़ आई थी जिसमें एक गैर सरकारी अनुमान से करीब 10 हजार लोग मारे गये थे। टिहरी बांध की वजह से भगीरथी का पानी मटमैला हो गया है, उसमें गाद और कीचड़ भर गया है और गति शिथिल हो गई है। देवप्रयाग में भगीरथी और अलकनंदा का संगम है। इसी जगह से उन्हें गंगा नाम मिलता है। इसलिए गंगा को जानने-समझने के लिए अलकनंदा को जानना-समझना जरूरी है। पिंडर, धौलीगंगा, रामगंगा, मंदाकिनी जैसी धाराएं अलकनंदा के साथ मिलकर पवित्र गंगा नदी (नहीं, मां, नहीं, देवी) बनती हैं। आगे कर्णप्रयाग में अलकनंदा- पिंडर का संगम है। पिंडर नदी पर कई पनबिजली योजनाएं बनाने का प्रस्ताव है। एक बार पिंडर के पार हिमालय पहाड़ पर सतलुज जल विद्युत निगम परीक्षण सुरंग खोज रहा था, जिसका विरोध स्थानीय 'मंगल दल' की महिलाओं ने डटकर किया था और अंतत: सुरंग का निर्माण बंद कर दिया गया। मगर जोशीमठ के ऊपर स्थित विष्णुप्रयाग का नामोनिशान मिट गया है।

यह कैसी विडंम्बना है कि पहले चिकित्सक दमा के पुराने मरीजों को अच्छी जलवायु का आनंद तथा स्वास्थ्य लाभ लेने के लिए उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश या कश्मीर- लद्दाख के पहाड़ी इलाकों में जाकर रहने की नेक सलाह देते थे मगर अब तो विभिन्न कंक्रीट-निर्मित परियोजनाओं तथा पहाड़ों के काटने- तोड़ने-विस्फोट करने के कारण उत्पन्न धूल-रेत के कणों के हवा में बहुतायत से मिलने के कारण उत्तराखंड के स्थानीय लोग दमा के शिकार तेजी से हो रहे हैं। उदाहरण के तौर पर अलकनंदा की राह पर पीपलकोटी में दमा के मरीजों की संख्या काफी बढ़ रही है। इतना ही नहीं, तमाम सरकारी एवं गैर-सरकारी निर्माण कार्यों के कारण निकलने वाले पत्थरों का मलबा सीधे नदी में गिरा दिया जाता है क्योंकि निर्माण कार्य करने वाली एजेंसियों ने उनके निष्पादन की कोई वैज्ञानिक व्यवस्था ही नहीं की है। जब बारूद से विस्फोट करके पहाड़ों को तोड़ा जाता है, तो निकलने वाले मलवों और बारूदों से तमाम जल जीवों और वन्य प्राणियों की हत्या हो जाती है-उदाहरणार्थ, जल मुर्गी और उदविलाव वहां से लुप्त हो रहे हैं जिसकी परवाह न तो पर्यावरण एवं वन्य विभाग को है, न निर्माण एजेंसियों को है और न स्थानीय/क्षेत्रीय शासन-प्रशासन को। स्थानीय राजनैतिक नेतृत्व तात्कालिक विकास की जगमगाहट और चमक देखकर खुश होना चाहता है, उसे स्थानीय लोगों की वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ियों की चिंता नहीं प्रतीत होती है।

गंगा की बिगड़ती पारिस्थितिकी की परवाह न तो पर्यावरण एवं वन्य विभाग, न निर्माण एजेंसियों और न स्थानीय/क्षेत्रीय शासन-प्रशासन को है। स्थानीय राजनैतिक नेतृत्व तात्कालिक विकास की जगमगाहट और चमक देखकर खुश होना चाहता है, उसे वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों की चिंता नहीं प्रतीत होती है।

ऋषिकेश में (जहां लक्ष्मण झूला, राम झूला और मुनि की रेती प्रसिद्ध पर्यटन स्थल हैं) गंगा पहाड़ से उतरकर मैदानी भाग में प्रवेश करती हैं। वहां गंगा के किनारे एक सौ से अधिक आश्रम बने हैं जहां देशी-विदेशी पर्यटक मोक्ष प्राप्ति हेतु ठहरते हैं और दिन-रात गंगा में गन्दा पानी, कचरा आदि फेंकते हैं जबकि झूठ-मूठ का प्रचार है कि वहां कचरा-गन्दा जल का शोधन संयंत्र लगा है। फिर हरिद्वार, में 'हर की पैड़ी' में जल की कमी रहती है क्योंकि गंगा की बड़ी धारा पहले ही सिंचाई के लिए मोड़ दी गई है। दरअसल, गंगा का अधिकतर पानी निचली गंगा नहर में डालकर एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद आदि जिलों में खेतों की सिंचाई की जाती है जिससे वहां हरियाली दिखती है। मगर यहां की हरियाली करोड़ों लोगों के जीवन में अन्धकार फैलाती है।

नरौरा में बने परमाणु शक्ति संयन्त्र में मशीनों को ठंडा करने के लिए गंगा के पानी का काफी उपयोग होता है और बाद में उसे बिना शोधित किये गंगा नहर में छोड़ दिया जाता है किन्तु स्थानीय लोगों की बार-बार मांग के बावजूद उस पानी में रेडियोधर्मिता होने की जांच शासन-प्रशासन नहीं कराता। यह स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। दूसरी ओर नरौरा में गंगा नहर में गाद को नहीं निकाला जाता। तीसरे, परमाणु संयंत्र की सुरक्षा भी ढीली-ढाली है तथा संयंत्र से निकलने वाली रेडियोधर्मिता के परिणामों के लिए समुचित व्यवस्था नहीं की गई है। फिर कन्नौज (इत्र का शहर) में भी गंगा की स्थिति संतोषजनक नहीं है। वहा गंगा में मिलने वाली काली नदी और चित्रा नदी अपनी गन्दगी के साथ मिलती है। मगर इसकी चिन्ता किसे है? कभी इत्र की सुगंध से महकता कन्नौज शहर इत्र उद्योग के उजड़ने और गंगा के अतिशय प्रदूषित होने के कारण कराहता-सा लगता है।

आगे कानपुर में गंगा की हालत उससे भी बदतर है। वहां इतनी ज्यादा गाद और कीचड़ गंगा के पेट में जमा है कि चप्पू से नाव चलाने की जगह बांस गड़ाकर नाव को पार लगाया जाता है। दूसरे, वहां चमड़े के सैकड़ों कारखाने हैं और शोधन संयंत्र नहीं हैं जिससे काफी मात्रा में प्रदूषित अपशिष्ट एवं रसायन गंगा में गिरता है। चमड़े के कारखाने वाले जमीन के नीचे पाइप डालकर उसमें गन्दा पानी डालते हैं जिसके कारण भूजल भी प्रदूषित हो गया है और आस-पास के हैंडपम्प से लाल पानी निकलता है जिससे दमा, चर्मरोग, पीलिया एवं हिपेटाइटिस की बीमारियां तेजी से हो रही हैं। तीसरे, गंगा के किनारे मरे हुए जानवरों की चर्बी (भट्ठियों में जलाकर)

निकाली जाती है और सारा अपशिष्ट गंगा में बहा दिया जाता है जिससे पानी काले रंग का हो जाता है। चौथे, कानपुर नगर निगम और स्थानीय लोग काफी मात्रा में कूड़ा-कचरा-गन्दा पानी आदि सीधे गंगा में डालते हैं जिससे तेज आवाज में निकलती तेज धारा डरावनी लगती हैं। वहां 'राम तेरी गंगा मैली हो गई, पापियों का पाप धोते-धोते' चरितार्थ होता है।

इलाहाबाद में दो प्रदूषित नदियों यथा यमुना और गंगा का मिलन होता है जिसे 'संगम' मानकर पूरी आस्था से एक करोड़ से ज्यादा लोग महाकुम्भ में हर बारह साल पर नहाने आते हैं। तीर्थयात्री शायद अपने साथ तथाकथित पुण्य के साथ कै-दस्त, चर्म रोग जैसी कुछ बीमारियां भी ले जाते हैं। कुम्भ के दौरान दारागंज का नाला गंगा में नहीं गिराया जाता, शेष अवधि में वह गंगा में ही गिरता है। आगे बनारस में गंगा की और दुर्दशा होती है।

बनारस में हर साल 33000 शवों का अंतिम संस्कार होता है और गंगा के तट पर बसे तमाम राज्यों के घाटों पर प्रतिवर्ष कुल दो लाख शवों के अंतिम संस्कार का अनुमान है। हर साल 2500-3000 टन अधजला मानव मांस गंगा में बहा दिया जाता है। सीवेज शोधन संयंत्र की स्थिति भी बुरी है: पहला, बिजली न रहने से ये प्राय: बन्द रहते हैं। दूसरे, ये संयंत्र जितना पानी दो घंटे में लेते हैं, उसे शोधित करने में चौबीस घंटे लगते हैं, अर्थात् 22 घंटे नाले का अशोधित गंदा पानी गंगा में गिरता रहता है जिसमें जहरीले रासायनिक तत्व, शीशा, कैडमियम, निकल, क्रोमियम आदि मिले होते हैं। पटना में गंगा शहर से दूर होती जा रही है - मुख्य धारा उत्तर की ओर जा रही है जिसका कारण मानवों की छेड़छाड़ भी है। यहां भी नगर निगम अशोधित कचरे और गन्दे पानी को गंगा में छोड़ता है। गंगा के पेट से निकली जमीन पर सैकड़ों फ्लैट बिल्डर-माफिया ने बिना कानूनी प्रक्रिया पूरी किये बना लिये हैं जो भूकंप आने पर ताश के पत्तों की तरह धराशायी हो जायेंगे। बिहार में गंगा के तटों पर बसे तमाम शहरों में गंगा नदी में गिरने वाले गन्दे पानी के शोधन के लिए पूर्व में स्वीकृत योजनाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय है जिसे तालिका 3 में देखा जा सकता है।

पटना और भागलपुर के बीच गंगा में डॉल्फिन (सूंस) का शिकार पहले धड़ल्ले से किया जाता था और उन्हें मारकर उससे तेल निकाला जाता था तथा मांस भी खाया जाता था जबकि उसमें विषैले तत्व होते हैं। किन्तु कुछ जागरूक नागरिकों और स्वयंसेवी संस्थाओं के अथक प्रयास से इस पर रोक लगी है (पटना विश्वविद्यालय के प्रो. आर. के. सिन्हा को 'डाल्फिन मैन' कहा जाता है) और भारत सरकार ने डॉल्फिन को उचित ही राष्ट्रीय जल जीव घोषित किया है। भागलपुर, मुंगेर, साहेबगंज और राजमहल में भी गंगा की काफी दुर्गति हुई है और दियारा क्षेत्र में अपराधियों का बोल बाला रहता है। फरक्का बराज बनने से गंगा की अविरल धारा अवरुद्ध हो गई और झींगा तथा हिलसा मछलियों का विनाश भी हो गया। फिर उसके कारण भूक्षरण और कटाव भी बढ़ गया। दरअसल बराज बनने से लाखों स्थानीय लोगों की जीविका छिन गई, विशेषकर मछुआरों की। बराज के दायीं ओर जलोढ़ ज्यादा हो गयी है तथा बांयीं ओर नहर-सी बन गई है। शोधों में पाया गया है कि फरक्का बराज के आस-पास गर्मी में जल प्रवाह 80 प्रतिशत घट जाता है।

उत्तराखंड के रुद्रप्रयाग में सात बार बड़ी बाढ़ आपदा आई थी- 1979, 1986, 1998, 2001, 2005, 2006 एवं 2012 में। तमाम पनबिजली योजनाओं तथा बांधों के बनने से पारिस्थितिकी की स्थिति बदतर हो रही है क्योंकि नदियों के रास्ते, तट आदि से छेड़छाड़ की गई है तथा बारूद से पहाड़ियों को विस्फोट करके नष्ट किया गया है सड़क, सुरंग, बांध-निर्माण के लिए। उत्तराखंड में 557 बांध परियोजनाओं की रूपरेखा तैयार की गई है और अधिकतर राजनैतिक दल 'विकास' के नाम पर पारिस्थितिकी की बलि चढ़ाने को तैयार हैं। यदि ये सभी बांध बनाये गये, तो उत्तराखंड में गंगा और उसकी सहायक नदियों की कुल लम्बाई 1120 कि.मी. होने से औसतन प्रत्येक दो कि.मी. पर एक बांध बन जायेगा जो निश्चित रूप से अविरल प्रवाह को अवरुद्ध करेगा तथा कई रूपों में स्थानीय लोगों का अहित भी करेगा क्योंकि बांध पारम्परिक जलग्रहण स्रोतों को सुखा देते हैं, वनों, औषधियों, पशु-पक्षियों के पर्यावासों, मछलियों के वासों आदि को भी नष्ट कर देते हैं, तथा वे भूकम्प, भूस्खलन, भूक्षरण, मलेरिया फैलाने वाले मच्छर जैसे कुपरिणाम भी देते हैं।

ज्ञातव्य है कि अधिकतर पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन रपटें सतही एवं अवैज्ञानिक तरीके से बनायी जाती हैं जिनमें कुछ छोटी-मोटी त्रुटियों का निराकरण करके योजना की संस्तुति की जाती है। इसमें रपट तैयार करने वाली एजेंसियों का लोभ छिपा रहता है क्योंकि यदि वे उसे पर्यावरण-विरोधी करार कर दें, तो उन्हें परामर्शी के रूप में कार्य से हटा दिया जायेगा और दूसरी ओर परियोजना के इंजीनियर, ठेकेदार आदि ज्यादा प्राक्कलन बनाने और लाभ कमाने में रुचि रखते हैं। अक्सर सरकारी या निजी एजेंसियां इन परियोजनाओं के बारे में स्थानीय समुदाय, बौद्धिकों आदि से सलाह नहीं लेतीं। वे गंगा के स्व-पुनर्जीवन क्षमता का सही आकलन नहीं करतीं। अधिक संख्या में बड़े बांधों के निर्माण से मानव-प्रकृति टकराव बढ़ता जाता है।

ऐसी स्थिति में पारिस्थितिकी-हितैषी वैकल्पिक विकास मॉडल की महती आवश्यकता है जिसमें छोटे-छोटे पनबिजली संयंत्र (5 से 10 मेगावाट) बनाये जाएं। वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों यथा पवन चक्की, सौर ऊर्जा आदि का अधिकतम उपयोग हो। भोजन बनाने के लिए गैस का अधिकतम उपयोग हो और नयी तकनीकों से कम गैस पर भोजन आदि बने। स्वास्थ्य के लिए देशज चिकित्सा पद्धति (आयुष) को लोकप्रिय और जनसुलभ बनाया जाए। मौजूदा थर्मल और पन बिजली संयंत्रों में संचरण एवं वितरण के नुकसानों को घटाया जाय (30-40 प्रतिशत

तालिका 2: गंगा की सफाई हेतु गन्दा जल शोधन संयन्त्रों की स्थिति

शहर	स्वीकृत राशि रुपये करोड़	पूरा करने का लक्ष्य वर्ष	वर्तमान स्थिति
1. बेगूसराय	6539	2012	27 प्रतिशत कार्य
2. बक्सर	7495	मार्च 2013	20 प्रतिशत कार्य
3. हाजीपुर	11362	मार्च 2013	40 प्रतिशत कार्य
4. मुंगेर	18789	मई 2013	30 प्रतिशत कार्य
5. पटना पहाड़ी*	उपलब्ध नहीं	2016	कार्य शुरु नहीं

(*3 योजनाएं) ***स्रोत:*** *प्रभात खबर, 15 सितम्बर 2014*

से घटाकर 10-15 प्रतिशत) तथा स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी परियोजना के सूत्रण, कार्यान्वयन, अनुश्रवण, मूल्यांकन आदि सभी चरणों में बढ़ायी जाय। सभी शहरों से निकलने वाले अपशिष्ट, जो गंगा में गिरते हैं, की जांच-पड़ताल हेतु उच्च तकनीक के सेंसर लगाने जरूरी हैं तथा दोषी व्यक्तियों, समूहों, उद्योगों, नगर निकायों आदि को दंडित करना भी जरूरी है। इसे नीचे दी हुई तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है। नदियों के बिना कोई संस्कृति, सभ्यता, अर्थव्यवस्था और समाज चिरस्थायी नहीं हो सकता। इसलिए गंगा की समूची पारिस्थितिकी को पूरी ईमानदारी एवं प्रतिबद्धता से संरक्षित एवं सुरक्षित करने में समाज के सभी वर्ग तन-मन-धन से जुट जायं, यही समय की माँग है। अन्यथा शासन-प्रशासन, नगर-निगमों/ नगरपालिकाओं, धार्मिक संगठनों तथा आम दर्शनार्थियों/तीर्थयात्रियों को पछताना पड़ेगा और भावी पीढ़ियां हमें बिल्कुल माफ नहीं करेंगी। आशा की जाती है कि केन्द्र में जल संसाधन के साथ गंगा पुनर्जीवन मंत्रालय को पुनर्गठित करने से बेहतर संसाधन-उपयोग, समन्वय, गति एवं प्रगति हो सकेगी। ❑

गंगा में प्रदूषण रोकने के बहुआयामी उपाय

प्रदूषक एजेंसी

औद्योगिक इकाइयां (चमड़ा, कालीन-कपड़े आदि कारखाने की भट्ठियां, कसाईखाना, उर्वरक एवं कीटनाशक निर्माण, अस्पताल आदि)

उपाय

i) गंगा के किनारे स्थित प्रदूषक औद्योगिक इकाइयों को अन्यत्र स्थानान्तरित करना
ii) ठोस अपशिष्टों से बिजली-निर्माण (जैसे नार्वे में होता है)
iii) शोधन संयन्त्रों की स्थापना
iv) नगर निगम/ नगरपालिका एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण परिषद से अनापत्ति प्रमाण पत्र लेना तथा प्रदूषण नियंत्रण निर्देशों का पालन
v) गन्दे जल का पुनः चक्रण एवं पुनः उपयोग आदि

प्रदूषण एजेंसी नगर निगम/नगरपालिका

i) कचरा, गन्दा पानी, मल-मूत्र आदि गंगा में नहीं गिराना
ii) कचरा, गन्दा पानी आदि का शोधन संयन्त्र लगाना तथा पुनः चक्रण, पुनः उपयोग
iii) विद्युत शवदाह गृहों का निर्माण एवं रखरखाव सुनिश्चित करना
iv) पशुओं की लाशें गंगा किनारे नहीं जलाने देना और गंगा में नहीं फेंकने देना
v) गंगा के तट पर स्थित नगरों/कस्बों के कूड़ा-करकट, कचरा आदि ठोस अपशिष्ट को जैविक-अजैविक के रूप में अलग-अलग एकत्रित करना तथा बिजली-खाद निर्माण आदि की व्यवस्था
vi) सरकारी, अर्ध सरकारी एवं निजी अस्पतालों को चिकित्सीय कचरों के शोधन हेतु संयन्त्र (इनसिनेटर) लगाने के लिए बाध्य करना
vii) गंगा तट एवं आस-पास के क्षेत्रों से अतिक्रमण हटाना
viii) खेतों से रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों आदि को गंगा में बहने से रोकना
ix) 40 माइक्रोग्राम से कम के प्लास्टिक का उत्पादन, उपयोग आदि रोकना
x) गंगा में दर्शनार्थियों को मूर्ति-विसर्जन, फूल-पत्ती, घी के दीये, चुनरी, नारियल, सीताफल आदि डालने से रोकना।
xi) गंगा के किनारे वृक्षारोपण करना
xii) गंगा के घाटों की नियमित सफाई कराना
xiii) विभिन्न संचार माध्यमों के जरिये जन-जागरण करना
xiv) शौचालयों का निर्माण कराना

व्यक्ति एवं समूह

i) गंगा स्नान के दौरा साबुन, तेल आदि का उपयोग/कपड़े की धुलाई नहीं करना
ii) गंगा के किनारे मल-मूत्र नहीं त्यागना
iii) गंगा में जानवरों को नहीं नहलाना और न गाड़ी आदि की धुलाई करना
iv) गंगा नदी के किनारे खेल, मनोरंजन आदि नहीं आयोजित करना
v) मानव/पशु की लाशें (समूची, जली-अधजली या राख) गंगा में नहीं फेंकना
vi) गंगा में पूजा-सामग्री या खाद्य-सामग्री आदि नहीं डालना
vii) गंगा तट पर कोई अतिक्रमण नहीं करना
viii) पुरोहितों/पंडों/पुजारियों द्वारा दर्शनार्थियों/तीर्थयात्रियों को प्रदूषण रोकने हेतु जागरूक तथा पर्यावरण-हितैषी व्यवहार, घाटों की सफाई के लिए लोगों को प्रेरित करना
ix) वृहत्तर जन-सहभागिता हेतु जनजागरण करना तथा छोटे-छोटे स्वैच्छिक समूह बनाकर सफाई करना
x) वैकल्पिक संपोषकीय विकास का प्रतिमान अपनाना जिसमें प्रदूषण न हो, प्राकशतिक संसाधनों का जरूरत के अनुसार ही उपयोग हो, जन-भागीदारी हो, आर्थिक रूप से उपयोगी एवं किफायती हो तथा सांस्कृतिक रूप से स्थानीय लोगों को स्वीकार्य हो।

शासन-प्रशासन (भारत सरकार, राज्य सरकार)

i) भारत-बंगलादेश समझौता (1996) तथा फरक्का बराज की डिजाइन की समीक्षा हो और बराज से पानी छोड़ने तथा वितरण की समुचित व्यवस्था भारत और बंगलादेश दोनों के हित में हो
ii) गंगोत्री में ग्लेशियर के पिघलने का वास्तविक अध्ययन हो तथा उसकी भावी प्रवृत्तियों का सही आकलन किया जाय और तदनुसार योजना बने।
iii) तिब्बत/नेपाल से निकलने वाली नदियों (ब्रह्मपुत्र, कोसी आदि) के जलप्रवाह आदि का गहन अध्ययन हो और तदनुसार योजना बनें
iv) गंगा के ऊपरी हिस्से में बनने वाले बांधों, जल विद्युत योजनाओं की समीक्षा/पुनर्विचार किया जाये और नितान्त जरूरी योजनाओं को ही पर्यावरण-हितैषी बनाकर कार्यान्वित किया जाय।
v) छोटी-छोटी जलविद्युत योजनाएं बनायी जायें जो स्थानीय लोगों की जरूरतें समान रूप से पूरी करें, जो सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य हों, जो आर्थिक रूप से किफायती हों और पर्यावरण हितैषी व टिकाऊ हों।
vi) वैकल्पिक विकास का प्रतिमान अपनाया जाय

जब स्वच्छता आंतरिक और बाह्य दोनों होती है तो ऐसी स्वच्छता देवत्व के समीप होती है: महात्मा गांधी
(असम मेल में 08 जनवरी, 1946 को)

रेहड़ी पटरी कारोबारियों को कानूनी संरक्षण की पहल

विनोद कुमार

रेहड़ी पटरी कारोबारी दरवाजे पर सुविधाएं (डोरस्टेप फैसिलिटी) उपलब्ध कराने का काम अर्से से करते आये हैं लेकिन संगठित स्वरूप में नहीं होने के कारण हमेशा से उपेक्षा का शिकार भी रहे। हमारे देश में रेहड़ी पटरी व्यवसाय न केवल उपभोक्ताओं के व्यापक हित की दृष्टि से बल्कि रोजगार सृजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अब रेहड़ी पटरी कानून के जरिए इनको संरक्षण देने का प्रयास शुरू हुआ है। इस कानून के प्रभावी नतीजे आने अभी बाकी हैं

घर के ठीक बाहर और भरी दुपहरी में या ठिठुरन भरी ठंड में सरेराह चलते आपको आपकी जरूरत की चीजें कम से कम खर्च में मुहैया कराने वाले रेहड़ी पटरी वाले खुदरा व्यापार के सबसे महत्वपूर्ण अंग होने के बावजूद अर्थव्यवस्था के संभवत सर्वाधिक असंगठित और उपेक्षित अंग हैं। असंगठित होने के वाबजूद रेहड़ी पटरी कारोबारी शहरी अर्थव्यवस्था के प्रमुख अंग हैं जो शहरी आबादी को विशेषकर आम आदमी को उनकी जरूरत की चीजें और सुविधायें सस्ती दरों पर उपलब्ध कराते हैं। देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले रेहड़ी पटरी व्यवसायी और फेरीवाले समाज में हमेशा से हाशिए पर रहे हैं। रेहड़ी पटरी कारोबारी वो लोग होते हैं जो औपचारिक क्षेत्र में नियमित काम नहीं पा सकते क्योंकि उनकी शिक्षा और कौशल का स्तर बहुत ही कम होता है। वे अपनी जीविका की समस्या मामूली वित्तीय संसाधनों और परिश्रम से दूर करते हैं।

हमारे देश में रेहड़ी पटरी व्यवसाय न केवल उपभोक्ताओं के व्यापक हित की दृष्टि से बल्कि रोजगार सृजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें न केवल न्यूनतम पूंजी से रोजगार का सृजन होता है बल्कि यह उपभोक्ताओं को भी कम से कम कीमत पर उनकी जरूरत की चीजें उपलब्ध कराता है।

दुनियाभर में रेहड़ी पटरी पर कारोबार होता है। विकसित देशों में वर्षों से खुदरा व्यापार करने वाले छोटे कारोबारियों को न सिर्फ कानून का संरक्षण मिला हुआ है बल्कि इस प्राचीन कारोबारी प्रणाली को कानून की हदों में बांधकर रखा गया है लेकिन हमारे देश में अब जाकर एक ऐसा कानून बना है जिसके जरिये इस पुरानी कारोबारी परंपरा को नियमित करने तथा इस कारोबार में लगे लोगों को अधिकार देने का प्रावधान किया गया है। रेहड़ी-पटरी आजीविका संरक्षण और फेरी विनियमन कानून का उद्देश्य देश के दो करोड़ से अधिक रेहड़ी पटरी कारोबारियों को उचित और पारदर्शी माहौल में बिना किसी भय प्रताड़ना के कारोबार करने का माहौल तैयार करना है ताकि वे अपना काम गरिमा के साथ कर सकें। यह कानून लगभग एक करोड़ परिवारों को आजीविका की सुरक्षा देने के उद्देश्य से तैयार किया है।

श्रम मंत्रालय की एक रिपोर्ट के मुताबिक कुल श्रम बल का करीब 93 प्रतिशत हिस्सा इसी क्षेत्र में लगा है। इसका एक बड़ा हिस्सा रेहड़ी पटरी कारोबारियों या फेरीवालों के रूप में है। एक तरफ संगठित यानी औपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों का जीवनस्तर ऊंचा और आमदनी अधिक है वहीं इन श्रमिकों को दो जून की रोटी के लिए भी अपेक्षाकृत कड़ी मेहनत करनी होती है। इन श्रमिकों को वैसी सरकारी सुविधाओं का लाभ भी नहीं मिल पाता जो संगठित क्षेत्र के श्रमिकों को प्राप्त है। आज असंगठित श्रमिकों का देश के जीडीपी में योगदान करीब 65 प्रतिशत है, जबकि कुल बचत में इनका योगदान 45 प्रतिशत है। रेहड़ी पटरी वाले भी असंगठित क्षेत्र के श्रमिक हैं, जिनका देश की अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान है। इनके द्वारा बेचे जाने वाले अधिकांश सामान लघु, मध्यम उद्योगों में तैयार होते हैं। इस प्रकार ये उन लघु और मध्यम उद्योगों का पोषण करते हैं, जिनमें

लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं। लगभग दो दशक से ज्यादा तक संवाद समिति यूनीवार्ता में रहे। स्वास्थ्य, फिल्म व सामाजिक विषयों पर अधिकांश लेखन। दशाधिक पुस्तकें प्रकाशित। फिलहाल स्वतंत्र पत्रकारिता। ईमेल: screennews@gmail.com

लोगों को संगठित रोजगार मिला हुआ है।

इस कानून के अमल में आने के बाद से निश्चित तौर पर रेहड़ी-पटरीवालों की सामाजिक सुरक्षा और आजीविका से जुड़े एक अहम मसले के हल होने की उम्मीद बंधी है। रेहड़ी-पटरी वाले वे कामगार हैं, जो विकास की दौड़ में सबसे पीछे रह गए हैं लेकिन इस कानून के बनने से न सिर्फ इनकी कारोबारी मुश्किलें कम होंगी, बल्कि पुलिस, ट्रैफिक पुलिसवालों और नगरीय प्रशासनिक अधिकारी-कर्मचारियों के उत्पीड़न और शोषण से भी मुक्ति मिलेगी।

असंगठित श्रमिकों का देश के जीडीपी में योगदान करीब 65 प्रतिशत है, जबकि कुल बचत में इनका योगदान 45 प्रतिशत है। रेहड़ी पटरी वाले भी असंगठित क्षेत्र के श्रमिक हैं, जिनका देश की अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान है।

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली समेत देश के सभी महानगरों में फिलवक्त लाखों रेहड़ी-पटरी वाले सड़क और फुटपाथ किनारे छोटी-मोटी वस्तुएं बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं। जिसमें बहुत कम लोगों के पास ही लाइसेंस हैं। केवल दिल्ली में 55 हजार रेहड़ी-पटरी वालों के पास लाइसेंस हैं। वहीं मुंबई में इस समय 18 हजार लाइसेंस प्राप्त वेंडर हैं। शहरीकरण और शहरी क्षेत्र में हुए विकास के कारण स्ट्रीट वेंडरों की आबादी के तेजी से बढ़ने का अनुमान है और ऐसे में वेंडरों को जीवनयापन के लिए अच्छा और प्रताड़ना रहित माहौल उपलब्ध कराया जाना जरूरी है। इस कानून के प्रभावी होने से राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में करीब चार लाख वेंडर और महानगर मुंबई में चार लाख साठ हजार वेंडर एक साथ लाभान्वित होंगे। ठीक इसी तरह से अन्य शहरों के वेंडरों को भी फायदा होगा। इस कानून से पूरे देश में रेहड़ी-पटरी वालों की एक बड़ी तादाद को वेंडिंग के लिए कानूनी संरक्षण मिल जाएगा। रोजगार के लिहाज से अहम इस कानून से सबसे ज्यादा फायदा उन लोगों को होगा, जिनके पास अपना कोई बंधा-बंधाया रोजगार और अपनी कोई दुकान नहीं है।

रेहड़ी-पटरी वालों की मुख्य शिकायत है कि इन्हें आए दिन कोई भी अपना निशाना बना लेता है, खास तौर से पुलिस, ट्रैफिक पुलिस और नगर निगम के कर्मचारी इन्हें आसानी से शिकार बनाते हैं। रेहड़ी पटरी वालों के राष्ट्रीय संगठन नेशनल एसोसिएशन आफ स्ट्रीट वेंडर्स आफ इंडिया (नासवी) के समन्वयक अरबिन्द सिंह कहते हैं कि अब तक रेहड़ी पटरी वालों के लिये कोई कानून नहीं था और इस कारण पुलिस वाले और सरकारी अधिकारी इन रेहड़ी-पटरी वालों से अवैध वसूली करते थे। इस वसूली को 'सुविधा शुल्क' कहा जाता था और 'सुविधा शुल्क' देने के बाद भी इस बात की कोई गारंटी नहीं होती थी कि वे अपना काम सही ढंग से कर पाएंगे। पुलिस और ट्रैफिक पुलिसकर्मियों से अगर बच जाएं, तो नगर निगम और महानगर पालिकाओं के कर्मचारियों के शोषण के शिकार ये लोग बनते थे। यह कानून हालांकि अभी तक ज्यादातर शहरों में क्रियान्वित नहीं हुआ है लेकिन इससे एक बदलाव यह हुआ है कि अब पुलिस और नगर निगम के अधिकारी पहले की तरह रेहड़ी-पटरी वालों को तंग नहीं कर रहे हैं।

दरअसल रेहड़ी-पटरी वालों की सबसे बड़ी चिंता इसी बात की रहती है कि कब कौन उन्हें शिकार बना ले। इस कानून की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सभी राज्य और नगर निगम कानूनों के साथ ही पुलिस अधिनियमों पर अपने अधिक प्रभावी प्रभाव से लैस है। अधिनियम कहता है कि इस अधिनियम के प्रावधान अधिनियम के अलावा उस समय प्रभावी अन्य किसी भी कानून या किसी अन्य कानून के आधार पर प्रभावी किसी भी उपकरण में निहित असंगति के बावजूद प्रभावी होंगे।

रेहड़ी पटरी कारोबारियों के जीविका अधिकारों, उनकी सामाजिक सुरक्षा, देश में शहरी स्ट्रीट वेंडिंग का विनियम के लिये बनाये गये स्ट्रीट वेंडर्स (जीविका सुरक्षा तथा रेहड़ी पटरी कारोबार विनियम) अधिनियम में कई ऐसे प्रावधान किए गए हैं जो स्ट्रीट वेंडरों की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हैं। इस अधिनियम में प्रावधान है कि हर शहर में टाउन वेंडिंग कमिटि (टीवीसी) होगी जो म्युनिसिपल कमिश्नर या मुख्य कार्यपालक के अधीन होगी। यही कमेटी रेहड़ी पटरी कारोबार से जुड़े सभी मुद्दों पर निर्णय लेगी। यह कमेटी इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने की धुरी है। यह कमेटी रेहड़ी पटरी कारोबार से जुड़ी गतिविधियों जैसे बाजार का निर्धारण, वेंडिंग क्षेत्र की पहचान, रेहड़ी पटरी कारोबार योजना की तैयारी तथा रेहड़ी पटरी कारोबारियों के सर्वेक्षण में भागीदारी आदि का संचालन करेगी। इस कमेटी में अधिकारियों, गैर-अधिकारियों, महिलाओं सहित रेहड़ी पटरी कारोबारियों को प्रतिनिधित्व दिया जायेगा। टीवीसी के 40 प्रतिशत सदस्य चुनाव के जरिए रेहड़ी पटरी कारोबारियों में से ही होंगे। इनमें से एक तिहाई महिलाएं होंगी तथा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग तथा अशक्त लोगों को प्रतिनिधित्व दिया जायेगा।

कमेटी को सभी स्ट्रीट वेंडरों के लिए पहचान पत्र जारी करना होगा। जिस व्यक्ति की उम्र 14 वर्ष या अधिक है उसे टीवीसी की ओर से प्रमाण पत्र जारी किया जायेगा। इसके पूर्व उनकी संख्या और निर्धारित क्षेत्र या जोन सुनिश्चित करने हेतु एक सर्वे कराया जाएगा। इस कानून के तहत सभी वर्तमान रेहड़ी पटरी कारोबारियों के सर्वेक्षण और प्रत्येक पांच वर्ष में पुनर्सर्वेक्षण की व्यवस्था है, जिसमें सर्वे में चिह्नित रेहड़ी पटरी कारोबारियों को प्रमाणपत्र जारी करना शामिल है। इसमें अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग तथा अशक्त लोगों को प्राथमिकता देने का प्रावधान है। सर्वे में चिह्नित सभी वर्तमान रेहड़ी पटरी कारोबारियों को रेहड़ी कारोबार क्षेत्र में शामिल किया जाएगा, शर्त यह है कि वार्ड या क्षेत्र या शहर की आबादी का 2.5 प्रतिशत रेहड़ी कारोबार क्षेत्र हो। रेहड़ी कारोबार क्षेत्र की क्षमता से अधिक जहां चिह्नित स्ट्रीट वेंडर्स हैं वहां टीवीसी लाटरी निकालकर उस रेहड़ी कारोबार क्षेत्र के लिए प्रमाणपत्र जारी करेगी। शेष को पड़ोस के रेहड़ी कारोबार क्षेत्र में समायोजित किया जाएगा। यह कानून कहता है कि सर्वे पूरा होने तथा रेहड़ी पटरी कारोबारियों को सर्टिफिकेट जारी होने तक किसी भी रेहड़ी पटरी कारोबार को उस स्थान से हटाया नहीं जाएगा। कानून के अनुसार यदि

केवल दिल्ली में 55 हजार रेहड़ी-पटरी वालों के पास लाइसेंस हैं। वहीं मुंबई में इस समय 18 हजार लाइसेंस प्राप्त वेंडर हैं। शहरीकरण और शहरी क्षेत्र में हुए विकास के कारण स्ट्रीट वेंडरों की आबादी के तेजी से बढ़ने का अनुमान है और ऐसे में वेंडरों को जीवनयापन के लिए अच्छा और प्रताड़ना रहित माहौल उपलब्ध कराया जाना जरूरी है।

किसी रेहड़ी पटरी और खोमचे वाले को प्रमाणपत्र जारी किया गया है और उसका निधन हो जाता है या वह बीमार है या वह स्थाई रूप से अशक्त हो जाता है तो उसके परिवार के सदस्य यानी उसकी पत्नी या निर्भर बच्चे को रेहड़ी पटरी और खोमचे चलाने का अधिकार होगा।

कोई वैधानिक मान्यता नहीं होने के कारण बैंक रेहड़ी पटरी वालों को कर्ज नहीं देते हैं और मजबूरन ये लोग बहुत अधिक ब्याज पर निजी सूदखोरों से कर्ज लेने को मजबूर हो जाते हैं। यूएनडीपी एवं टीआईएसएस की ओर से 15 शहरों में किए गए इस अध्ययन के अनुसार बैंकों से कर्ज नहीं मिलने के कारण रेहड़ी-पटरी वाले सूदखोरों से 300 से 800 प्रतिशत तक की वार्षिक ब्याज दर पर कर्ज लेते हैं।

इस तरह से इस कानून के जरिये रेहड़ी पटरी कारोबार में लगे लोगों का पंजीकरण कर कारोबार को व्यवस्थित बनाया जायेगा। इसके लिए सिर्फ दिल्ली में ही मौजूद लाखों रेहड़ी पटरी वालों का पंजीकरण चल रहा है। इन्हें प्रशिक्षण देने के बाद ही कारोबार का लाइसेंस मिलेगा। इसके आधार पर न सिर्फ इन्हें कानून में सुझाए गए अपने दायित्व पूरे करने होंगे बल्कि बीमा, ऋण और गरीबों के लिए सस्ते सरकारी आवास जैसी सुविधाएं पाने के अधिकार भी इन्हें मिल जाएंगे।

इस विधेयक के अमल में आने के बाद ज्यादातर रेहड़ी-पटरी वाले इसके दायरे में आ जाएंगे। कानून बनने के बाद देश के सभी शहरों में रेहड़ी-फेरी वालों के बीच जहां संगठनीकरण की प्रक्रिया तेज होगी, वहीं कानून के अमल के लिए नगर निकायों को भी चुस्त-दुरुस्त बनना पड़ेगा। सर्टिफिकेट देने की प्रक्रिया पूरी तरह से पारदर्शी हो, इसके लिए विधेयक में खास तौर पर ध्यान रखा गया है।

इस अधिनियम में स्थान बदलने, स्थान से हटाने और सामान की जब्ती को भी निर्दिष्ट किया गया है और यह रेहड़ी पटरी और खोमचे वालों के लिए सुलभ है। स्थानीय अधिकारियों द्वारा रेहड़ी पटरी और खोमचे वाले को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के मामले में टीवीसी की सिफारिश का प्रावधान है। इस अधिनियम में कहा गया है कि रेहड़ी-पटरी वालों का स्थान में परिवर्तन अंतिम उपाय के रूप में होगा। इसी तरह रेहड़ी-पटरी वालों को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर ले जाने के मामले में विधेयक की दूसरी अनुसूची में व्यवस्था है। इस व्यवस्था के तहत कहा गया है कि विस्थापन जहां तक संभव हो टाला जाना चाहिए, विस्थापन के काम को लागू करने में रेहड़ी-पटरी वालों तथा उनके प्रतिनिधियों को शामिल किया जाना चाहिए, उनका विस्थापन इस तरह किया जाना चाहिए ताकि वे अपनी आजीविका और जीवन स्तर को सुधार सकें और पहली जगह के बराबर वास्तव में काम-काज कर सकें। जिस बाजार में रेहड़ी-पटरी वाले 50 वर्ष से ऊपर अपना कारोबार कर रहे हैं उस बाजार को विरासत बाजार घोषित किया जाना चाहिए और इन बाजारों के रेहड़ी-पटरी वालों को विस्थापित नहीं किया जाना चाहिए।

इस अधिनियम में कहा गया है कि टीवीसी की सिफारिश पर शहरी रेहड़ी पटरी कारोबारियों के लिए पर्याप्त जगह और अनुकूल माहौल को बढ़ावा देने के लिए स्थानीय अधिकारी 5 सालों में एक बार योजना बनाएं ताकि वे अपनी आजीविका कमा सकें। खास तौर से इस बात का प्रावधान किया गया है कि प्रतिबंधित क्षेत्र की घोषणा खास नियमों के आधार पर की जाए, जैसे सर्वेक्षण के तहत चिह्नित कोई मौजूदा स्वाभाविक बाजार, या मौजूदा सामान्य बाजार को प्रतिबंधित क्षेत्र घोषित नहीं किया जाएगा। प्रतिबंधित क्षेत्र इस तरह से बनाया जाएगा जिससे कम से कम संख्या में रेहड़ी पटरी कारोबारियों को विस्थापित किया जाए - प्रतिबंधित क्षेत्र की घोषणा तब तक नहीं की जाएगी जब तक कि सर्वेक्षण नहीं किया जाए। इस प्रकार, यह विधेयक रेहड़ी पटरी कारोबारियों के हितों की पर्याप्त सुरक्षा करता है।

इस अधिनियम का जोर 'स्वाभाविक बाजार' पर है जिसे विधेयक के भीतर परिभाषित किया गया है। अधिनियम में प्रावधान है कि पूरी योजना इस बात को सुनिश्चित करे कि रेहड़ी पटरी कारोबारियों के लिए जगह या क्षेत्र की व्यवस्था उचित हो और प्राकृतिक बाजार के स्वभाव के अनुरूप हो। इस तरह, स्वाभाविक स्थान, जहां खरीददार और दुकानदार का निरंतर मिलना होता है, उसे विधेयक में संरक्षित किया गया है।

अधिनियम में रेहड़ी पटरी कारोबारियों की शिकायतों को दूर करने की दिशा में निष्पक्षता बनाए रखने के लिए सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी की अध्यक्षता में एक स्वतंत्र विवाद निवारण तंत्र की स्थापना का प्रावधान किया गया है। यह अधिनियम जब्त की गई जल्द नष्ट होने वाली और नष्ट नहीं होने वाली वस्तुओं को छुड़ाने के लिए निश्चित समय अवधि प्रदान करती है। नष्ट नहीं होने वाली वस्तुओं के मामले में, स्थानीय अधिकारी को दो कामकाजी दिनों में माल को छोड़ना होगा और जल्द नष्ट होने वाली वस्तुओं के मामले में उसी दिन उस माल को छोड़ना होगा, जिस दिन दावा किया गया है।

अधिनियम की धारा 29 रेहड़ी पटरी कारोबारियों के पुलिस और अन्य अधिकारियों के उत्पीड़न से संरक्षण प्रदान करती है और यह सुनिश्चित करती है कि वे किसी अन्य कानून के तहत भी बिना किसी उत्पीड़न के भय से अपना काम करें। यह अधिनियम विशेष तौर से इस बात का प्रावधान करता है कि विधेयक के तहत नियमों को इसके प्रारंभ होने के एक वर्ष के भीतर अधिसूचित किया जाना जरूरी होगा। और योजना के कार्यान्वयन में देरी को रोकने के लिए इसके प्रारंभ होने के छह महीने के भीतर अधिसूचित करना होगा।

अब तक होता यही रहा है कि रेहड़ी पटरी कारोबारियों की दुकानों को शहर अतिक्रमण से मुक्त कराने या सौंदर्यीकरण के नाम पर

मुंबई और पुणे में 70 प्रतिशत सर्वे पूरा हो चुका है। दिल्ली में टाउन वेंडिंग कमिटी बन गयी है लेकिन नियम नहीं बने हैं। हालांकि दिल्ली में एक सर्कुलर निकाला गया है जिसके कारण पुलिस एवं नगर निगम के अधिकारी रेहड़ी-पटरी वालों को पहले की तरह तंग नहीं कर रहे हैं। लुधियाना में भी कमिटी बन गयी है। बिहार सरकार ने इस कानून को लागू करने के लिये एक परियोजना शुरू की है

उजाड़ दिया जाता है। उनकी दुकानों और सामानों को काफी क्षति पहुंचाई जाती है, किंतु अब इस नए बिल के प्रावधान में ऐसे कृत्यों पर अंकुश लगा दिया गया है। नए प्रावधानों के मुताबिक अब यदि किसी क्षेत्र में उसकी कुल आबादी के 2.5 प्रतिशत से अधिक वेंडर होंगे तो उनको 30 दिन पूर्व नोटिस देना जरूरी होगा, तभी उन्हें दूसरे जोन में स्थानांतरित किया जा सकेगा। नोटिस की समयावधि के

बावजूद भी यदि कोई वेंडर उस जोन को खाली नहीं करता है तब उस पर 250 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना और अंतत: बलपूर्वक हटाया जा सकेगा अथवा उसके सामानों को जब्त किया जा सकेगा। इसकी एक सूची वेंडर को सौंपनी होगी तथा उचित जुर्माने के साथ उन जब्त सामानों को वापस लौटाया जा सकेगा। विधेयक में रेहड़ी पटरी कारोबारियों की सामाजिक-आर्थिक दशा सुधारने की दिशा में भी महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। इस कानून के अमल में आने के बाद इनकी गैरकानूनी स्थिति भी समाप्त हो जाएगी जिस वजह से वे कई तरह के सरकारी लाभ और योजनाओं से वंचित रह जाते थे। इसी वजह से वे संस्थागत कर्ज सुविधा का लाभ भी नहीं ले पाते थे तथा कई तरह के सरकारी विभागों और कर्मियों को अवैध किराया या घूस देने को मजबूर होना पड़ता था।

इस कानून के जरिये रेहड़ी-पटरी वालों को वैधानिक दर्जा मिलने से उन्हें बैंकों से कर्ज मिलना आसान हो जायेगा। गत वर्ष प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) और टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान (टीआईएसएस) ने पाया कि मुंबई के रेहड़ी पटरी वालों पर कर्ज का सबसे अधिक बोझ है। असल में कोई वैधानिक मान्यता नहीं होने के कारण बैंक रेहड़ी पटरी वालों को कर्ज नहीं देते हैं और मजबूरन ये लोग बहुत अधिक ब्याज पर निजी सूदखोरों से कर्ज लेने को मजबूर हो जाते हैं। यूएनडीपी एवं टीआईएसएस की ओर से 15 शहरों में किए गए इस अध्ययन के अनुसार बैंकों से कर्ज नहीं मिलने के कारण रेहड़ी-पटरी वाले सूदखोरों से 300 से 800 प्रतिशत तक की वार्षिक ब्याज दर पर कर्ज लेते हैं और इसका दुष्प्रभाव यह होता था कि वे आजीवन कर्ज के जाल में उलझकर रह जाते थे। मौजूदा कानून उन्हें वैधानिक दर्जा देता है जिससे उन्हें संस्थागत वित्तीय सेवाओं को हासिल करने में काफी सहूलियत होगी। वे कम ब्याज दरों पर सरकारी योजनाओं के जरिये बैंको से कर्ज भी प्राप्त कर सकेंगे। इस अध्ययन के अनुसार मुंबई, पटना और रांची के रेहड़ी पटरी वाले निजी सूदखोरों से सबसे अधिक कर्ज लेते हैं। और करीब 90 प्रतिशत रेहड़ी पटरी वाले एक साल में एक बार कर्ज लेते हैं जबकि 12 प्रतिशत हर माह कर्ज लेते हैं। इस कानून में स्ट्रीट वेंडरों के लिए सरकार द्वारा किए जाने वाले प्रोत्साहन उपायों, कर्जे की उपलब्धता, बीमा और सामाजिक सुरक्षा से जुड़े अन्य कल्याणकारी योजनाओं, क्षमता निर्माण कार्यक्रम, अनुसंधान, शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का प्रावधान किया गया है। कानून में रेहड़ी पटरी वालों की समस्या समाधान हेतु विवाद निवारण तंत्र के गठन करने का भी निर्देश है।

अरविन्द सिंह बताते हैं कि हालांकि यह कानून अभी ज्यादातर शहरों में प्रभावी नहीं हो पाया है लेकिन विभिन्न शहरों में सर्वेक्षण एवं टाउन वेंडिंग समिति बनाने का काम विभिन्न स्तरों पर जारी है। मिसाल के तौर पर मुंबई और पुणे में 70 प्रतिशत सर्वे पूरा हो चुका है। दिल्ली में टाउन वेंडिंग समिति बन गयी है लेकिन नियम नहीं बने हैं। हालांकि दिल्ली में एक सर्कुलर निकाला गया है जिसके कारण पुलिस एवं नगर निगम के अधिकारी रेहड़ी-पटरी वालों को पहले की तरह तंग नहीं कर रहे हैं। लुधियाना में भी समिति बन गयी है। बिहार सरकार ने इस कानून को लागू करने के लिये एक परियोजना शुरू की है जिसे पूरा करने की जिम्मेदारी नासवी को ही दी है। राज्य के विभिन्न शहरों में टाउन वेंडिग कमेटी बनाने की प्रक्रिया जारी है।

रेहड़ी पटरी वालों के अधिकारों से जुड़ी अधिवक्ता सुश्री संप्रति फुकन मलिक कहती हैं कि रेहड़ी-पटरी आजीविका संरक्षण और फेरी विनियमन कानून के प्रभाव में आने के बाद से स्ट्रीट वेंडरों में अपने अधिकारों को लेकर जो जागरूकता आयी है उसके कारण वे न्याय पाने के लिये अदालतों का सहारा लेने लगे हैं। उन्होंने इस संबंध में दिल्ली उच्च न्यायालय के हाल के दो फैसलों का उल्लेख किया। पहले आदेश में दिल्ली उच्च न्यायालय ने दिल्ली सरकार को चार सप्ताह के भीतर स्ट्रीट वेंडरों को लेकर नियम बनाने को कहा और दूसरे आदेश में स्ट्रीट फूड की बिक्री पर नगर निगम निकायों द्वारा वर्षों से लगाये गये प्रतिबंध को रद्द कर दिया। अदालत ने कहा कि खाद्य सुरक्षा कानून, 2006 और स्ट्रीट वेंडिंग कानून के प्रभावी होने के बाद नगर निगम निकाय कानून असंगत हो गये हैं और इनकी कोई जरूरत नही है।

मैसूर में रेहड़ी पटरी वालों के लिये काम करने वाले श्री भास्कर उर्स ने बताया कि मैसूर नगर निगम ने राज्य सरकार की मदद से एक सहकारिता समिति गठित की है। मैसूर में 34 फूड स्ट्रीट जोन बनाये गये हैं और वहां छह हजार स्ट्रीट वेंडर को लाइसेंस दिये जा चुके हैं जिनमें से 2200 फूड वेंडर्स हैं। ❑

योजना आगामी अंक

नवंबर 2014

प्रौद्योगिकी, नवाचार तथा ज्ञान अर्थव्यवस्था

दिसंबर 2014

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

पलायन, महिलाएं और असंगठित क्षेत्र

नीता एन

इस बात को समझने की आवश्यकता है कि आख़िर क्यों असंगठित क्षेत्रों में इतनी सारी महिलाएं हैं और क्यों ये महिलाएं असंगठित क्षेत्रों के भीतर कुछ ख़ास प्रक्षेत्रों में ही संकेन्द्रित हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि श्रम बाज़ार में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं कम योग्यता रखती हैं क्योंकि इनके पास अपेक्षाकृत कम शिक्षा और कौशल है और बाज़ार की जानकारियां भी इनके पास बेहद कम हैं। घरेलू काम काज में प्रवासी महिलाओं का आसान प्रवेश उन्हें कई लाभों से वंचित करता है जो कि बेहद चिंतनीय है

अबतक यह पूरी तरह स्थापित हो चुका है कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में असंगठित क्षेत्र की हालत बेहद नाजुक है और यह क्षेत्र संगठित होने की दिशा में बढ़ता नही दिख रहा है। असंगठित क्षेत्रों में मिलने वाले रोज़गार 2011-12 के कुल रोज़गार का 84 प्रतिशत है और इसमें महिलाओं की हिस्सेदारी की दर उच्चतर यानी 96 प्रतिशत तक है।

असंगठित क्षेत्र के विकास और ग्रामीण-शहरी प्रवासन के बीच के संबंध को लंबे समय से स्वीकारा जाता रहा है। 1970 के दशक से असंगठित क्षेत्रों का विस्तार होता जा रहा है और तबसे ग्रामीण-शहरी श्रम प्रवासन में भी वृद्धि की प्रवृत्ति देखी जा रही है। पुरुष प्रवासन इस तरह के विश्लेषण के केन्द्र में रहा है जबकि महिला श्रमिक प्रवासन को अक्सर बहुत कम महत्व दिया गया है। (रोज़गार के कारण महिला प्रवासन को राष्ट्रीय स्तर के लगभग सभी आंकड़ों के साथ अक्सर नगण्य अनुपात में दिखाया जाता है)। हालांकि 2007-08 में शहरी प्रवासन में महिला प्रवासन का प्रतिशत 62 था और वो कुल शहरी महिलाओं की आबादी का 46 प्रतिशत है। महिला प्रवासन के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि साल-दर-साल महिला प्रवासन की दर में वृद्धि होती रही है। 1993 में सिर्फ़ 38 प्रतिशत शहरी महिलाओं के प्रवासन के मुक़ाबले 2007-08 में 46 प्रतिशत था। पुरुष प्रवासन के बनिस्पत महिला प्रवासन के मामले ज़्यादा दिलचस्प हैं। 1993 और 2007-08 के दरम्यान पुरुष प्रवासन 24 प्रतिशत से बढ़कर 26 प्रतिशत हो गया। यानी पुरुष प्रवासन में सिर्फ़ 2 प्रतिशत का इज़ाफ़ा हुआ।

शहरी इलाक़ों में 2007-08 में विवाह कारणों से साहचर्य प्रवासन (29 प्रतिशत) के बाद 61 प्रतिशत महिलाएं प्रवासित हुईं। हालांकि कुल मिलाकर यही पैटर्न 1993 में भी था। इस साल भी विवाह के कारण 31.7 प्रतिशत साहचर्य प्रवासन हुआ जिसमें 49.5 प्रतिशत महिलाएं प्रवासित हुईं। शहरी इलाक़ों में संबद्ध कारणों से रोज़गार के लिए पलायन में गिरावट देखी गई है, यह 4.9 प्रतिशत से घटकर 2.7 प्रतिशत हो गया। ऐसा इस कारण से है क्योंकि महिला प्रवासन का अक्सर जनसांख्यिकीय संचार के रूप में विश्लेषित किया जाता है और महिला श्रम प्रवासन को महत्वहीन मान लिया जाता है। महिला प्रवासन को लेकर इकहरी और जैसे तैसे वाला दृष्टिकोण अपनाया जाता रहा है और जनसांख्यिकी और एनएसएस आंकड़ों में महिला श्रम प्रवासन को लेकर इस दृष्टिकोण पर अक्सर सवाल उठता रहा है। पिछले दो दशकों में हो रहे कई सूक्ष्म अध्ययनों में यह बात सामने आती रही है कि रोज़गार के लिए महिला श्रम का प्रवासन बड़ी संख्या में होता है। महिलाएं रोज़गार के नये अवसर की तलाश में शहरी इलाक़ों का रुख करती पायी जाती हैं। इससे शहरी श्रम बाज़ार की पुनर्संरचना पर गहरा असर पड़ा है। विशेष क्षेत्रीय संकेन्द्रण के साथ असंगठित क्षेत्रें में महिला प्रवासियों का संकेन्द्रण उच्च रहा है।

इसी पृष्ठभूमि में इस पत्र का उद्देश्य महिलाओं के ग्रामीण-शहरी प्रवासन और असंगठित क्षेत्रें में उनके रोज़गार अवसर के बीच सबंन्ध पर विमर्श करना है। भुगतान किये जाने वाले घरेलू कार्यों के विश्लेषण के माध्यम से पत्र इस सेक्टर के विभिन्न पहलुओं पर

लेखिका महिला विकास अध्ययन केंद्र, नई दिल्ली में वरिष्ठ फेलो हैं। वह 1998-2006 तक नोएडा स्थित वी.वी. गिरि राष्ट्रीय श्रम संस्थान में एसोसिएट फैलो रहीं। महिलाओं को रोजगार तथा श्रम, घरेलू नौकर, श्रमिक पलायन, लैंगिक सांख्यिकीय अंतराल आदि उनकी रुचि के शोध विषय हैं। ईमेल: neethapillai@gmail.com

प्रकाश डालता है और इन कामगारों के वर्ग, जाति, लिंग आदि को चित्रित करता है।

प्रवासी महिला रोज़गार का अगुआ असंगठित रोज़गार

चूंकि महिला श्रम प्रवासन पर आंकड़ों की अपनी सीमाएं हैं। इसलिए इस पत्र का विश्लेषण उन महिलाओं के रोज़गार स्टेटस पर आधारित है जिन्होंने खुद ही स्वीकार किया है कि वो प्रवासी हैं (निवास के अंतिम सामान्य जगह से अलग निवास की जगह) । रोज़गार की प्रवृत्ति और स्थिति के विश्लेषण में रोज़गार की अवस्था एक प्रवेश बिंदु है। स्वनियोजित रोज़गार और यदा कदा हासिल होने वाले रोज़गार की तमाम श्रेणी असंगठित रोज़गार से संबद्ध है। नियमित रोज़गार जैसा कि एनएसएस सर्वे में पारिभाषित किया गया है, सही मायने में एक आकारहीन और बेढब श्रेणी की परिभाषा है। यह परिभाषा रोज़गार में नियमितता के अलावा और कुछ संप्रेषित नहीं करती है। नियमित कार्य का एक महत्वपूर्ण घटक असंगठित रोज़गार भी हो सकता है। ये रोज़गार या तो असंगठित क्षेत्र के भीतर या संगठित क्षेत्र के भीतर असंगठति रोज़गार की तरह हो सकता है।

शहरी महिला रोज़गार की तस्वीर इस आंकड़े में ज्यादा सुसंगत दिखती है लगभग 36 प्रतिशत प्रवासी महिलाएं 2007-08 में स्पष्ट रूप से असंगठित क्षेत्रों में थीं। असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं की की हिस्सेदारी (36 प्रतिशत) निश्चित रूप से पुरुष कामगारों (57प्रतिशत) के मुक़ाबले बेहद कम है। हालांकि ये नगण्य नहीं है और समय के साथ यह बढ़ता ही जा रहा है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है कि सभी नियमित रोज़गार संगठित क्षेत्रों में ही नहीं है जो इस बात की मांग करता है कि सेक्टोरियल विश्लेषण किया जाए ताकि रोज़गार की वास्तविक प्रवृति को लेकर एक ठोस नतीजे पर पहुंचा जा सके।

सेक्टोरल तस्वीर विनिर्माण और संबद्ध गतिविधियों में महिला प्रवासी कामगारों की सबसे बड़ी हिस्सेदारी (25.4 प्रतिशत) का सही मायने में बेहतरीन खुलासा है। व्यापार के बाद होटल एवं रेस्टोरेंट (12.4 प्रतिशत) और शिक्षा (11.1 प्रतिशत) एवं कार्यरत व्यक्तियों के साथ निजी घरों (7.7 प्रतिशत) की बारी आती है। निर्माण कार्यों में लगभग 5.2 प्रतिशत शहरी महिला प्रवासी कामगार कार्यरत हैं। यह सुविज्ञात है कि घर आधारित महिला कामगारों के मुक़ाबले विनिर्माण और व्यापार कार्यों में बेहद कम महिला कामगार हैं और सड़कों- गलियों में रेहड़ी लगाने वाली महिलाओं की संख्या असंगठित क्षेत्रें में काम करने वाली महिलाओं में अच्छी खासी है। यह सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन से साफ़ होता है कि कई कारणों से घरों में काम काज करने वाली महिलाओं को शहरी महिला प्रवासी रोज़गार की तरह बड़े सर्वेक्षणों में शामिल ही नहीं किया जाता है। सीडब्लूडीएस द्वारा कराये गए एक बहु स्थानीय अध्ययन में यह साफ तौर पर पाया गया कि शहरी महिला प्रवासियों की संख्या की बनायी गई सूची में 27 प्रतिशत वाला घरेलू कार्य सबसे ऊपर था।निर्माण कार्यों मे लगी हुई ऐसी महिलाओं की संख्या 16 प्रतिशत जबकि शहरों में असंगठित क्षेत्रें में काम करने वाली महिला प्रवासियों की कुल संख्या 43 प्रतिशत थी (मजूमदार आदि, 2013)। इन दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों के शहरी इलाक़ों में काम करने वाली अप्रवासी महिलाओं के मुक़ाबले प्रवासी महिलाओं की संख्या कहीं ज्यादा है। 2007-08 में विनिर्माण क्षेत्रें में काम करने वाली महिला प्रवासियों की हिस्सेदारी बहुत कम थी। इसका सीधा मतलब यह है कि यहां स्थानीय श्रम का प्रतिशत बढ़ा हुआ था। दूसरी तरफ़ घरेलू कार्य और निर्माण में महिला प्रवासियों की हिस्सेदारी बहुत ज्यादा है, यह इस बात का द्योतक है कि इस सेक्टर में कार्यों और काम करने के हालात बेहद दयनीय हैं और यही वह कारण है जो स्थानीय कामगारों को इन क्षेत्रें में आने से रोकते हैं।

1999-00 से 2007-08 की अवधि में विभिन्न क्षेत्रें के बदलते महत्व और हिस्सेदारी बेहद दिलचस्प है। इस प्रकार, इस पूरी अवधि के दौरान विनिर्माण और कार्यरत व्यक्तियों (जो काफी हद तक घरेलू श्रमिकों का भुगतान कर रहे हैं) के निजी घरों में काम करने वाली महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ती गई है, जबकि शिक्षा, व्यापार और होटलों में इनकी संख्या घटी है। प्रवासी रोज़गारों वाले इन सेक्टरों में घरेलू कार्यों के लिए भुगतान पाने वाली प्रवासी महिलाओं की संख्या लागातार बढ़ रही है और इस तथ्य को अब कोई नज़रअंदाज़ भी नहीं कर रहा है। सेक्टोरियल संकेन्द्रण के संदर्भ में विशेष रूप से जो उल्लेखनीय है, वो है, इन क्षेत्रें में पुरुष-महिला की हिस्सेदारी, जबकि सभी दूसरे संकेन्द्रित असंगठित क्षेत्रें में महिला प्रवासी कामगारों में बहुत कम महिला हिस्सेदारी है (दोनों प्रवासी और सभी महिलाएं के लिए)। घरेलू कार्यों के लिये भुगतान पा रही महिलाओं की अपेक्षा महिला कामगारों की संख्या ज्यादा है जिनमें से ज्यादातर प्रवासी हैं।

इस बात को समझने की आवश्यकता है कि आख़िर क्यों असंगठित क्षेत्रें में इतनी सारी महिलाएं हैं और क्यों ये महिलाएं असंगठित क्षेत्रें के भीतर कुछ ख़ास प्रक्षेत्रें में ही संकेन्द्रित हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि श्रम बाज़ार में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं कम योग्यता रखती हैं क्योंकि इनके पास अपेक्षाकृत कम शिक्षा और कौशल है और बाज़ार की जानकारियां भी इनके पास बेहद कम हैं। अन्य सर्वेक्षक बताते हैं कि सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं के कारण महिलाएं समय और अपनी गतिशीलता से लाचार हैं और ये परंपराएं इन्हें ज़िम्मेदारियों और सामाजिक प्रजनन के दायरे में जकड़े रखती हैं, जो रोज़गार की इनकी चाहत पर लगाम कस देती हैं। यह बात उन प्रवासी महिलाओं के लिए ख़ास तौर पर सच है जिन्हें शहरी इलाक़ों में किसी भी तरह का सहयोग

तालिका 1: सभी तरह के रोज़गार में प्रवासी कामगारों का अनुपात - 2007-08

	(प्रतिशत)	(प्रतिशत)	2007.08 और 1999-00 के बीच अंतर	
श्रेणी	पुरुष	महिलाएं	पुरुष	महिलाएं
स्वखाताधारी कामगार	25.7	22.9	0.21	-2.21
नियोक्ता	2.5	0.7	1.27	0.06
सहायक	3	20.3	-0.6	-1.11
नियमित श्रमिक	56.9	36.2	0.43	6.18
आकस्मिक श्रमिक	11.9	19.8	-1.31	-3.03

स्रोत: भारत में प्रवासन एएनएसएसओ यूनिट स्तरीय डेटा, 2007.08

नहीं मिलता, चाहे वह सहयोग व्यक्तिगत हो, सामुदायिक हो या फिर राज्यस्तरीय हो।

भुगतान किया जाने वाला घरेलू कार्य: महिला प्रवासी कामगारों का एक बढ़ता प्रक्षेत्र

जैसा कि सूक्ष्म अनुभवजन्य अध्ययनों से स्पष्ट होता है, ज्यादातर कामगारों के लिए अंतर्राज्यीय प्रवास के साथ घरेलू सेवा काफी हद तक एक पूरी तरह प्रवासी व्यवसाय है (नीता, 2003, आईएसएसटी 2009)। इसके लिए कई कारकों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। महत्वपूर्ण कारणों में स्थानीय श्रम की अनुपलब्धता और स्थानीय पुरुषों में कम मज़दूरी के कारण उत्पन्न अरुचि तथा दूसरी तरह की व्यर्थ की शर्तों को गिनाया जाता है। घरेलू काम काज में प्रवासी महिलाओं का आसान प्रवेश उन्हें कई लाभों से वंचित करता है जो कि बेहद चिंतनीय है। प्रवेश के लिए शायद ही किसी तरह का कोई प्रतिबंध है क्योंकि व्यवसाय के लिए कौशल की मांग अक्सर घर के काम का ही एक विस्तार है और इसका अपने स्वयं के घरों में महिलाओं द्वारा बड़े पैमाने पर प्रदर्शन भी किया जाता है। सामान्यत: युवा महिलाओं के लिए एक प्राथमिकता होती है। ऐसे बीतते समय के साथ श्रमिकों का उम्र प्रोफाइल बदल गया है और ज्यादा युवा महिलाएं शहरी क्षेत्रें में प्रवास धाराओं में शामिल हो रही हैं।

बीते दो दशकों में घरेलू कार्यों में बहुत ज्यादा बढ़ोतरी हुई है और विभिन्न तरह के घरेलू कार्यों को अंजाम देतीं महिलाएं या तो बाहर रहती हुई काम करती हैं या फिर पार्ट टाइम काम करती हैं लेकिन उनका रहना अपने निवास स्थान पर ही होता है। पार्ट टाइम सिस्टम काम देने वालों के लिए यह सहूलियत देता है कि वो अपने बजट के हिसाब से घरेलू काम काज को अंजाम देने वाली महिलाओं को आउटसोर्स कर सके। घरेलू कामकाजी उन घरों में विविध कार्यों को अंजाम दे सकते हैं, जहां वो काम करते हैं। इन कार्यों में शामिल हैं, घर की सफ़ाई, कपड़ों पर इस्तरी, खाना बनाना, बरतन धोना, बच्चों की देखभाल करना, बुर्जुर्गों का ख्याल रखना, ख़रीदारी, बच्चों को स्कूल ले जाना और स्कूल से लाना और घर के रोज़मर्रे के कार्यों को अंजाम देना। घरेलू कार्यों में जातिगत विभाजन भी ज़बर्दस्त है। निचली जातियों के कामगार जहां साफ-सफ़ाई वाले कार्यों को अंजाम देते हैं वहीं अगड़ी जातियों से संबंधित कामगार खाना बनाने जैसे कार्यों को अंजाम देते हुए पाये जाते हैं।

घरेलू कामगार ख़ासतौर पर ग्रामीण क्षेत्रें से आये लोग होते हैं जिनकी पारंपरिक संलग्नता कृषि कार्यों के साथ होती है। प्रवासन की प्राथमिक इकाई उन लोगों की है जो बाहर रहने वाले कामकाजी हैं और ये अक्सर पूरा का पूरा परिवार होता है, हालांकि कई मामले ऐसे भी हैं जहां अकेली महिला कामकाज की तलाश में प्रवास कर जाती है। इसके अलावा कुछ मामलों में महिला प्रवासन के मुक़ाबले पुरुष प्रवासन बाद में और सहायक के तौर पर होता है। जैसा की बहुत सारे अध्ययनों में यह बताया गया है कि ग़रीबी, भोजन की कमी और रोज़गार की परेशानी ही वो कारण हैं जो इन्हें अपने मूल स्थानों से प्रवास करने के लिए बाध्य करते हैं। ये अध्ययन शहरी क्षेत्रें घरेलू काम के अवसरों की उपलब्धता के प्रवासी कामगार जागरूकता और यहां तक कि शहरी क्षेत्रें के लिए उनके प्रवास से पहले प्रवेश की आसानी के दस्तावेज हैं। बच्चों के साथ महिलाओं का अकेला होना (परित्यक्ता, पुरुष साथी से अलगाव या तलाक़) भी महिलाओं के प्रवासन और घरलू कार्यों में उनके कामगार होने के पीछे का एक बहुत बड़ा कारण है।

ग़रीबी, भोजन की कमी और रोज़गार की परेशानी वे कारण हैं जो किसी को मूल स्थान से प्रवास के लिए बाध्य करते हैं। बच्चों के साथ महिलाओं का अकेला होना (परित्यक्ता, पुरुष साथी से अलगाव या तलाक़) भी प्रवासन और घरेलू कार्यों में उनके संलग्न होने का बहुत बड़ा कारण है।

भले ही घरेलू काम को पार्ट टाइम काम की तरह करने वालों के बीच पारिवारिक प्रवासन आम हो, लेकिन पारिवारिक प्रवासन के पीछे महिलाओं के लिए रोज़गार का अवसर निश्चित रूप से एक शक्तिशाली कारक है (कस्तूरी, 1990, नीता, 2003)। श्रमिकों के एक समुच्चय के लिए घरेलू कार्य अब उनके लिए एक नियमित रोज़गार का रूप है और उनकी आय का एक महत्वपूर्ण ज़रिया भी है जिनके बिना उनका अस्तित्व एक बड़ा मुद्दा है। कार्यों की आकस्मिक प्रकृति और पुरुष रोज़गार के साथ आय को लेकर असुरक्षा की भावना महिलाओं को इसके लिए आगे करती है कि उन्हें भुगतान करने वाला नियमित कार्य मिलता रहे।

अन्य श्रेणियों के लिए यह एक अनियमित परिणाम है। आर्थिक दबाव में कई महिलाएं भुगतान किये जाने वाले घरेलू काम काज को पकड़ती और छोड़ती रहती हैं। ज्यादातर महिलाएं घरेलू काम काज को इसलिए ज्यादा पसंद करती हैं क्योंकि वो आर्थिक दबाव के मुताबिक़ काम करने वाले घरों की संख्या को घटा-बढ़ा सकती हैं। इसके अलावा घरेलू कार्यों के लिए समय और उस समय का लचीलापन महिलाओं के लिए इस काम को ग्राह्य बनाने में मदद करते हैं। कई सूक्ष्म अध्ययनों में पाया गया है कि बहुत सारी महिलाओं ने निर्माण कार्यों से अपने आप को हटाया है और घरेलू कार्यों मे स्वयं को लगाया है। संबद्ध स्थायित्व और घरेलू काम के नियमितता वाले पहलू के अलावा यह गतिविधि भी घरेलू काम में लचीलेपन के लिए जिम्मेदार है।

एकल प्रवासन या सहकर्मी समूह प्रवासन, घर के भीतर काम करने वालों के बीच एक महत्वपूर्ण प्रवासन का प्रतिरूप है, जो बहुत सारे मामलों में भर्ती करने वालों या एजेंसी के ज़रिये संपर्क किया जाता है। एक कामगार के साथ अक्सर संलग्न होने वाले गुणों में होते हैं विश्वसनीयता, आज्ञाकारिता और निपुणता।

कार्य गठन और संबंधों का व्यापक स्वरूप अलग-अलग विवरणों के साथ सहनिवासी वाले सभी मामलों में लगभग एक ही रहता है। सहनिवासी कामगार अक्सर अपने पारिवारिक अर्थव्यवस्था के हिसाब से प्रवास का निर्णय लेते हैं। यहां एक बार घरेलू काम की यही विशिष्टता यानी आसान प्रवेश और निष्कसन, रहने-खाने की अलग व्यवस्था ज्यादातर महिलाओं के लिए घरेलू काम काज में उनके प्रवासन को संभव बनाती है।

पूर्ववर्ती चर्चा से यह साफ है कि घरेलू काम काज में विकास और महिला प्रवासन तथा इसके विभिन्न आयामों के बीच एक नज़दीकी संबंध है। घरेलू कामगारों की नियमित आपूर्ति सही मायने में एक नियमित संकट प्रवाह के ज़रिये होती है, संकट से घिरे ये प्रवासी कामगार अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हमेशा मामूली पैसों और मामूली हैसियत के साथ भी काम करने के लिए तैयार रहते हैं। दूसरी तरफ़ इस सेक्टर की असंगठित प्रवृत्ति के कारण घरेलू

कामगारों की मांग लगातार बढ़ती जा रही है।

असंगठन या अनौपचारिकता काम की खंडित प्रवृत्ति, कार्यों की अधिकता और नियोक्ताओं की बहुलता जैसे वास्तविक कार्यों के संदर्भ में मौजूद है। रोज़गार की स्थिरता और विविध कार्य संबंधों का मामला भी है। कार्यों का विवरण, मज़दूरी संरचना एवं सर्विस पैकेज अलग-अलग व जटिल हैं और ये सब मिलकर इसे इस क़दर समस्या लाते हैं कि स्थान विशेष पर भी समान मज़दूरी लागू करने में परेशानी होती है (नीता, 2009)। काम की मज़दूरी और दूसरी स्थितियां भी बराबर नहीं हैं। क्षेत्रवार इनमें बहुत फ़र्क़ है और यहां तक कि एक ही शहर की अलग अलग जगहों पर इनकी स्थिति एक समान नहीं है।

बड़े भागों (जैसे रसोइया, सफाईकर्मी एवं आया) के अलावा एक ही श्रेणी के भीतर भी मज़दूरी की दरें अलग-अलग हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि संविदा की प्रवृति क्या है और कामकाज या कामकाजों की दूसरी विशेषताएं क्या हैं और यह सब पूरी तरह इस बात पर निर्भर करता है कि बाज़ार संबंधित मानकों के साथ उस कामगार विशेष का रिश्ता क्या है। साप्ताहिक अवकाश, वार्षिक अवकाश, मातृत्व अवकाश, बच्चे की देखभाल के लिए छुट्टी या रुग्ण-अवकाश शायद ही इस सेक्टर में दिये जाते हैं। काम की सभी तरह की स्थितियां और शर्तें, पगार का पुनर्मूल्यांकन, अवकाश और इसी तरह की दूसरी सुविधाएं इस बात पर निर्भर करती हैं कि किसने क्या तय किया है। इस सेक्टर में पर्याप्त नियमन का अभाव है और यही कारण है कि लिंग, जाति और प्रवासन की दूसरी बातों में फ़ंसे इस सेक्टर में असंगठन की स्थिति दयनीय हालत तक पहुंची हुई है। घरेलू श्रमिकों को काफी हद तक कोर श्रम कानूनों के कवरेज से बाहर रखा गया है, हालांकि कुछ राज्यों ने इन कामगारों के लिए न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम के लाभ बढ़ा दिये हैं।

निष्कर्ष

ऊपर की गई चर्चाओं से ये स्पष्ट है कि असंगठित क्षेत्र श्रम एक निष्क्रिय अवशोषक तो नहीं है लेकिन इसकी जड़ें सामाजिक और आर्थिक विषमता के साथ ज़रूर जकड़ी हुई हैं। इस प्रकार, सभी सेक्टर के दरवाज़े भी प्रवासी महिलाओं या सभी प्रवासी महिलाओं के लिए नहीं खुले हुए हैं। महिला प्रवासियों द्वारा किए गए कार्य की प्रवृत्ति विशेष रूप से श्रमिकों के संदर्भ में प्रवासियों के रूप में अपनी स्थिति से निर्धारित होती है जिनके पास कोई अन्य सामाजिक पूंजी और अन्य तरह की समर्थन प्रणाली नहीं है। असंगठन उन कई क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण है जहां प्रवासी महिलाओं का संकेन्द्रण है। यह तथ्य भुगतान और घरेलू काम काज की चर्चा से भी स्पष्ट होता है। चूंकि इस तरह की प्रवासी महिलाओं के लिए अस्तित्व का सवाल केन्द्रीय बिन्दु है, यही कारण है कि उन्हें जहां भी नियमित आवक की गुंजाइश दिखती है, वहां वो काम करने के लिए तैयार रहती हैं। एक निश्चित सामाजिक-आर्थिक समूह से सम्बद्ध गांव से प्रवास करने वाली इन महिलाओं का सतत प्रवाह और उनका घरेलू काम काज में संकेन्द्रण सही मायने में रोज़गार को लेकर इनके बीच चल रही हताशा का परिणाम है। प्रवासी परिवारों और ख़ासकर ग़रीब प्रवासी जिनके यहां पुरुषों की आय अनिश्चित है, वहां अस्तित्व के लिए महिलाओं की आवक अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। घरेलू काम काज जैसे बेहद असंगठित कार्य भी प्रवासी महिलाओं को आर्थिक स्थिति के संदर्भ में उनके प्रदर्शन आधारित श्रम बाज़ार से बाहर होने के लिए बाध्य करते हैं।

महिला प्रवासियों द्वारा किए गए कार्य की प्रवृत्ति विशेष रूप से श्रमिकों के संदर्भ में प्रवासियों के रूप में अपनी स्थिति से निर्धारित होती है जिनके पास कोई अन्य सामाजिक पूंजी और अन्य तरह की समर्थन प्रणाली नहीं है। असंगठन उन कई क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण है जहां प्रवासी महिलाओं का संकेन्द्रण है।

घरेलू काम को अब एक ब्रिजिंग व्यवसाय के रूप में देखा जाता है, और जो प्रवासी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता को अनुमति देता है। यह पहले की समझ के ठीक उल्टा है जहां भुगतान किये जाते घरेलू काम काज को असंगठित क्षेत्र के भीतर रोज़गार गतिशीलता के लिए एक मध्यवर्ती क़दम की तरह देखा जाता था। उच्च स्तर का असंगठन या अनौपचारिकता वाला यह ठहरा हुआ दृश्य असंगठित क्षेत्र की प्रवासी महिलाएं और उनके काम काज से जुड़े हालात को लेकर बुनियादी मुद्दों को उठाता है। यहां तक कि असंगठित क्षेत्र के भीतर वैकल्पिक रोजगार की गैर उपलब्धता समय के साथ समग्र क्षेत्र के रोजगार में महिलाओं की हिस्सेदारी में गिरावट की बड़ी तस्वीर को देखते हुए यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। ❑

सन्दर्भः

कस्तूरी लीला (1990): पोवर्टी, माइग्रेशन एंड वीमन्स स्टेटस, इन वीना मजूमदार (एण्ड). वीमेन वर्कर्स इन इंडिया: *स्टडीज़ ऑन इम्प्लॉयमेंट स्टेटस*, चाणक्य पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

आईएसएसटी (2009): डोमेस्टिक वर्कर्स इन अर्बन डेल्ही, अनपबलिस्ड रिपोर्ट, इंस्टिट्युट ऑफ सोशल स्डडीज़ ट्रस्ट, नई दिल्ली

मजूमदार व अन्य (2013): माइग्रेशन एंड जेंडर इन इंडिया इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वोल्युम. 68, नंबर 10

नीता, एन. (2003): माइग्रेशन, सोशल नेटवर्किंग एंड इम्प्लॉयमेंट: *अ स्टडी ऑफ डोमेस्टिक वर्कर्स इन डेल्ही*, एनएलआई रिसर्च स्टडी सीरीज़, नंबर 37, वी. वी. गिरि नेशनल लेबर इंस्टीट्युट, नोएडा।

नीता, एन (2009): कंटूर्स ऑफ डोमेस्टिक सर्विस: कैरेक्टेरिस्टिक्स: वर्क रेग्युलेशन. द इंडियन जर्नल आफ़ लेबर इकोनॉमिक्स वर्ष 52, अंक 3, 2009.

(पृष्ठ 22 का शेषांश)

और आपूर्ति पक्ष में हो रही यह एक अन्य महत्वपूर्ण कमी है। पीएमजेडीवाई के तहत बैंकों को यह सलाह दी गई है कि एक दिन में प्रत्येक शाखा में 200 खाते खोलें, लेकिन यह काफी चौकन्ना करने वाला आदेश है क्योंकि मौजूदा ढांचे में बैंक शाखाएं इतना अत्यधिक भार वहन नहीं कर सकती हैं। इसलिए बैंकों की पहुंच धीरे-धीरे बढ़ाई जानी चाहिए, और बैंकिंग ढांचे की क्षमता के साथ-साथ ग्राहक आधार को भी ज्यादा बेहतर तरीके से सेवा दी जा सकती है, और इस प्रणाली से व्यवस्था को किसी भी तरह का दबाव महसूस नहीं होना चाहिए।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर, पीएमजेडीवाई वित्तीय समावेशन की दिशा में एक बड़ा कदम है। बैंक सेवाओं से वंचित लोगों को आधारभूत बैंक खातों के साथ संलग्न बीमा कवरेज, डेबिट कार्ड सुविधा इत्यादि देने से गरीबी परिवार कल्याण में लाभ होगा, स्थिरता आएगी और आपात स्थिति से निबटने की क्षमता विकसित होगी, यदि यह योजना चुनौतियों को पूरा कर पाती है तो इससे बैंकिंग ढांचों (बैंक की शाखाएं, एटीएम) को सुधारने और अंतिम प्रभावी समावेशन की पूर्णतः जांच निगरानी में भी मदद मिलेगी। ❑

टीएफए पर क्या हो भारत का निर्णय ?

नीलाब्ज घोष

टीएफए के विरुद्ध अख्तियार किये गये रुख और इस वार्ता को लगभग स्थगित कर देने को गरीब लोगों के प्रति प्रतिबद्धता तथा घरेलू मांग के हिसाब से न्यायोचित ठहराया जाता है। विफलताओं और दूसरे देशों की रणनीति पर चर्चा, नीतिगत स्वायत्ता पर हमले के प्रति विरोध और बाहरी दबावों के साथ साथ भीतरी मजबूरियों के साथ तालमेल आदि से अलग हटकर देखें तो चार दशक से चली आ रही प्रथाओं पर मंथन की आवश्यकता तो है ही

भारत विश्व अर्थव्यवस्था में निस्संदेह एक जिम्मेदार राष्ट्र है और विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) की उसकी सदस्यता इस बात को प्रमाणित भी करती है। यद्यपि किसी भी लोकतांत्रिक सरकार के लिए घरेलू दायित्वों और बाह्य प्रतिबद्धताओं के बीच संतुलन बनाना कभी आसान नहीं होता है तथापि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में कड़ी चुनौतियां और कठिन विकल्पों का चयन एक सामान्य बात है।

दिसम्बर 2013 में संपन्न विश्व व्यापार संगठन के नौवें मंत्री स्तरीय सम्मेलन के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आयी *व्यापार सरलीकरण संधि (टीएफए)* खाद्य सामग्री को व्यापार योग्य वस्तु के रूप में मान्यता देने पर केन्द्रित है और फिलहाल इसे मान्यता मिल नहीं पायी है (डब्ल्यूटीओ वेबसाइट)। जहां केवल टीएफए पर हस्ताक्षर का अर्थ व्यापार की पारदर्शी और आसान प्रक्रिया को बनाये रखना है, जिसमें भारत के लिए कोई बड़ी समस्या नहीं दिखती है, वहीं इस पर निर्णय एक अति संवेदनशील विषय खरीदी पर रियायतों को खत्म करने से जोड़ दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप परंपरागत खाद्यान्न फसलों के अतिभंडारण की प्रवृत्ति आ सकती है। यह खाद्य सुरक्षा के मद्देनजर मंत्रालय स्तरीय निर्णय है। ऐसा अतिभंडारण, जो हाल ही (सितंबर 2013, नियमित बैठक) में थाईलैंड एवं इंडोनेशिया में देखा गया और अखाद्य फसलों में कपास को लेकर ऐसे ही अतिभंडारण के आरोप चीन पर लगे, यह बुरे समय में आयात करने वाले देशों के लिए खाद्य सुरक्षा के समक्ष एक चुनौती है और साथ ही जब यह भंडार सस्ती कीमत पर बाजार में उतारा जाएगा तो उन्हीं देशों के किसानों के लिए एक बार फिर समस्या पैदा करेगा। ऐसी आशंका जतायी जा है कि इस संधि पर हस्ताक्षर करने का गंभीर राजनीतिक परिणाम भारत को भुगतना पड़ सकता है।

खाद्य नीति पर पुनर्विचार: एक पहेली

भारत जब विश्व व्यापार संगठन में शामिल हुआ, तब कृषि विषयक संधि (एओए) की आवश्यक प्रतिबद्धताएं कठिन नहीं लग रही थीं। सकल समर्थन उपाय (एएमएस) तब अनुमानित अधिकतम सीमा की हद में सुरक्षित थे, भारत को एक विकासशील देश के रूप में उसकी ऋण भुगतान समस्या पर रियायतें और कुछ अन्य सुविधाएं हासिल थीं, यह सब सहज था। अन्न भंडारण नीति पर विरोधाभास कहीं मुखर नहीं दिख रहा था।

खाद्य सुरक्षा भंडार बनाये रखने के लिए आवश्यक रियायतों को कृषि विषयक संधि को माध्यम से सैद्धांतिक रूप से समर्थन दिया जा सकता है हालांकि, अन्य वस्तुओं के विपरीत इस रियायत की गणना में प्रयुक्त स्थितियां समय के साथ इसे इतना असह्य बना देंगी कि सार्वजनिक खरीदारी बेहद कठिन हो जाएगी। हाल में विकासशील देशों के जी-33 समूह की ओर से प्रस्तुत एक प्रस्ताव में विशेष छूट प्राप्त करने के लिए जोर शोर से उठाया गया था लेकिन वे ही सदस्य समाधान ढूंढने की दिशा में समयसीमा तय करने के मुद्दे पर मुंह मोड़ गये। गरीब किसानों से खरीदारी का हिस्सा छोड़ दें तो यह प्रस्ताव हरित बॉक्स की एक नयी परिभाषा

लेखक आर्थिक विशेषज्ञ हैं। संप्रति वह दिल्ली स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ इकॉनामिक ग्रोथ में असोसिएट प्रोफेसर हैं। उन्होंने खाद्य, कृषि, पर्यावरण और अन्य विकास संबंधी विषयों पर कई शोध किये हैं। ईमेल: nila@iegindia.

आकृति 1: *भारत में जनसंख्या, उत्पादन और भंडार: गेहूं और चावल*

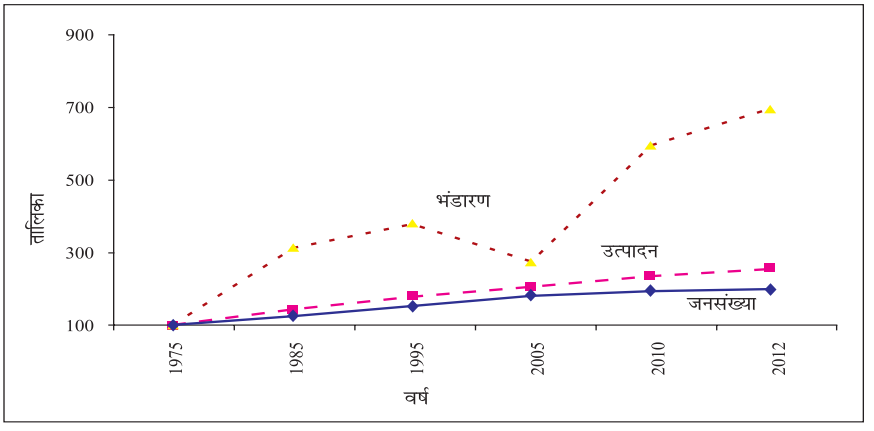

गढ़ सकता था। एक ओर सदस्यों ने खाद्य सुरक्षा की महत्ता को तो स्वीकार किया लेकिन समाधान पर पहुंच नहीं पाये। शायद कुछ अच्छे कारणों से भारत गणना पद्धति पर सवाल 'स्थायी समाधान' मिलने तक टीएफए को टाले रखना चाहता है।

भारत की लगभग आधी कार्यशील आबादी कृषि पर निर्भर है और फसली कृषि क्षेत्र के लगभग 37 प्रतिशत क्षेत्रफल में मुख्यत: दो खाद्यान्न फसलें चावल और गेहूं उगायी जाती हैं। ये फसलें सघन रूप से नीति नियमित वातावरण में उगायी जाती हैं। पिछले कुछ दशकों से भारत की खाद्य नीति न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के जरिए सार्वजनिक खरीदारी, अतिरिक्त फसल का सुरक्षित सार्वजनिक भंडारण और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) के जरिए वितरण पर आधारित रही है। भारत ने हाल में खाद्य सुरक्षा अधिनियम भी पारित किया है जो सबके लिए खाद्यान्न की उपलब्धता सुनिश्चित करता है।

जब आर्थिक सुधारों की शुरूआत हुई, तब देश में वैचारिक, राजनीतिक व कुछ व्यावहारिक कारणों से न्यूनतम समर्थन मूल्य और सार्वजनिक वितरण प्रणाली, दोनों की ही खूब आलोचना हुई। यहां तक कि इन आलोचनाओं की वजह से किये गये तमाम संशोधनों के बावजूद शंकाओं का समाधान शायद ही हो सका। भारतीय अर्थव्यवस्था के इन दो आधारस्तंभों को गरीब मतदाताओं की गरीबी तथा खाद्य असुरक्षा के समाधान का नियमित उपकरण मान लिया गया।

टीएफए के विरुद्ध अख्तियार किये गये रुख और इस वार्ता को लगभग स्थगित कर देने को गरीब लोगों के प्रति प्रतिबद्धता तथा घरेलू मांग के हिसाब से न्यायोचित ठहराया जाता है। विफलताओं और दूसरे देशों की रणनीति पर चर्चा, नीतिगत स्वायत्ता पर हमले के प्रति विरोध और बाहरी दबावों व भीतरी मजबूरियों के साथ तालमेल आदि से अलग हटकर देखें तो चार दशक से चली आ रही प्रथाओं पर मंथन की आवश्यकता तो है ही।

यह आलेख आंतरिक रणनीतियों की उपयोगिता को बताने और उन्हें प्रतिबिंबित करने वाला है जो मौजूदा समस्या की जड़ में हैं और साथ ही इसके माध्यम से स्वयं भारत की खाद्य सुरक्षा आवश्यकताओं की पृष्ठभूमि में विभिन्न पक्षों के ऊहापोह को भी टटोलने की कोशिश की जाएगी।

भारत के कठोर रवैये के पक्ष में तर्क

भारत में खाद्य नीतियों की शुरुआत स्वातंत्रयोत्तर काल में खाद्यान्नों की कमी तथा इसके कारण नागरिकों की खाद्य असुरक्षा से शुरू होती है। सौभाग्य से खाद्य नीति नयी कृषि प्रौद्योगिकी के अनुकूल रही जिसके जरिए चर्चा किये जा रहे दोनों खाद्यान्नों की उत्पादकता कई गुणा बढ़ सकती थी यदि किसानों को इन प्रौद्योगिकियों में निवेश का मौका मिल पाता। आज भी, भारत के डब्ल्यूटीओ के वर्चस्व वाले धड़े के साथ जाने की हठ के पीछे कोई एक और संभवत: केवल एक मजबूरी अगर है तो वह खाद्य सुरक्षा ही है। जहां वाणिज्य मंत्री ने 'निर्ध' किसानों को 'न्यूनतम प्रतिफल' सुनिश्चित कर किसानों के हितों की रक्षा की बात की है वहीं इसका परिणाम देश और गरीब उपभोक्ताओं की खाद्य सुरक्षा के रूप में सामने आए है। इनमें से बहुत से उपभोक्ता शहरी क्षेत्रों में रहने वाले, मुखर और मीडिया की पहुंच में हैं। ऐसे में यह हठधर्मिता न केवल मतदाता वर्ग की मांग है बल्कि एक आर्थिक मजबूरी भी है।

इस तर्क के विरोध में कहने को बहुत कम है। आज खाद्य सुरक्षा केवल राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्न की पर्याप्तता भर नहीं है। यहां तो घर-घर के स्तर पर और प्रत्येक सदस्य के स्तर पर खाद्य सुरक्षा का भी सवाल है तथा इसका जवाब राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्न की पर्याप्तता नहीं हो सकती है (घोष एवं गुहाखासनोबिस, 2008)। असमान उत्पादन क्षमता तथा निम्न खरीद क्षमता वाले इस विशाल देश में खाद्यान्न के वितरण में कठिनाइयां तथा उपभोक्ताओं के बहुसंख्य धड़े की क्रय शक्ति कमजोर होने से घर-घर तक पहुंच बनाने में मुश्किल आती है। वृहत् पैमाने पर वितरण के

तालिका 1: बड़े राज्यों से खरीदारी एवं कृषि प्रोफाइल (2010-11)

स्रोत राज्य	गरीबी रेखा	औसत जोत	छोटे किसान	सिंचाई	चावल	गेहूं	कुल
	प्रतिशत	हेक्टेयर	प्रतिशत	% बुआई भूमि	खरीदी (10 लाख टन में)		
पंजाब	8.30	3.77	34.09	97.88	8.6	10.21	18.8
हरियाणा	11.20	2.25	67.59	82.06	1.7	6.35	8.0
मध्य प्रदेश	31.7	1.78	71.46	47.23	4.3	3.54	7.8
उत्तर प्रदेश	29.4	0.76	92.46	80.67	3.0	1.73	4.7
आंध्र प्रदेश	9.2	1.08	86.09	45.00	9.6	0.00	9.6
ओडिशा	32.6	1.04	91.86	27.42	2.5	0.00	2.5
पश्चिम बंगाल	20.0	0.77	95.93	59.21	1.3	0.00	1.3
तमिलनाडु	11.3	0.80	91.75	58.78	1.5	0.00	1.5
कुल भारत	**21.9**	**1.05**	**85.01**	**44.92**	**34.2**	**22.51**	**56.7**

स्रोत: कृषि मंत्रालय (विविध), कृषि मंत्रालय (बेवसाइट), कृषि मंत्रालय (2013)

लिए राज्य की ओर से योजना बनायी जानी चाहिए और फिर भी एक क्षण के लिए यदि निजी क्षेत्र थोड़े बहुत मुनाफे के साथ इसी कार्य को करने के लिए तैयार हो तो भी, थोड़ा बहुत भरोसा है कि बाजार निर्धारित मूल्य जो उत्पादन, वितरण तथा स्वीकार्य मुनाफे को ध्यान में रखकर तय होता है, सबके लिए सहय हो सकता है।

घर-घर के स्तर पर पहुंच की समस्या को शिक्षा, जागरूकता, लिंगभेद के प्रति संवेदीकरण, स्वच्छता, (मनुष्य की भोजन पचाने की क्षमता उपयोग किये गये जल समेत कई अन्य वातावरणीय कारकों पर निर्भर करती है) और सशक्तीकरण के प्रयासों के जरिए दूर किया जा सकता है लेकिन राज्य लक्षित रूप से भौतिक खाद्यान्न वितरण के जरिए भी इस समस्या का सीधा सीधा समाधान खोजने का प्रयास कर रहा है, कई बार ये प्रयास कुछ अन्य लक्ष्यों जैसे मध्याह्न भोजन योजना,

फसल सुरक्षा बीमा, कृषि आय बीमा, मौसम बीमा, वायदा कारोबार आदि से संबंधित प्रयोग काफी समय से हो रहे हैं परंतु इनका कोई ठोस परिणाम नहीं निकल रहा है। दीर्घायु एवं विश्वसनीय विकल्प उपलब्ध नहीं होने के कारण मौजूदा सार्वजनिक खरीद प्रणाली को सुधारना कठिन हो सकता है।

समेकित बाल विकास योजना और अन्नपूर्णा अन्न योजना आदि में भी अंतर्निहित होते हैं। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली समेत सभी लक्षित कार्यक्रमों का उद्देश्य बजटीय बोझ कम रखते हुए और अवैध रास्तों से लग रही सेंध को रोकते हुए समाज के सबसे कमजोर तबकों के खाद्य सुरक्षा की रक्षा करना है। भ्रष्टाचार कम करने तथा नये तरह के कदाचारों को रोकने के लागू संशोधनों की सफलता की समीक्षा अभी बाकी है। जहां गरीबों का पेट भरने के नाम पर खाद्यान्न की गलत निकासी का संदेह बरकरार है, ठोस विवरण के साथ कहा जा सकता है कि इन योजनाओं का फायदा पाने वाले सभी कथित गरीबी रेखा के ऊपर नहीं हैं, और इन्हें मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की जरूरत है। *राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए)* एक बार वितरण के सार्वत्रिकीकरण के जरिए अब चक्र को पूरा करता है और सच कहें तो सरकार को इस काम के लिए कानूनी रूप से बाध्य करता है।

हालांकि *एनएफएसए* लागू किये जाने के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है फिर भी इसको लागू किये जाने के बाद राजनीतिक और आर्थिक रूप से अस्थिरता रही (द्रेज और सेन, 10)। कानून को व्यवहार्य बनाने के लिए अधिक केन्द्रित लक्ष्य तथा उनकी वंचितता की तीव्रता की पहचान किये जाने की भी जरूरत है जिनसे लक्षित जन वितरण प्रणाली जैसी ही समस्याएं पैदा हुईं (ईपीडब्ल्यू 2011, 2013$_{बी}$)। कृषि विषयक संधि की तारतम्यता में खाद्य असुरक्षा की परिभाषा के लिए एक गरीबी रेखा चिह्नित किये जाने की आवश्यकता है जो कि एक जटिल प्रक्रिया है और इसका समाधान खोजा जाना शेष है।

सबसे बड़ी चुनौती थी रियायतों पर कृषि विषयक संधि के अनुकूल विधेयक तैयार करना। वर्ष 2013 में लागू अधिनियम में प्राथमिक समूह और अन्त्योदय समूह आदि के लाभार्थियों को सर्वोच्च अधिकारिता दी गयी है और इन्हें पूरा करने के लिए राज्य के पास हमेशा सुरक्षित खाद्यान्न भंडारण की आवश्यकता होगी।

आखिर में यह भी देखना महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य पर्याप्तता की आवश्यकता को अब भी दरकिनार नहीं किया जा सकता है। यह सच है कि हरित क्रांति के फलस्वरूप देश में फसलोत्पादन में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई और इससे देश में अतिरिक्त अन्नभंडार बना तथा आयात में कमी की संभावना बनने के साथ खाद्य निर्यात को भी बढ़ावा मिला। वास्तव में भारत ने 2012-13 में एक करोड़ टन चावल और 60 लाख टन गेहूं का निर्यात किया है। हालांकि, याद रखना जरूरी है कि यह सफलता मौजूदा न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति के तहत ही मिली है जिसमें किसानों को गिरती कीमतों से सुरक्षा मिलती है। अधिकांश किसान निर्धन हैं और परिणामत: उनके निरुत्साह होने का जोखिम बना रहता है, इसलिए रियायतें आवश्यक हो जाती हैं। फसल सुरक्षा बीमा, कृषि आय बीमा, मौसम बीमा, वायदा कारोबार आदि से संबंधित प्रयोग काफी समय से हो रहे हैं परंतु इनका कोई ठोस परिणाम नहीं निकल रहा है। दीर्घायु एवं विश्वसनीय विकल्प उपलब्ध नहीं होने के कारण मौजूदा सार्वजनिक खरीद प्रणाली को सुधारना कठिन हो सकता है।

इसके बाद भी मौसम की अनिश्चितता का भय सताता है। पिछले कुछ दशकों में प्रकृति देश में काफी अनुकूल हुई है लेकिन बीते अनुभवों के आधार पर अनिश्चितता को नकार देना तो संभव नहीं है और लगातार खराब मॉनसून की आशंका जतायी ही जा सकती है। एशियाई मॉनसून अपने सर्वाधिक दुष्प्रभावों में जलवायु परिवर्तन प्रतिकूल वृष्टि के माध्यम से न केवल मात्रात्मक रूप से कृषि पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है बल्कि मौसमी वितरण को भी प्रभावित कर सकता है। कोई यह तर्क दे सकता है कि आयात की गुंजाईश रहने की दशा में खाद्य सुरक्षा केवल खाद्यान्न पर्याप्तता नहीं है बल्कि यदि दूसरे उत्पादक देशों में भी अगर ऐसे ही हालात रहते हैं तो व्यापार से ही थोड़ी बहुत मदद मिल सकेगी।

यह सब ज्ञात होने पर कि भारत एक राष्ट्र के तौर पर एकल बाजार नहीं के बराबर है, व्यवसायियों के अपने व्यापारिक हित हैं, बहुत

विकास पथ पर जाने को तत्पर भारत के आधुनिकीकरण में नये मुद्दे तलाशे जा सकते हैं और डब्ल्यूटीओ में भारत के रुख की समीक्षा की जा सकती है। हाल की कुछ गतिविधियां उपरोक्त स्पष्टीकरण की व्यावहारिक सार्थकता की समीक्षा में मदद कर सकती हैं।

से उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति कमजोर है, राज्यों में परिवहन अपनी क्षमता से बहुत कम परिणाम दे रहा है, राज्य समर्थित वितरण का महत्व पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है। ये सभी तथ्य अनाज के भंडारण और वितरण को आवश्यक बनाते हैं जिसके लिए सबसे पहले खरीद की जरूरत होगी। खाद्य सुरक्षा को सामाजिक हित माना जाना चाहिए और इसे पूर्णत: बाजार के भरोसे नहीं छोड़ा जाना चाहिए। डब्ल्यूटीओ की सीमाओं से परे जाकर इस उद्देश्य के लिए सामाजिक संसाधनों के प्रयोग को न्यायोचित माना जाना चाहिए।

सरकार नरमी क्यों बरत सकती है

उपर्युक्त तर्क जो सरकार के नकारात्मक रुख का समर्थन करते हैं, इनमें कुछ नया नहीं है। गरीबी, छोटे तथा कमजोर किसान, कृषि क्षेत्र से कम प्रतिफल, मॉनसून और आय की अनिश्चितता, रोजगार व परिवहन सुविधाओं में

कमी आदि पुरानी बाधाएं हैं। विकास पथ पर जाने को तत्पर भारत के आधुनिकीकरण में नये मुद्दे तलाशे जा सकते हैं और डब्ल्यूटीओ में भारत के रुख की समीक्षा की जा सकती है। हाल की कुछ गतिविधियां उपर्युक्त स्पष्टीकरण की व्यावहारिक सार्थकता की समीक्षा में मदद कर सकती हैं।

खाद्य सुरक्षा के संदर्भ में खाद्य की परंपरागत विशिष्टता पहली बात है जो दिमाग में आती है। जब संक्रामकता, आपदा और जीवन-शैली जैसे लक्षणों से संबंधित खाद्य संबंधी रोग ही चर्चा का केन्द्र बिन्दु बने हों, खाद्य की परिभाषा को विस्तार देने की जरूरत आ जाती है और फिर इसे ऊर्जा देने वाले अन्नों से लेकर फलों, सब्जियों, दालों, दूध, पशु उत्पाद आदि तक की सीमाओं से परे जाकर देखा जाना चाहिए। खाद्य की एक नयी और सार्थक परिभाषा हो सकती है अन्य पोषक तत्वों तथा खाद्य उपभोग में संरक्षा की महत्ता को ध्यान में रखना। एक खास प्रौद्योगिकी की सफलता, विभेदकारी न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति और बागवानी उत्पादों के राष्ट्रीय स्वरूप के बजाय उनका अव्यावसायिक स्वरूप आदि के कारण भारतीय खाद्य शैली में कुछ विशिष्ट अन्नों की प्राथमिकता कमतर आंकी गयी, (यहां तक कि पोषक माने जाने वाले कई खाद्यान्न भी खाद्य नीति के कारण सामान्य खाद्य प्रथाओं से बाहर हो गये)।

इस दिशा में कई बार सार्वजनिक प्रयास भी किये गये (भाविष्कार, 2010 एवं स्वामीनाथन 1997)। उपभोग आंकड़े स्पष्ट बता रहे हैं कि खाद्य प्राथमिकताएं अब बदल रही हैं (राधाकृष्णन एवं रवि, 1992) तथा यह उन दो प्रमुख खाद्यान्नों से दूर हो रही हैं जिन पर हमारी खाद्य नीति आधारित है। इस पृष्ठभूमि में खाद्य सुरक्षा चिंता को आधार बनाकर केवल दो खास खाद्यान्नों के अतिभंडारण की होड़ निश्चित रूप से संदेहास्पद मालूम पड़ती है।

अबाध खरीद और भंडारण के विरुद्ध एक अन्य तर्क मूल्यवान संसाधनों का ह्रास है। हालांकि खाद्यान्न वितरण में लगे लाभकेन्द्रित व्यवसायी अपनी उचित हिस्सेदारी पाने का हक रखते हैं। इस संदर्भ में यह स्वीकार करना उचित होगा कि सरकार ने प्रतिस्पर्धा का कोई उच्च मानक नहीं रखा है। वर्ष 1995-96 और 2012-13 के बीच जनवरी में चावल और गेहूं के भंडार जनसंख्या के मुकाबले क्रमशः 3.2 प्रतिशत और 4.2 प्रतिशत अधिक तेजी से बढ़े। उस उत्पाद के सार्वजनिक भंडारण का विवरण आकृति 1 में दिया गया है। यद्यपि सुरक्षित अन्न भंडार 2003-04 और 2008-09 में निचले स्तर पर रहे जिसके कारण सूखाग्रस्त वर्ष 2002-03 में छह करोड़ टन का भंडार घटाने पर मजबूर होना पड़ा लेकिन 2009-10 से इस भंडारण में वृद्धि हुई और 2013-14 में यह छह करोड 70 लाख टन के स्तर पर पहुंच गया। यह भंडार बफर मानकों के परे जाने की भी संभावना बनी और एक लीन ईयर की प्रतीक्षा की प्रक्रिया या कमजोर क्षेत्रों तक पहुंचने के रास्ते में अन्न भंडार के क्षय की आशंका भी। यह नुकसान वास्तव में प्राकृतिक संसाधनों यथा जल, जंगल, गोचर भूमि, भूमि गुणवत्ता, जीवाश्म ईंधन और नदियों से लायी जलोढ़ आदि के अपक्षय के रूप में परिलक्षित होता है। भारत को यह सोचने की आवश्यकता है कि क्या वास्तव में ऐसे खर्चों की आवश्यकता है,?

तीसरा, इस बात पर हमेशा संदेह रहेगा कि मौजूदा त्रुटिपूर्ण रियायतें वास्तव में गरीबों और छोटे किसानों को समर्पित हैं। जहां कृषिगत रियायतें बहुत हद तक छोटे किसानों तक पहुंचती है क्योंकि लगभग 80 प्रतिशत किसान परिवार इसका लाभ लेते हैं वहीं खरीदी की प्रक्रिया न्यूनतम समर्थन मूल्य तय होने के कारण एक निर्बाध प्रक्रिया होती है, कुछ राज्यों में तो यह बहुत लाभकारी दिखती है तो वहीं कुछ में बिल्कुल नहीं। हालांकि सकारात्मक पक्ष देखें तो हाल में ओडिशा और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ अपारंपरिक राज्यों ने जहां खाद्यान्न भंडारण में बड़ा योगदान दिया है वहीं पंजाब, हरियाणा तथा आंध्र प्रदेश अब तक अपना हिस्सा मजबूती से बनाये हुए हैं (तालिका 1 देखें)। निश्चित खरीदारी का फायदा गरीबी या जोतों के आकार से कहीं अधिक भौगोलिक उपलाभों और शुरुआती पूंजी से संबद्ध है।

असमान उत्पादन क्षमता तथा निम्न खरीद क्षमता वाले इस विशाल देश में खाद्यान्न के वितरण में कठिनाइयां तथा उपभोक्ताओं के बहुसंख्य धड़े की क्रय शक्ति कमजोर होने से घर-घर तक पहुंच बनाने में मुश्किल आती है।

दिलचस्प बात है कि कुछ राज्यों के पास उनका अपना ही उत्पाद खरीदने का स्वाभाविक लाभ है, जबकि उनमें से कुछ के उपभोक्ता की प्राथमिकता को पूरा कर पाने और आगामी समय में पोषण उपलब्ध कराने की संभावना है। इस बदलाव में काफी अनिश्चितताएं हैं और इस कारण बहुत अधिक संभावना है कि किसान अपने ही हितों को अनदेखा कर दो लाभदायक फसलों की ओर झुकें। कम जल उपलब्धता के स्वाभाविक नुकसान और स्थानीय खाद्य शैली के विपरीत होने के बावजूद पंजाब में चावल उत्पादन के प्रति किसानों का आकर्षण इसका उदाहरण है। कई लोगों का मानना है कि मौजूदा नीति के लागू रहने की हालत में स्वाभाविक लाभों को बनाये रखने के साथ वैकल्पिक कृषि गतिविधियों की ओर बदलाव पूरी तरह महसूस नहीं किया जा सकता है। साथ ही, बागवानी उत्पादों की लगातार बढती कीमतें भी इस दिशा में नुकसान ही करेंगी।

संतुलन की दरकार

मौजूदा खरीद नीति के समर्थन और विरोध दोनों में तर्क उपलब्ध होने के बावजूद यह निर्विवाद है कि सरकार के लिए कोई भी विकल्प चुनना चुनौतीपूर्ण होगा। यहां तक कि आजादी के बाद लगभग सात दशक के नियोजित विकास और डब्ल्यूटीओ समझौते पर हस्ताक्षर के लगभग दो दशक बीत जाने के बाद भी वैश्विक तथा स्वतंत्र बाजार में भारत की उपस्थिति पुरातन बाधाओं के कारण दुरूह होती जा रही है।

इस मसले पर नयी सरकार के पास भी ज्यादा उदार होने की बहुत कम गुंजाइश रह जाती है क्योंकि ऐसा करने पर कीमतें अस्वीकार्य स्तर तक उछलेंगी और इसका अनुपालन नहीं होने की स्थिति अमर्यादित होगी तथा उससे किसी भी हालत में बचना होगा। इस आशंका का बड़ा आधार *एनएफएसए* है जिस पर सरकार पहले ही सहमति दे चुकी है। इस बात के संकेत हैं लेकिन कोई निश्चितता नहीं है कि इसके लागू होने पर पहले के मुकाबले अधिक बड़े पैमाने पर खरीदी की आवश्यकता नहीं होगी। पहले ही सात करोड़ 20 लाख टन खाद्यान्न खरीदा जा रहा है जो कुल उत्पादन का 36 प्रतिशत है। जब तक नयी रियायत गणना के लिए कोई फार्मूला नहीं तैयार हो जाता है, रियायतों में वृद्धि पर प्रतिबंधों का उल्लंघन हो सकता है (नारायणन, 2013)। डब्ल्यूटीओ के अलावा, खाद्य सुरक्षा के लिए सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों को हासिल करना भी भारत की एक अन्य अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता है।

(शेषांश पृष्ठ 60 पर)

स्वावलंबन का सहज पथ

चैतन्य प्रकाश

समूचे देश के विकास में असंगठित क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसे कमतर आंकना न केवल भूल है, बल्कि अन्याय भी है। व्यवस्था के दोनों प्रमुख पक्षों शासन और समाज को इस क्षेत्र के प्रति सहयोग, समर्थन और सौजन्य विकसित करना होगा, साथ ही समादर और अनुग्रह की अनुभूति को भी अभिव्यक्त करना होगा। स्वावलंबी, स्वतंत्र, स्वायत्त, स्वपोषित, सृजनशील, सहयोगशील और अनुग्रहशील मनुष्यता के निर्माण के लक्ष्य का सहज पाठ विकेंद्रित क्षेत्र का स्वाभाविक विकास हो सकता है। इस क्षेत्र के भीतर और बाहर इस दृष्टि का उन्मेष आवश्यक है

विकेन्द्रीकरण और लोकतन्त्र बहुत गहरे में एक दूसरे के पर्याय मालूम पड़ते हैं। इन दोनों की सैद्धांतिकता बेहद आकर्षक है, मगर इनका व्यवहार न केवल कठिन बल्कि इतना जटिल है कि कभी अव्यवाहारिक तो कभी असंभव- सा जान पड़ता है। इसलिए दुनियाभर की अब तक ज्ञात शासन प्रणालियों में लोकतन्त्र को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले तमाम चिंतकों, विचारकों, लेखकों, नेताओं, शासकों, प्रशासकों, नीति-निर्माताओं, संगठकों, आंदोलनकारियों की भाषिक अभिव्यक्तियां लोकतन्त्र की अवधारणा को पुष्ट करती प्रतीत होती हैं, मगर उनके जीवन और व्यवहार में लोकतन्त्र के शीर्षासन के अनेक उदाहरणों की प्रचुरता दिखाई देती है। वस्तुत: शासन या व्यवस्था मात्र की आवश्यकता की पृष्ठभूमि को यदि ठीक से जांचा जाए तो इसमें नियंत्रण की इच्छा का प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है। न्यूनतम शासन को श्रेष्ठ शासन कहने और मानने की अवधारणा अवश्य ही एक भद्रलौकिक आयाम रचती है, पर शुद्ध व्यवहार के तल पर तो शासन या व्यवस्था का केन्द्रीयता और नियंत्रण से मुक्त होना 'अराजक' होने का पर्याय लगने लगता है।

भारत जैसे बड़ी जनसंख्या वाले देश में जहां अब राजनीति भौतिक विकास के नारों और इरादों की पहचान, पहुंच और पकड़ के इर्द गिर्द घूम रही हो, वहां असंगठित क्षेत्र के मुद्दों पर चिंतन करना कभी-कभी व्यवस्था और अराजकता के बीच की भूलभुलैया में भटकने जैसी किताबी कवायद लगने लगता है। चिंतन की आदर्शोन्मुखता, अराजकता को और व्यवहारिकता, व्यवस्था में निहित केन्द्रीयता और नियंत्रण प्रवृत्ति को पोषित करती प्रतीत होती है। दोनों ही छोरों की ओर झुकना इस क्षेत्र के मूल चिंतन को भटका देने जैसा हो जाता है, इसलिए इस लेख में केन्द्रीयता और अराजकता की अतियों से इतर एक सुगम पथ के रूप में इस क्षेत्र के विकास को लोकतन्त्र की मूल आकांक्षा के संदर्भ से समझने की चेष्टा की जा रही है। भारत में असंगठित क्षेत्र की समस्याओं को एक समग्र अवलोकन की भांति चीन्हने से निम्नांकित बिन्दु उभरते हैं:

अशिक्षा: भारत का समूचा असंगठित क्षेत्र अशिक्षा के अभिशाप से ग्रस्त है। सामान्य मजदूर से लेकर भवन निर्माण में लगे राजमिस्त्री तक, रेहड़ी, पटरी वाले से लेकर मोटर मैकेनिक, बिजली मैकेनिक, प्लंबर, और घरों में काम करने वाली मेड तक, रिक्शा चलाने वाले से लेकर चौपहिया वाहन चलाने वाले ड्राईवर तक सभी कमोबेश शिक्षा के अभाव या अधूरेपन की कुंठा से ग्रस्त होकर ही मानो इन सब कामों को एक मजबूरी की तरह करने का भाव लिए जीते हैं और शिक्षा की रोशनी को सदैव अपने व्यक्ति जीवन या कर्मक्षेत्र से बहुत दूर पाते हैं।

गरीबी: असंगठित क्षेत्र सामान्यतया श्रम -प्रधान क्षेत्र है, परंतु यहां श्रम की अधिकता के बावजूद गरीबी एक कटु वास्तविकता है। इस क्षेत्र के विविध कामों की आवश्यकता, उपादेयता, अनिवार्यता और अपरिहार्यता में निरंतर वृद्धि होने के साथ श्रम और धन के संतुलन में भी कुछ अंतर अवश्य आता है, पर अनेकानेक कारणों से गरीबी बनी रहती है।

हीनता-बोध: असंगठित क्षेत्र का कर्मी सामान्यतया अशिक्षित और तुलनात्मक रूप से

लेखक जापान के ओसाका विश्वविद्यालय में विशिष्ट नियुक्ति पर असोसिएट प्रोफेसर हैं। मीडिया एशिया के लिए शोधपत्र 'भूमंडलीकरण एवं अंतर्राष्ट्रीयकरण स्थापित अवधारणाओं में बदलाव की जरूरत' प्रकाशित। समसामयिक विषयों पर लेखों का संग्रह 'विषयांतर' सुमेधा बुक्स से प्रकाशित। ईमेल: chaitanyapra@gmail.com

गरीब होने के कारण और अपने कार्यक्षेत्र के प्रति समाज के दृष्टिकोण के कारण सदैव हीनता बोध से दबा हुआ दिखाई पड़ता है। यह हीनता बोध इस क्षेत्र के विविध कार्यों में लगे अनेक कुशल और सक्षम व्यक्तियों को व्यक्तिगत, सामाजिक तौर पर कुंठाग्रस्त कर देता है।

असुरक्षा: इस क्षेत्र का एक सामान्य लक्षण यह है कि यहां हर स्तर पर असुरक्षा का माहौल है। काम मिलने या न मिलने की अनिश्चितता से लेकर काम के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं के खतरों तक, आर्थिक दबावों के कारण बनी रहने वाली आर्थिक असुरक्षा से लेकर सामाजिक तौर पर दुर्बल होने के कारण निरंतर महसूस होने वाली सामाजिक असुरक्षा के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति अनवधान और अज्ञान के कारण बढ़ती रुग्णता या दुर्बलता तक, असुरक्षा हर पल मानो इस क्षेत्र को घेरे रहती है।

प्रशिक्षणात्मक व्यवस्था का अभाव: इस क्षेत्र के विविध कार्य ऐसे हैं, जहां प्रशिक्षण की व्यवस्था की आवश्यकता ही महसूस नहीं की जाती है। अनुकरण या अभ्यास के आधार पर मनमाने तरीके से कार्य करते रहने की प्रवृत्ति है। इसी कारण उन कार्यों का व्यवस्थित व्यावसायिक स्वरूप विकसित होना कठिन होता चला जाता है।

यथास्थितिवाद: इस क्षेत्र के विविध रोजगारपरक आयामों में गुणवत्ता के स्तर पर यथास्थितिवाद दिखाई पड़ता है। प्रयोगशीलता और नवीनता की कमी के कारण उन आयामों की व्यावसायिक संभावनाएं क्षीण होती जाती हैं।

वैचारिक अपरिपक्वता: इस क्षेत्र के अंतर्गत गिने जा सकने वाले अनेक आयामों में लगे व्यक्तियों में अशिक्षा और परिवेशगत न्यूनताओं के कारण वैचारिक अपरिपक्वता दिखाई पड़ती है, इसलिए इनमें अपने व्यवसाय को व्यापक उद्देश्य के साथ जोड़ पाने की क्षमता विकसित नहीं हो पाती है। अनेक प्रकार की सामाजिक रूढ़ियों में जकड़े, अंधविश्वासी और दकियानूस हो जाने की नियति को भोगते समाज का हिस्सा बने ऐसे कर्मी अपने कार्य को युगानुकूल आवश्यकताओं और बदलावों के परिप्रेक्ष्य में समझने और बढ़ाने में सक्षम नहीं हो पाते हैं।

परिवेशगत, व्यक्तिगत, नैतिक दुर्बलताएं: इस क्षेत्र की एक व्याधि यह भी कि कभी-कभी इस क्षेत्र के कर्मियों में धूम्रपान, मद्यपान और अन्य नशे की आदतों के साथ - साथ अन्य व्यक्तिगत, नैतिक और परिवेशगत दुर्बलताएं उत्पन्न हो जाती हैं, परिणामस्वरूप कार्यक्षेत्र के प्रति प्रतिबद्धता में कमी आनी प्रारम्भ हो जाती हैं, इसके अतिरिक्त अनुशासन, व्यवहारगत कौशल एवं विश्वसनीयता के तल पर उन्नयन की संभावनाएं खो जाती हैं।

व्यवस्थागत बाधाएं: इस क्षेत्र के प्रति शासन और समाज दोनों ही न केवल उदासीन नज़र आते हैं, बल्कि इस क्षेत्र के विविध आयामों के प्रति सरकार और समाज के विभिन्न व्यक्तियों का रवैया बाधाएं उत्पन्न करने वाला तथा इस क्षेत्र को हीन मानने और कमतर सिद्ध करने वाला होता है। इस क्षेत्र के विविध रोजगारों के प्रति यह रवैया इन रोजगारों के प्रोत्साहन और विकास की संभावनाओं को तो धूमिल करता ही है, साथ ही कर्म, कौशल और श्रम की गरिमा को भी नष्ट करता है। शासन और समाज का यह व्यवहार एक सामंती परिवेश की खुमारी का प्रतीक बनकर श्रम और कौशल के बूते पर आजीविका कमाने की कोशिश करने वाले एक बड़े वर्ग के स्वत्व को निरंतर ठेस पहुंचाने जैसा नज़र आता है।

क्या असंगठित क्षेत्र की समस्याओं के समाधान के लिए इस क्षेत्र को संगठित कर या नियंत्रित, केंद्रीकृत कर देना ही एकमात्र विकल्प है, जो बिना किसी बड़े उद्देश्य, प्रेरणा और लक्ष्य के छोटे-बड़े पैमाने पर बाज़ार शायद कर ही रहा है या इस क्षेत्र के असंगठित बने रहने में निहित स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखते हुए इसके विकास के लिए कोई भावी प्रारूप प्रस्तुत किया जा सकता है?

दृष्टिशून्यता: समूचा असंगठित क्षेत्र दृष्टिशून्यता से ग्रस्त है। विविध रोजगारों, व्यवसायों के विस्तार और विकास के प्रति, इनमें लगे व्यक्तियों और समूहों के प्रति, इनसे जुड़ी सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं के प्रति स्पष्ट और गहन चिंतन का अभाव समाज के स्तर पर, शासन के स्तर पर और नीति-निर्माताओं, विचारकों, चिंतकों के स्तर पर एक लंबे समय से व्याप्त है। दृष्टिशून्यता का यह वातावरण स्वावलंबी एवं परिश्रमी समाज के निर्माण की प्रक्रिया को अवरुद्ध किए हुए है।

वी. एम. दांडेकर की अध्यक्षता वाली *'महाराष्ट्र में क्षेत्रीय असंतुलन पर तथ्यान्वेषण समिति'* की रिपोर्ट में पाया गया कि राज्य के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जो उपेक्षा के शिकार हुए हैं। कई बार तो जान-बूझकर उनके साथ भेदभाव किया गया। इस आधार पर रिपोर्ट में विकास के दो अलग-अलग रास्ते बताए गए हैं।

इसके अनुसार, आर्थिक विकास की चर्चा करते वक्त लोग अक्सर औसत बढ़ाने की बात करते हैं। यह औसत दो तरीके से बढ़ाया जा सकता है। इसका एक उपाय है सम्पन्न वर्ग को और सम्पन्न कर दिया जाए। दूसरा उपाय है निर्धन वर्ग को ऊपर उठाने का। विकास के यही दो वैकल्पिक उपाय हैं। अक्सर पहले उपाय को ही अपनाया जाता है। इसके पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि इससे औसत तेजी से बढ़ता है। संभव है ऐसा होता हो लेकिन इस प्रक्रिया में सम्पन्न और निर्धन के बीच की दूरी धीरे-धीरे इतनी बढ़ जाती है कि वह असहनीय हो जाती है। विशुद्ध आर्थिक अर्थ में कहा जाए तो किसी भी अर्थव्यवस्था में सम्पन्न और निर्धन में बड़ा अंतर विकास की संभावनाओं को सीमित कर देता है।

निर्धन को ऊपर उठाने का दूसरा विकल्प अपनाने से औसत भले ही धीरे-धीरे सुधरता हो परंतु यह विकल्प विकास की संभावनाओं को बड़ा आधार प्रदान करता है। भारत में क्षेत्रीय विषमता की समस्या बहुत पुरानी है। अत: निर्धन को ऊपर उठाने का विकल्प अपनाकर हम एक नई शुरुआत कर सकते हैं। (दोडेकर, 1984 / जोशी)

दांडेकर समिति की रिपोर्ट के इस सुझाव को यदि क्रियान्वयन के स्तर पर लिया जाए तो असंगठित क्षेत्र के विकास की संभावनाओं के द्वार स्वाभाविक रूप से खुल सकते हैं। रिपोर्ट में उल्लिखित दूसरा विकल्प असंगठित क्षेत्र के विकास और समुन्नयन के माध्यम से क्रियान्वित हो सकता है। असंगठित क्षेत्र का दृष्टियुक्त विकास भारत की निर्धन आबादी को सक्षम, सम्पन्न, स्वावलंबी और स्वाभिमानी बनाने का सर्वाधिक सहज मार्ग बन सकता है। इसके लिए इस क्षेत्र की समस्याओं का समाधान करना आवश्यक है।

पर, क्या असंगठित क्षेत्र की समस्याओं के समाधान के लिए इस क्षेत्र को संगठित कर या नियंत्रित कर, केंद्रीकृत कर देना ही एकमात्र विकल्प है, जो बिना किसी बड़े उद्देश्य, प्रेरणा

और लक्ष्य के छोटे-बड़े पैमाने पर बाज़ार शायद कर ही रहा है या इस क्षेत्र के असंगठित बने रहने में निहित स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखते हुए इस क्षेत्र के विकास के लिए कोई भावी प्रारूप प्रस्तुत किया जा सकता है? यह सच है कि इस क्षेत्र का असंगठित होना भी एक समस्या है, और शायद बहुत सारी समस्याओं का स्रोत भी है, मगर फिर भी केन्द्रीकरण का कोई भी प्रयास इस क्षेत्र की स्वतन्त्रता को ग्रस कर इस क्षेत्र के माध्यम से देखे जा सकने वाले व्यक्ति- व्यक्ति के स्वावलंबन के महास्वप्न का अंत करने वाला ही साबित होगा। इस क्षेत्र के असंगठित होने में विकेन्द्रीकरण और लोकतन्त्र के सच्चे स्वरूप की तलाश की संभावनाएं निहित हैं। इस क्षेत्र के असंगठित होने मात्र को एक नकारात्मक बिन्दु की भांति समझ कर इसे केंद्रीकृत करने की कोशिश बीज के खोल की कठोरता को खत्म कर देने के बहाने बीज को नष्ट कर देने जैसी मूढ़ता होगी। इसलिए यह आवश्यक है कि इसके विकेंद्रीकृत स्वरूप में ही इसकी समस्याओं का समाधान सोचा जाए। यह आलेख इस दिशा में एक पहल करते हुए निम्नांकित बिन्दु प्रस्तुत करता है:

शिक्षा: जन-जन के शिक्षित होने की आवश्यकता एक वैश्विक आवश्यकता है। शिक्षा केवल पाठ्यक्रम, परीक्षा और प्रमाणपत्रों के क्षुद्र लक्ष्यों में उलझी और जकड़ी हुई नहीं बल्कि वह जो व्यक्तियों और कामों को छोटा-बड़ा समझने की सदियों से चली आ रही मूढ़ता पर ठठाकर हंसने का माद्दा और माहौल दोनों एक साथ विकसित करे। ऐसी शिक्षा असंगठित अर्थात विकेंद्रित स्वावलंबन के लिए प्राणवायु साबित होगी।

श्रम और कौशल का उचित मूल्यांकन और सम्मान: भारत जैसे राजतंत्रीय और सामंती पृष्ठभूमि वाले देश में जहां 'बेगार' जैसी अपमानजनक और शोषक प्रथा वर्षों तक चलती रही। जहां शेखी और शान से इतराते राजमहलों और अट्टालिकाओं के पत्थरों के नीचे बेबस, लाचार श्रमिकों और कारीगरों के पसीने और लहू की बूंदें शोषण की दास्तानों की साक्षी होकर सूख गयी हों, वहां श्रम और कौशल के उचित मूल्यांकन और सम्मान की बात अब अतीत को बदल डालने जैसी क्रांतिकारी कोशिश होगी, मगर यह अब वक्त का तकाज़ा है। श्रम का उचित मूल्य ही असंगठित क्षेत्र की गरीबी को दूर करने का प्रामाणिक उपाय है।

रुचि, गति और सहजता: पिता के व्यवसाय से बेटे के जुड़ जाने की भारतीय परंपरागत सोच अब दुर्बल हो रही है। इसलिए नए वातावरण में, नई सोच के साथ अपनी रुचि, गति और सहजता से कार्यविशेष के साथ जुड़े ऊंच-नीच के पूर्वाग्रह से मुक्त होकर कर्म या व्यवसाय को अपनाने की ज़रूरत है। गीता में कृष्ण, अर्जुन से संवाद करते हुए सहज कर्म में संलग्न होने को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। भारत के युवक, युवतियां यदि मजबूरी, लोभ या बाहरी सम्मान और प्रभाव की इच्छा या आकर्षण के कारण बल्कि अपनी सहजता से अपना कर्मक्षेत्र चुनेंगे तो शायद असंगठित क्षेत्र में व्याप्त हीनता बोध समाप्त होकर कर्मजन्य संतुष्टि और आनंद उत्पन्न होगा।

सुरक्षा और संरक्षण की आवश्यकता: असंगठित या विकेंद्रित होने का अर्थ असुरक्षित, अनिश्चितता के दबाव से ग्रस्त, अव्यवस्थित होना बिलकुल नहीं है। ठीक-ठीक नियोजन, व्यवस्था उत्पन्न करते हुए सुरक्षा और संरक्षण के उपाय किए जा सकते हैं। शासन को भी इस क्षेत्र में सुरक्षा और संरक्षण के लिए नई योजनाएं बनाकर उनके सही क्रियान्वयन का प्रबंध करना चाहिए।

असंगठित क्षेत्र के विकास और समुन्नयन के माध्यम से क्रियान्वित हो सकता है। असंगठित क्षेत्र का दृष्टियुक्त विकास भारत की निर्धन आबादी को सक्षम, सम्पन्न, स्वावलंबी और स्वाभिमानी बनाने का सर्वाधिक सहज मार्ग बन सकता है। इसके लिए इस क्षेत्र की समस्याओं का समाधान करना आवश्यक है।

उचित और पूर्ण प्रशिक्षण की व्यवस्था: विविध कार्यों की कुशलता के उचित और पूर्ण प्रशिक्षण से समूचे समाज में कौशल-विकास का वातावरण उत्पन्न होगा। इसके लिए शासन की ओर से जारी प्रयासों को व्यापक और गहन किए जाने के साथ-साथ सामाजिक स्तर पर भी पहल और प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। बेरोजगारों की भीड़ वाले इस देश को हुनरमंद लोगों के देश में तब्दील करने के महती कार्य के लिए समाज को ही आगे आना चाहिए।

प्रयोगशीलता और प्रगतिशीलता: यथास्थितिवाद की घुटन में श्रम की सुगंध के फैलने और कौशल के रंगों के निखरने के अवसर समाप्तप्राय हो जाते हैं। यथास्थिति के घेरों को तोड़कर प्रयोगशीलता के आंगन में कुलांचे भरने वाला चित्त स्वत: ही प्रगतिशील हो जाता है। प्रयोगशीलता के वातावरण में विकेंद्रित क्षेत्र की व्यावसायिकता के नए संदर्भ और प्रतिमान विकसित होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। इस तरह से व्यावसायिक स्तर पर सफलता के भौतिक पैमानों को चीन्हन भी आसान हो सकता है।

वैचारिक परिपक्वता: असंगठित क्षेत्र लोकतांत्रिक समाज के पूरक आयाम की भांति समर्थ और कर्मठ व्यक्तियों की जाग्रत चेतना का केंद्र बन कर ही अपने महनीय लक्ष्य को पा सकता है। इसलिए इस क्षेत्र के कर्मियों को अपने व्यक्तित्व की रचना और संयोजना में परिपक्वता के स्तर तक जाना होगा। सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और दुराग्रहों के पार उदार और व्यापक चिंतन की भावभूमि तक उठना होगा। एक सहज और सहिष्णु चित्त के साथ कर्मरत व्यक्ति अपने समाज को अधिक प्रभावी रूप से योगदान दे सकता है।

सबल व्यक्तित्व: जाग्रत चेतना के व्यक्तित्व में परिवेशगत, नैतिक और व्यक्तिगत दुर्बलताओं का परवेश होना कठिन हो जाता है। असंगठित क्षेत्र की उन्नति के लिए आवश्यक है कि यहां संलग्न व्यक्ति अपनी आदतों के खोल में छिपी दुर्बलताओं को जीतकर सबल व्यक्तित्व के रूप में अपने कार्य, कार्यक्षमता और कौशल का विकास करें।

व्यवस्थागत सहयोग, समर्थन और सौजन्य: समूचे देश के विकास में असंगठित क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसे कमतर आंकना न केवल भूल है, बल्कि अन्याय भी है। व्यवस्था के दोनों प्रमुख पक्षों शासन और समाज को इस क्षेत्र के प्रति सहयोग, समर्थन और सौजन्य विकसित करना होगा, साथ ही समादर और अनुग्रह की अनुभूति को भी अभिव्यक्त करना होगा।

दृष्टि का उन्मेष: विकेंद्रित रोजगार का क्षेत्र ही वह क्षेत्र है जो भारत ही नहीं, बल्कि दुनिया में पूंजीवाद, औद्योगिकीकरण और व्यापारीकरण के कारण उपजी समस्याओं का उत्तर देने में सक्षम हो सकता है। व्यक्ति-व्यक्ति के हुनर से चलाने वाली सहयोगशील व्यवस्था ही दीर्घकालिक तौर पर कारगर हो सकती है। स्वावलंबी, स्वतंत्र, स्वायत्त, स्वपोषित, सृजनशील, सहयोगशील और अनुग्रहशील मनुष्यता के निर्माण

के लक्ष्य का सहज पाठ असंगठित क्षेत्र का स्वाभाविक विकास हो सकता है। इस क्षेत्र के भीतर और बाहर ऐसा उन्मेष आवश्यक है।

11 अप्रैल 1921 को महात्मा गांधी ने यंग इंडिया में लिखा था-'महान प्रकृति की इच्छा तो यही है कि हम अपनी रोटी पसीना बहाकर कमाएं। इसलिए जो आदमी अपना एक मिनट भी बेकारी में बिताता है, वह उस हद तक अपने पड़ोसियों पर बोझ बनता है। और ऐसा करना अहिंसा के पहले ही नियम का उल्लंघन करना है।'

गांधीजी की एक और टिप्पणी उल्लेखनीय है-'रोटी के लिए हर एक मनुष्य को मजदूरी करनी चाहिए, शरीर(कमर) को झुकाना चाहिए, यह ईश्वर का कानून है। यह मूल खोज टोल्स्टोय की नहीं है लेकिन उससे बहुत कम मशहूर रशियन लेखक टी.एम. बोन्दरेव्ह की है। टोल्स्टोय ने उसे रोशन किया और अपनाया। इसकी झांकी मेरी आंखें भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में करती हैं। यज्ञ किए बिना जो खाता है वह चोरी का अन्न खाता है, ऐसा कठिन शाप यज्ञ नहीं करने वालों को दिया जाता है। यहां यज्ञ का अर्थ जात-मेहनत या रोटी-मजदूरी ही शोभता है और मेरी राय में यही संभव है।

असंगठित क्षेत्र के विकास और उन्नयन की दिशा जन-जन को श्रमशील, रचनात्मक, आत्मनिर्भर और उत्पादक के रूप में विकसित होने देने के अवसरों की प्रचुरता के महती लक्ष्य की ओर जाती है। यह क्षेत्र यांत्रिकता की व्याधियों से मुक्ति की औषधि के रूप में भी उपयोगी है, परंतु वास्तव में स्वावलंबन का सहज पथ है। ❑

सन्दर्भ:

- **वी.एम. दांडेकर** समिति की रिपोर्ट 1984: पृ. 35-36
- **पूरन चन्द जोशी:** सांस्कृति, विकास और संचार क्रांति, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन दिल्ली, पृ. 241-242
- **मोहन दास करमचंद गांधी:** 1960, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन ट्रस्ट, पृ. 59-60.

(पृष्ठ 56 का शेषांश)

सबसे बढ़कर, किसी देश की नीति को बदल देना एक दीर्घकालिक और सुविचारित प्रक्रिया है और जनादेश के हिसाब से सत्ता बदलने के साथ ही संपूर्ण नीतिगत विचलन दुनिया में गलत संदेश प्रसारित करेगा।

दोनों पक्षों पर विचार करें तो, इस समय देश को कुछ खास परिस्थितियों में खुद से बनायी गयी नीतिगत स्थिति से उबारने के लिए चरणबद्ध रणनीति बनाने का बेहद उपयोगी मौका है। संघीय सहयोग के आधार पर आंतरिक मुक्त व्यापार को बढ़ावा और बेहतर अवसंरचना उपलब्ध करा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की बराबरी हासिल की जा सकती है। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई उल्लेखनीय प्रगति और आपदा प्रबंधन संबंधी ससमय चेतावनियों के प्रति बढ़ती जागरूकता को देखते हुए मौसम की अनिश्चिततओं की काट विकसित करना अब महज कपोल कल्पना नहीं कही जा सकती है। सबसे बढ़कर खेती का पारिश्रमिक अच्छा मिलना चाहिए और ऐसा केवल सक्षम बाजार एवं तार्किक उत्पाद विकल्पों के द्वारा ही संभव है। इसके अलावा, खुली (ओपन एंडेड) नीतियों के जरिए खरीदी और भंडारण में घरेलू स्तर एक गंभीर प्रबंधन समस्या उत्पन्न होने की आशंका है।

फिर भी लगातार खराब मॉनसून, वैश्विक उत्पाद घाटा, भूराजनीतिक दुर्घटनाओं, मुक्त व्यापार की विफलता और कई अन्य विपरीत बातों की दखल की कहीं न कहीं गुंजाइश रह जाती है और इनकी मौजूदगी की आशंका को नकारा नहीं जा सकता है। स्पष्टतया संक्रमण से गुजरती अर्थव्यवस्था में समय की मांग है कि संतुलित आहार तथा मुक्त विकल्पों के आधार पर पोषण सुरक्षा से तारतम्यता के साथ खाद्य सुरक्षा को लागू किया जाए। इससे सैद्धांतिक तौर पर न केवल प्रमुख खाद्यान्नों बल्कि अन्य खाद्य उत्पादों के भी अतिभंडारण की आवश्यकता होगी। यह उन उत्पादों के लिए खास तौर पर होगा जो शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के तौर पर फलों के रस, सांद्र उत्पाद और दुग्ध पाउडर आदि का भंडारण आवश्यक प्रौद्योगिकी की मदद से किया जा सकता है।

जहां जीबी का अंधाधुध प्रयोग पश्चिमी देशों में उनकी कृषि रियायतों का बचाव करने के लिए किया जाता है वहीं इसी आधार पर स्टॉक होल्डिंग के तर्क लगातार कमजोर पड़ते जा रहे हैं। रियायत प्राप्त खरीदी को न्यायोचित ठहराने के लिए न केवल अल्पकालिक तौर पर फार्मूले पर पुनर्विचार करना होगा बल्कि नीतियों का दायरा वास्तिक संसाधनहीन किसानों तक बढ़ाना होगा जिनकी पहचान वैज्ञानिक तौर पर किये जाने की आवश्यकता है।

मौजूदा स्थिति में पूर्वी क्षेत्रों में खरीदी गतिविधियां चलाने की रणनीति उचित होगी और इसे औसत जोत आकार के हिसाब से करना होगा (देखें तालिका 1) वहीं अन्य प्रदेशों को भी उनकी क्षमता के हिसाब से श्रेष्ठतम खाद्यान्न उत्पादन के काबिल बनाना होगा।

एक निश्चित बिन्दु पर आकर राज्य सभी लोगों को 'हर समय' 'पर्याप्त' एवं 'सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य' भोजन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से खुद की भूमिका केवल राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के बाजार उपलब्ध कराने और उसे नियंत्रित करने तक सीमित लेगा और केवल आपात स्थितियों एवं आवश्यक सुरक्षा सहयोग मामले में प्रत्यक्षत: शामिल होगा। इस तरह बनी जगह में निजी व्यापारियों का अनिवार्य सामाजिक दायित्व और समुचित मूल्य निर्धारण तथा भंडार एवं अंतरण की पारदर्शी रिपोर्टिंग का उत्तरदायित्व निर्धारित हो सकेगा। ❑

संदर्भ:

- **भाविष्कर, अमिता (2010):** खाद्य, कृषि पर्यावरण एवं खाद्य व्यवहार
- **ज्यां द्रेज एवं अमर्त्य कुमार सेन (1989):** भूख तथा जनपहल, क्लारेंडन प्रेस, यूके
- **इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (2011):** संपादकीय, वर्ष XLVIII अंक 51, 24 दिसंबर, पृ: 8.
- **इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (2013.):** संपादकीय, वर्ष XLVIII अंक 51, 21: दिसंबर, पृ: 8.
- **इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (2013ड):** संपादकीय दस्तावेज, वर्ष XLVIII अंक 49, 7 दिसंबर, पृ: 8.
- **घोष नीलाब्जा एवं बी गुहा खासनोबिस (2008):** (आईसीएसएसआर, यूएयू-वाइडर और विश्व कृषि संगठन द्वारा), ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस
- **कृषि मंत्रालय (2013):** कृषि सांख्यिकी पॉकेट बुक, भारत सरकार
- **कृषि मंत्रालय (विविध):** कृषि सांख्यिकी: एक नजर में, भारत सरकार
- **कृषि मंत्रालय (वेबसाइट):** http:ands.dacnet.nic.in. भारत सरकार
- **नारायणन, सुधा (2012):** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (2013ड), संपादकीय दस्तावेज, वर्ष XLIX अंक 5, 1 फरवरी, पृ: 40-46.
- **राधाकृष्णन आर एवं सी रवि (1992):** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (2013ड), विशेषांक 27, पृ: 303-323.
- **एम एस स्वामीनाथन (1997):** योजना, जनवरी
- **विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) की वेबसाइट:** http://www.wto.org/english/thewto_e/minist_e/mc9_e/brief_e.htm

असंगठित क्षेत्रः समस्याएं एवं कानूनी उपचार

अमित त्यागी

असंगठित क्षेत्र की समस्याएं अनंत हैं लेकिन ऐसा नहीं कि अगर समाधान तलाशने की कोशिश हो तो वह मिले नहीं। तमाम विधिक प्रावधानों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गयी व्यवस्थाओं ने इस दिशा में उम्मीद की लौ को जलाये रखा है। प्रस्तुत आलेख में ऐसे ही प्रावधानों की चर्चा की जा रही है जिनका प्रयोग कर असंगठित क्षेत्र के कामगार खुद को सुरक्षित व व्यवस्थित करने की दिशा में बढ़ सकते हैं और साथ ही अपने आसपास के माहौल को अधिक प्रभावोत्पादक बना सकते हैं

भारत के कुल श्रम बल का 93 प्रतिशत हिस्सा असंगठित क्षेत्र से है और भारत की जीडीपी मे असंगठित क्षेत्र का योगदान लगभग 60 प्रतिशत है। किसी भी देश की तरक्की और आर्थिक हालात को मापने का माध्यम जीडीपी है। जीडीपी का सीधा संबंध उत्पादकता से है। उत्पादकता श्रम शक्ति के द्वारा प्रवर्धित होती है। श्रम शक्ति दो प्रकार के क्षेत्रों में बांटी जाती है। एक संगठित क्षेत्र और एक असंगठित क्षेत्र। दोनों ही क्षेत्रों मे कौशल तथा विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस प्रकार कौशल तथा ज्ञान किसी भी देश के आर्थिक तथा सामाजिक विकास की महत्वपूर्ण शक्तियां हैं। जिन देशों ने अपने नागरिकों के कौशल के उच्चतर एवं बेहतर स्तर को प्राप्त किया है उन्होंने कार्यजगत की चुनौतियों तथा अवसरों का अधिक प्रभावी रूप से दोहन किया है।

संगठित क्षेत्र में कार्यरत मजदूर कौशल के साथ साथ बेहतर स्तर प्राप्त कर लेते हैं किन्तु असंगठित क्षेत्र में कार्यरत मजदूर कौशल होने के बावजूद बेहतर स्तर प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इस क्षेत्र के कामगार समस्याओं से घिरे हुए हैं और उनके हालात भी ज्यादा बेहतर नहीं हैं । हालांकि कुछ कानून भी मौजूद हैं फिर भी यदि पूर्ण रूप से देखा जाये तो असंगठित क्षेत्र में कार्यरत मजदूर बेहतर और अपेक्षित स्तर के आस पास भी नहीं हैं। बेहतर स्तर प्राप्त ना होने के दो प्रमुख कारक स्वास्थ्य एवं आवास हैं। ये दो ऐसे कारक हैं जिनमें असंगठित क्षेत्र के कामगार लोग संगठित क्षेत्र के कामगारों से एक बार इतना ज्यादा पिछड़ जाते हैं कि फिर ज़िंदगीभर पिछड़ते ही जाते हैं।

स्वास्थ्य समस्याएं

पूरे विश्व की जनसंख्या में भारत की जनसंख्या का हिस्सा 16.5 प्रतिशत है। इसमें भारत के श्रम बल का 93 प्रतिशत हिस्सा (आर्थिक सर्वेक्षण 2007-08) असंगठित क्षेत्र से आता है। इसमें से 20 प्रतिशत हिस्सा भारत में बीमार रहता है। इसका सीधा अर्थ है कि असंगठित क्षेत्र में स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं व्यापक हैं। दस्त, टीबी, सांस के रोग, कीटाणुओं/संक्रमणों से होने वाली बीमारियां, कुपोषण, मधुमेह और हृदय रोगों जैसी बीमारियों का एक बड़ा हिस्सा भारत में है। यहां तक कि एड्स के मामले में भारत दूसरे स्थान पर है (दक्षिण अफ्रीका के बाद)। अधिकतर बीमारियां आस पास के माहौल, दूषित जल एवं बचाव की अज्ञानता के कारण हैं।

आवास समस्याएं

असंगठित क्षेत्र से संबन्धित एक और बात विचारयोग्य है कि असंगठित क्षेत्र के लोग उन क्षेत्रों में अधिक निवास करते हैं जो औद्योगिक इकाइयों से दूर हैं। इनमें से अधिकतर शहरी क्षेत्र नहीं हैं। 12वीं पंचवर्षीय योजना में शहरी आवास की कमी पर तकनीकी ग्रुप की एक रिपोर्ट के अनुसार शहरी इलाकों में 1.88 करोड़ और ग्रामीण इलाकों में 4.37 करोड़ आवास इकाइयों का अभाव है। गांवों में निवास करने वाली जनता जो बीपीएल से संबन्धित है उसके लिए यह कमी 3.93 करोड़ इकाइयों की थी। ये आंकड़े बताते हैं कि असंगठित क्षेत्र के कामगारों के लिए आवास एक बड़ी समस्या है।

लेखक पेशे से अधिवक्ता हैं। विधि संबंधी विषयों पर हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में विशेषज्ञ के तौर पर नियमित लिखते रहते हैं। 'अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार के भारतीय सन्दर्भ' विषयक शोधपत्र में इन्होंने असंगठित क्षेत्र से जुड़े संवेदनशील विषयों जैसे बाल-विवाह, गरीबी, चिकित्सा सुविधाओं आदि को चिह्नित किया है। ईमेल: amittyagi219@rediffmail.com

इसके अतिरिक्त, असंगठित क्षेत्र से जुड़े लोगों की अन्य समस्याओं में शिक्षा, रोजगार, पेंशन और खाद्य सुरक्षा जैसी मूलभूत सुविधाएं प्रमुख हैं। कुछ आंकड़े इन हालात को बयान करते हैं। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के बावजूद 2009-10 में 60 फीसदी हिस्सा (15-24 आयु वर्ग में) किसी भी प्रकार की शिक्षा से वंचित था। शिक्षा के क्षेत्र में कमी का सीधा प्रभाव संबन्धित लोगों के रोजगार के अवसरों पर भी पड़ता है। मनरेगा के द्वारा बेरोजगारी के आंकड़ों में कुछ राहत तो मिली है, पर आंकड़े बताते हैं कि करीब 19 प्रतिशत लोगों को काम मांगने के बावजूद मनरेगा में काम नहीं मिला। गौरतलब है कि मनरेगा के द्वारा काम की अपेक्षा रखने वाला असंगठित समूह, समाज का सबसे वंचित तबका है।

असंगठित क्षेत्र से जुड़े लोगों के भविष्य को सुरक्षित करने की दिशा में सरकारी स्तर पर कुछ प्रयास भी हो रहे हैं। इसके लिए भविष्य में असंगठित क्षेत्र के समूहों को सामाजिक सुरक्षा देने के लिए एनएसएपी (नेशनल सोशल असिस्टेंट प्रोग्राम) टास्कफोर्स की रिपोर्ट ने संबन्धित लोगों को 2016-2017 तक पेंशन के दायरे में लाने की सिफारिश की है, जो राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के अंतर्गत शामिल किये जायेंगे। इसके साथ-साथ असंगठित क्षेत्र के लिए एक सह-अंशदायी पेंशन योजना का प्रावधान है जिसका उद्देश्य असंगठित क्षेत्र के लोगों को स्वेच्छा से अपनी सेवानिवृत्ति के लिए बचाने के लिए प्रोत्साहित करना है। पेंशन कोष नियामक एवं विकास प्राधिकरण-वित्त मंत्रालय के अंतर्गत आने वाला (पीएफआरडीए) एक ऐसा संगठन है जिसकी स्थापना विकास और पेंशन फंड के विनियमन द्वारा वृद्धावस्था आय सुरक्षा को बढ़ावा देने, पेंशन फंड की योजनाओं और इससे जुड़े या आकस्मिक मामलों में ग्राहकों के हितों की रक्षा करने के लिए की गई है। राष्ट्रीय पेंशन प्रणाली (एनपीएस) के अंतर्गत भी असंगठित क्षेत्र के लिए कई सरकारी योजनाएं संचालित होती हैं।

असंगठित क्षेत्र से जुड़े लोगों के भविष्य को सुरक्षित करने की दिशा में सरकारी स्तर पर कुछ प्रयास भी हो रहे हैं। इसके लिए भविष्य में असंगठित क्षेत्र के समूहों को सामाजिक सुरक्षा देने के लिए एनएसएपी (नेशनल सोशल असिस्टेंट प्रोग्राम) टास्कफोर्स की रिपोर्ट ने संबन्धित लोगों को 2016-2017 तक पेंशन के दायरे में लाने की सिफारिश की है, जो राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के अंतर्गत शामिल किये जायेंगे।

संविधान के अनुच्छेद-23 एवं 24 भारतीय नागरिकों को शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान करते हैं किन्तु इसके बावजूद असंगठित क्षेत्र के कामगारों का जाने अनजाने शोषण हो ही जाता है। इस संदर्भ में 2006 की अर्जुन सेनगुप्ता कमिटी की रिपोर्ट का उल्लेख समीचीन होगा। इस रिपोर्ट के कुछ आंकड़ों के अनुसार, तकरीबन 37 करोड़ लोग (कामकाजी लोगों की संख्या का 85 फीसदी) असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं। इनमें औरतों की संख्या लगभग 12 करोड़ है। कुल श्रमशक्ति के 28 करोड़ लोग ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत हैं, जिनमें लगभग 22 करोड़ सिर्फ कृषि से जुड़े हैं। कुल महिला श्रमिकों में लगभग आठ करोड़ कृषि-संबंधी कार्यों में संलग्न हैं। चूंकि बाल श्रम सस्ते में उपलब्ध हो जाता है इसलिए कानूनी बन्दिशें होने के बावजूद व्यावहारिक तौर पर जमीनी स्तर पर बाल मजदूरों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। उदारीकरण की नीतियों ने पिछले दशकों में अकुशल ग्रामीण श्रमिकों, औरतों व बच्चों को एक हद से ज्यादा शोषित किया है। ये लोग बगैर किसी सामाजिक सुरक्षा के काम करते हैं (*अर्जुन सेनगुप्ता कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार 2006 में सिर्फ छह प्रतिशत लोग ही किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा के दायरे में आते थे*)। इन्हें न तो स्वास्थ्य आदि की सुविधाएं मिलती हैं और न ही काम पर न जा पाने की अवस्था में किसी तरह की आमदनी। असंगठित क्षेत्रों के कामगारों को सामाजिक सुरक्षा ना मिल पाने के पीछे एक पेचीदगी भी है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की सिफारिशों के बावजूद भारत में अधिकार सुनिश्चित करने वाली सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में ऐसे प्रावधान हैं, जिनमें श्रमिकों को राज्य विशेष का निवासी होना जरूरी होता है जबकि अधिकतर श्रमिक रोजगार के लिए अपने गृह राज्यों से दूर निकल आते हैं। इसके कारण असंगठित क्षेत्र के लोग कई आवश्यक सेवाओं से वंचित रह जाते हैं।

तालिका 1: असंगठित क्षेत्र के प्रमुख कामगार

क्रम	रोजगार	क्रम	रोजगार
1	कृषि मजदूर	2	वन मजदूर (तेदूपत्ता संग्रहक प्लाटेंशन आदि)
3	निर्माण मजदूर	4	मछली कामगार
5	घरेलू महिला	6	सफाई कर्मी कामगार
7	कूड़ा बीनने वाले	8	व्यावसायिक प्रतिष्ठाानों पर कार्य करने वाले
9	रिक्शा चालक	10	आटोरिक्शा/टेम्पो चालक
11	प्राइवेट सुरक्षा गार्ड	12	होटल कर्मचारी
13	हॉस्पीटल कर्मचारी	14	ठेका मजदूर
15	हॉकर	16	रेहड़ी फेरी वाले
17	हम्माल/पिट्ठू	18	वेन्डर्स
19	बीड़ी कामगार	20	चाय बगान
21	ट्रक एवं बस ड्राइवर	22	मीडियाकर्मी (अस्थाई)
23	धोबी (लान्ड्री)	24	मोची
25	नाई	26	हाथ ठेला खींचने वाले
27	पुजारी, मौलाना	28	सब्जी विक्रेता फुटकर
29	टिफिन कैरियर	30	खदान मजदूर

स्रोत: श्रम मंत्रालय की वेबसाइट

वर्गीकरण

आइये अब असंगठित क्षेत्र में कार्यरत मजदूरों के कार्यों के आधार पर वर्गीकरण को समझते हैं। इसके साथ ही हमें ये समझना आवश्यक है कि चूंकि आर्थिक सर्वेक्षण 2007-08 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में कार्यरत 93 प्रतिशत लोग असंगठित क्षेत्र से सम्बद्ध हैं इसलिए भारत के संदर्भ में असंगठित क्षेत्र सिर्फ एक वर्ग ना होकर एक व्यापक जनसमूह है। इस तरह इस जनसमूह को दृष्टिगत रखते हुए असंगठित श्रमबल के आधार पर भारत सरकार के श्रम मंत्रालय के अनुसार चार भागों में विभक्त किया गया है।

व्यवसाय

प्रथम वर्गीकरण का आधार व्यवसाय है जिसमे छोटे और सीमांत किसान, चमड़े के

तालिका 2: कामगारों के लिए केन्द्रीय अधिनियम

01.	कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
02.	कर्मचारी भविष्य निधी एवं विविध प्रावधान अधिनियम, 1952
03.	पतन श्रमिक (सुरक्षा, स्वास्थ्य व कल्याण) अधिनियम, 1986
04.	खान अधिनियम, 1952
05.	लौह अयस्क, मैंगनीज अयस्क तथा क्रोम अयस्क श्रमिक कल्याण (सेस) अधिनियम, 1976
06.	लौह अयस्क, मैंगनीज अयस्क तथा क्रोम अयस्क श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, 1976
07.	मायका खान श्रमिक कल्याण अधिनियम, 1946
08.	बीड़ी मजदूर कल्याण सेस अधिनियम, 1976
09.	चूना पत्थर एवं गेमोलाइट मजदूर कल्याण निधी अधिनियम, 1972
10.	सिने कामगार कल्याण (सेस) अधिनियम, 1981
11.	बीड़ी मजदूर कल्याण निधि अधिनियम, 1946
12.	सिने कामगार कल्याण निधी अधिनियम, 1981
13.	बाल श्रम (रोकथाम एवं उन्मूलन) अधिनियम, 1986
14.	भवन निर्माण एवं अन्य निर्माण श्रमिक (सेवा परिस्थितियां) अधिनियम, 1970
15.	संविदा श्रमिक (साम्य एवं संपत्ति) अधिनियम, 1970
16.	समान वेतन अधिनियम, 1976
17.	औद्योगिक विकास अधिनियम, 1947
18.	औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946
19.	अंतर्राज्य प्रवासी मजदूर (रोजगार नियंत्रण व सेवाशर्तें) अधिनियम, 1979
20.	श्रमिक विधियां अधिनियम, 1988
21.	मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961
22.	न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948
23.	बोनस भुगतान अधिनियम, 1965
24.	ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972
25.	पारिश्रमिक भुगतान अधिनियम, 1936
26.	नागरिक कामगार एवं सिनेमा कामगार (रोजगार नियामन) अधिनियम, 1981
27.	भवन निर्माण एवं अन्य निर्माण श्रमिक (रोजगार नियामन तथा सेवा परिस्थतियां) अधिनियम, 1996
28.	अप्रेंटिस अधिनियम, 1961
29.	फैक्ट्री अधिनियम, 1948
30.	मोटर परिवहन अधिनियम, 1961
31.	निजी हानि (मुआवजा बीमा) अधिनियम, 1963
32.	निजी हानि (आपदा उपबंध अधिनियम, 1962
33.	वृक्षारोपण श्रमिक अधिनियम, 1951
34.	विक्रय प्रोत्साहन कर्मचारी (सेवा शर्तें) अधिनियम, 1976
35.	श्रमिक संघ अधिनियम, 1926
36.	साप्ताहिक अवकाश अधिनियम, 1942
37.	श्रमजीवी पत्रकार व समाचार पत्र कर्मचारी विविध प्रावधान अधिनियम, 1955
38.	बाल (बंधक श्रम) अधिनियम, 1938
39.	श्रमिक मुआवजा अधिनियम, 1923
40.	रोजगार केन्द्र (व्यक्तियों की अनिवार्यता अधिसूचना) अधिनियम, 1959
41.	बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम, 1976
42.	बीड़ी और सिगार श्रमिक (सेवाशर्तें) अधिनियम, 1966
43.	कर्मचारी दायित्व अधिनियम, 1938
44.	असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008

स्रोत: श्रम मंत्रालय की वेबसाइट

कारीगर, भूमिहीन खेतिहर मजदूर, हिस्सा साझा करने वाले –कृषक, बीड़ी बनाने वाले, ईंट और पत्थर खदानों में जुड़े लोग जो लेबलिंग और पैकिंग करते हैं, निर्माण और आधारभूत संरचनाओं में कार्यरत श्रमिक, बुनकर, मछुआरे, पशुपालक, नमक मजदूर, तेल मिलों आदि में कार्यरत श्रमिकों को इस श्रेणी के अंतर्गत माना गया है। (देखें तालिका 1)

रोजगार की प्रकृति

दूसरी श्रेणी मे प्रवासी मजदूर, संविदा (अनुबंधी) खेतिहर मजदूर, बंधुआ मजदूर, और दैनिक मजदूर को रखा गया है।

विशेष व्यथित श्रेणियां

तीसरी श्रेणी मे सिर पर भार ढोने वाले, ताड़ी बनाने वाले, सफाईकर्मी, पशु चालित वाहन वाले श्रमिक आते हैं।

सेवा श्रेणियां

चौथी श्रेणी में नाई, सब्जी और फल विक्रेता, अखबार विक्रेता, घरेलू कामगार, मछुआरे और महिलाएं आदि हैं।

कुछ प्रमुख कानून एवं संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान के अनुसार श्रम का मामला केंद्र और राज्य दोनों से संबन्धित है। इसके लिए कानून बनाने की जिम्मेदारी केंद्र सरकार की है, लेकिन उसका पालन करने का अधिकार संविधान में राज्य सरकारों को दिया गया है। *संगठित और असंगठित क्षेत्र* मे कार्यरत लोगों से संबन्धित कुल अधिनियमों की संख्या 44 है (देखें तालिका 2) *जिनमें से* अधिकतर दोनों ही क्षेत्र के लोगों पर समान रूप से लागू हैं किन्तु अधिकतर कानूनों का फायदा असंगठित क्षेत्र से ज्यादा संगठित क्षेत्र के कामगारों को मिलता है। इनमें से कुछ प्रमुख कानून हैं: न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948, कामगार प्रतिकर अधिनियम 1923, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948, न्यूनतम पारिश्रमिक अधिनियम 1947, ठेका श्रम विनियमन और उन्मूलन अधिनियम 1970 बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम 1986ए कारखाना अधिनियम और मजदूरी के भुगतान अधिनियम आदि।

इन सबके अतिरिक्त, असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 विशेष तौर पर असंगठित क्षेत्र के लिए है। यह असंगठित मजदूरों की सामाजिक सुरक्षा और कल्याण के लिए एवं इससे जुड़े आकस्मिक या अन्य मामलों के लिए लागू किया गया है। इस कानून में असंगठित क्षेत्र के लिए अलग से एक राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा बोर्ड एवं राज्य सामाजिक सुरक्षा बोर्ड का प्रावधान है। आगे ज़िला और पंचायत स्तर पर भी इसकी सीमाएं हैं। असंगठित क्षेत्र के कामगारों के लिए बनने वाली योजनाओं के लिए धन की पूर्ति केंद्र और राज्य परस्पर सामंजस्य के आधार पर करते हैं। इसमें छह अध्याय और 17 धाराएं हैं। दो अनुसूची हैं जिसमें पहली अनुसूची में योजनाओं और दूसरी अनुसूची में कुछ संबन्धित कानूनों की जानकारी है।

राज्य स्तर पर बने नियम एवं अधिनियम में मथारी वर्कस अधिनियम (महाराष्ट्र), डॉक वर्कस अधिनियम, रोजगार गारंटी अधिनियम एवं तमिलनाडु सोशल सामाजिक सुरक्षा अधिनियम प्रमुख अधिनियम हैं। इसके अतिरिक्त प्रमुख कल्याणकारी कानूनों में बीड़ी कामगार वेलफेयर वार्ड 1966, मोटर ट्रांसपोर्ट वर्कस एक्ट 1961, चाय वेलफेयर बोर्ड, मजदूरी भुगतान अधिनियम 1976, दवा विक्रेता श्रमिक विक्री संवर्धन कर्मचारी (सेवाशर्त) अधिनियम 1976, क्रांट्रेक्ट लेवर एक्ट

1970 बाल-मजदूरी (प्रतिबंध एवं विनियमन) अधिनियम 1986 प्रमुख हैं।

असंगठित क्षेत्र में बाल मजदूरों का भी एक बड़ा हिस्सा है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए वर्ष 1979 में बाल-मज़दूरी की समस्या और समाधान हेतु 'गुरुपाद स्वामी समिति' का गठन भारत सरकार द्वारा किया गया। समिति ने अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करते हुए कहा कि जब तक गरीबी बनी रहेगी तब तक बाल-मजदूरी को हटाना संभव नहीं होगा। इसलिए कानूनन इस मुद्दे को प्रतिबंधित करना व्यावहारिक रूप से जमीनी समाधान नहीं होगा। ऐसी स्थिति में समिति ने सुझाव दिया कि खतरनाक क्षेत्रों में बाल-मजदूरी पर प्रतिबंध लगाया जाए तथा अन्य क्षेत्रों में कार्य के स्तर में सुधार लाया जाए एवं बच्चों की समस्याओं को निपटाने के लिए बहुआयामी नीति बनायी जाये। इसके बाद समिति की सिफारिशों के आधार पर ही बाल-मजदूरी (प्रतिबंध एवं विनियमन) अधिनियम को 1986 में लागू किया गया था। यह कानून 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के नियोजन को निषिद्ध बनाता है (जीवन और स्वास्थ्य के लिए अहितकर 13 पेशा और 57 प्रक्रियाओं में)। इन पेशों और प्रक्रियाओं का उल्लेख कानून की अनुसूची में वर्णित है। इसके बाद उपर्युक्त दृष्टिकोण की सामंजस्यता के संदर्भ में वर्ष 1987 में राष्ट्रीय बाल-मजदूरी नीति तैयार की गई।

भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत निम्न अनुच्छेदों में कुछ प्रावधान मौजूद हैं।

- **अनुच्छेद 23:** शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान करता है एवं बंधुआ मजदूरी, बलात श्रम और अवैध मानव व्यापार को प्रतिबंधित करता है।
- **अनुच्छेद 24:** 14 साल के कम उम्र का कोई भी बच्चा किसी फैक्ट्री या खदान में काम करने के लिए नियुक्त नहीं किया जायेगा और न ही किसी अन्य खतरनाक नियोजन में नियुक्त किया जायेगा ।
- **अनुच्छेद 39 ई:** राज्य अपनी नीतियां इस तरह निर्धारित करेंगे कि श्रमिकों, पुरुषों और महिलाओं का स्वास्थ्य तथा उनकी क्षमता सुरक्षित रह सके और बच्चों की कम उम्र का शोषण न हो तथा वे अपनी उम्र व शक्ति के प्रतिकूल काम में आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रवेश करें।
- **अनुच्छेद 39 एफ:** बच्चों को स्वस्थ तरीके से स्वतंत्र व सम्मानजनक स्थिति में विकास के अवसर तथा सुविधाएं दी जायेंगी और बचपन व जवानी को नैतिक व भौतिक दुरुपयोग से बचाया जायेगा ।
- **अनुच्छेद 45:** संविधान लागू होने के 10 साल के भीतर राज्य 14 वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास करेंगे। (2002 के पहले 14 वर्ष तक की उम्र तक निशुल्क शिक्षा राज्य का कर्तव्य था 2002 मे संविधान संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 21क में इसे मूल अधिकार बना दिया गया)

तालिका 3: असंगठित क्षेत्र के लिए प्रमुख योजनाएं व अधिनियम

अधिनियम	योजनाएं
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन स्कीम	कामगार प्रतिकर अधिनियम 1923
	औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947
राष्ट्रीय पारवारिक लाभ योजना	कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम1948
जननी सुरक्षा योजना	कर्मचारी भविष्यनिधि अधिनियम 1952
हस्त बुनकर कल्याण योजना	मातृत्व लाभ अधिनियम 1961
हस्तकला कलाकार कल्याण योजना	उपदान भुगतान अधिनियम 1972
मास्टर क्राफ्ट पेंशन योजना	
मछुआरा कल्याण योजना	
जनश्री बीमा योजना	
आम आदमी बीमा योजना	
राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना	

स्रोत: सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008

श्रम एक ऐसा विषय है, जिस पर संघीय व राज्य दोनों सरकारें कानून बना सकती हैं इसके साथ ही माननीय न्यायालय के द्वारा समय समय पर दिये गए कुछ निर्णय भी एक कानून की भांति असंगठित क्षेत्र के लिए वरदान की तरह साबित हुए हैं। ऐसे ही कुछ निर्णय जिनके द्वारा देश में असंगठित क्षेत्र के लोगों की दशा और दिशा बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गयी उसमें प्रमुख हैं ***उन्नीकृष्णन वाद ख1993(1), एस.सी. 474***, जिसके द्वारा भारत को शिक्षा का अधिकार प्राप्त हुआ। उन्नीकृष्णन वाद में माननीय उच्चतम न्यायालय ने 14 वर्ष तक के बच्चों को प्रारिम्भक शिक्षा का अधिकार जीवन की स्वतंत्रता के अधिकार के अंतर्गत एक मौलिक अधिकार माना। इसके बाद गठित संविधान समीक्षा आयोग ने भी प्रारम्भिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाये जाने पर बल दिया और इस तरह से संविधान में 86वें संविधान संशोधन अधिनियम 2002 के द्वारा अनुच्छेद 21(क) को जोड़कर 6-14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया और प्राथमिक शिक्षा की ये जिम्मेदारी राज्यों को सौंपी गयी। यह असंगठित रोज के कामगारों के बच्चों के लिए वरदान साबित हुआ है जो धनाभाव में शिक्षा से वंचित रह जाते थे।

बंधुआ मुक्ति मोर्चा (ए.आई.आर. 1984, एस.सी. 802) के बाद में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि किसी जनहित याचिका के द्वारा ज्ञात होता है कि बंधुआ मजदूरी अभी भी बरकरार है तो सरकार को ऐसी याचिका का स्वागत करना चाहिए और इसको दूर करने के लिए आवश्यक कदम भी उठाने चाहिए। सरकार का ये संवैधनिक दायित्व है कि वो संविधान के अनुच्छेद 23 के अंतर्गत किसी भी तरह के बलात श्रम को नियंत्रित करे किन्तु सरकार/संसद की तरफ से *बंधुआ श्रम व्यवस्था (उन्मूलन) अधिनियम, 1976* को बनाने के अतिरिक्त उतनी गंभीरता से प्रयास नहीं हुए जितने होने चाहिए थे।

एक अन्य वाद ***एमसी मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य (एआइआर 1997, एससी 699)*** में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा 14 साल से कम उम्र के बच्चों को खतरनाक

फॉरेंसिक लेखा परीक्षण

फॉरेंसिक लेखा परीक्षण सही अर्थों में एक ऐसा लेखा परीक्षण है जिसका उद्देश्य है वित्तीय मोर्चे पर किये गए धोखाधड़ी, चोरी जैसे अपराधों की जांच के लिए लेखा तकनीक और उपायों के साथ सबूत इकट्ठा करना।

इस कारण से फॉरेंसिक लेखा परीक्षण को कभी कभी फॉरेंसिक लेखांकन भी कहा जाता है। फॉरेंसिंक ऑडिट या तो कोई ग़लत करतूत या गबन या फिर सभी तरह के कथित आपराधिक संदिग्ध के मामले में किया जाता है। यह कार्य सामान्यता किसी संस्था के वित्तीय अंतरण की गहन जांच है या किसी भी संस्था से विशेष रूप से संबद्ध कुछ धोखाधड़ी गतिविधि के किसी भी संदेह की जांच है। इस जांच में एक योजनाबद्ध चरण शामिल होता है, जिसमें कितने दिनों से कथित धोखाधड़ी चल रही थी, जो तरीक़े अपनाये जा रहे थे या छिपाये जा रहे थे जैसे सबूत और अन्य जानकारियां ऑडिटिंग तकनीकों के माध्यम से इकट्ठी की जाती हैं। इस चरण का अनुसरण एक समीक्षा प्रक्रिया द्वारा किया जाता है और अंत में ग्राहक को सूचित किया जाता है। ये सब इसलिए किया जाता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि धोखाधड़ी का मामला था भी या नहीं, अगर था तो इसमें कौन-कौन लोग शामिल थे और इससे ग्राहक को कितने पैसो का नुकसान हुआ। इसके बाद ये संपूर्ण विवरण ग्राहक के समक्ष रखे जाते हैं और अंत में न्यायालय के सामने रख दिया जाता है। इन सब कार्यों कों उस प्रमाणित फॉरेंसिक परीक्षक द्वारा अंजाम दिया जाता है जो धोखाधड़ी, गबन या वित्तीय मामलों से संबंधित विवादों को कोर्ट में क़ानूनी कार्यवाही के लिए अपने निष्कर्ष को प्रस्तुत करने के लिए प्रशिक्षित होते हैं। ये प्रशिक्षित ऑडिटिंग विशेषज्ञ सुबूत इकट्ठा करने के लिए एक जांच उपकरण की तरह व्यद्रिगत या कंपनी के वित्तीय रिकॉर्ड की जांच करता है जो कि मुकदमेबाजी के लिए अत्यधिक उपयोगी हो सकता है।

भारत में कारखाना अधिनियम 2013 के अनुच्छेद 177 के अंतर्गत, लेखा परीक्षण समिति को जांच करने का अधिकार है और बाहरी स्रोतों से पेशेवर सलाह प्राप्त करने की शक्ति है एवं कंपनी रिकॉर्ड के मामले में तमाम सूचनाओं तक इनकी पहुंच होती है। यह अधिनियम बताता है कि केन्द्रीय सरकार अधिसूचना के माध्यम से सीरियस फ्रॉड इन्वेस्टिगेशन ऑफिस नामक एक कार्यालय की स्थापना भी कर सकती है ताकि कंपनी मामले में की गई धोखाधड़ी की जांच की जा सके। इस कार्यालय की अध्यक्षता एक निदेशक करता है और इसमें बैंकिंग, टैक्सेशन और फॉरेंसिंक ऑडिटिंग जैसे क्षेत्रों के विशेषज्ञ शामिल होते हैं। उल्लेखनीय है कि 691 लोगों वाले भारतीय प्रभाग के साथ फॉरेंसिक ऑडिटिंग प्रैक्टिस के लिहाज़ से फोरेंसिक ऑडिटिंग फर्म केपीएमजी के लिए भारत सबसे तेज़ी से बढ़ता हुआ देश है। 2010-11 के 77 इन्क्वायरीज़ की अपेक्षा 2013 में भारत ने 1220 इन्क्वायरीज़ को आयोजित किया है।

संकलन: वाटिका चंद्रा, उपसंपादक, योजना अंग्रेजी

(email:vchandraiis2014@gmail.com)

फैक्ट्रियों, खनन आदि में काम करने पर रोक लगाई गयी। अनुच्छेद 24 के अंतर्गत जन स्वास्थ्य एवं बच्चों के जीवन की सुरक्षा से संबंधित ये वाद काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। इसी तरह ***सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य (एआईआर 1991, एससी 420)*** वाद एक जनहित याचिका में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि देश के नागरिकों को 'स्वच्छ हवा और पानी' पीने का अधिकार अनुच्छेद 21 के मूल अधिकार का ही एक भाग है और उन्हें इससे वंचित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार यदि देखा जाए तो असंगठित क्षेत्र में कामगारों की हालत चिंताजनक है। उनकी समस्याएं भी कम नहीं हैं। हालांकि कानून और संवैधनिक प्रावधनों के द्वारा इनके निवारण की दिशा में कार्य होते रहते हैं और जनहित याचिकाओं पर दिये गये न्यायालयों के कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों के द्वारा भी असंगठित क्षेत्र के कामगारों की समस्याओं के समाधान की दिशा में कुछ उपचार हुए हैं। संविधान के प्रदत्त मूल अधिकार और मानव-अधिकार के अंतर्गत असंगठित क्षेत्र के लोगों को पूर्णत: लाभान्वित करने के लिए हमें हर तरह के प्रयास करने होंगे। ❑

संदर्भ:

- श्रम मंत्रालय की बेबसाइट (http:èèlabour.gov.in)
- इकोनॉमिक रिसर्च फाउंडेशन के आंकड़े
- भारत सरकार का पोर्टल (http:èèindia.gov.in)
- भारत का संविधान
- असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम
- अर्जुन सेनगुप्ता कमिटी की रिपोर्ट-2006
- आर्थिक सर्वेक्षण 2007-08 की रिपोर्ट
- पंचवर्षीय योजनाओं का अध्ययन (विशेषकर 12वीं)

शरीर और मस्तिष्क की स्वच्छता शिक्षा का प्रथम सोपान है, प्रार्थना मस्तिष्क की स्वच्छता के लिए वही कार्य करता है जो बाल्टी और झाड़ू आपके चारों ओर के वातावरण के लिए करते हैं: **महात्मा गांधी** (संपूर्ण गांधी वाङ्मय भाग 78, पृष्ठ 320)

असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों की स्थिति

सुभाष सेतिया

आधी आबादी को समानता जब तक नहीं मिले, तब तक कोई कार्यक्रम सफल नहीं माना जा सकता। पर क्या संगठित और क्या असंगठित, हर क्षेत्र में महिलाओं के लिए न तो समानता है और न ही यथोचित सम्मान। असंगठित क्षेत्र में इनके लिए हालत बदतर है। इसी की बानगी है कि कृषि कार्य में सर्वाधिक श्रम करने के बावजूद वो किसान क्रेडिट कार्ड जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित रह जाती हैं

श्रम उत्पादन का आधार है और श्रमिक या कामगार विकास को गति देने वाला पहिया है। श्रम मनुष्य की आदि प्रवृत्ति भी है और आवश्यकता भी। श्रम व्यक्ति को अपनी शारीरिक-मानसिक क्षमताओं के उपयोग से अपना जीवन बेहतर बनाने की शक्ति के साथ-साथ समाज की आर्थिक संरचना का आधारभूत अंग भी है। श्रम को निवेश माना गया है जो हमारी जरूरतें पूरी करने वाली वस्तुओं के निर्माण एवं उत्पादन के रूप में समग्र मानव विकास के लिए आवश्यक पूंजी का निर्माण करता है। यों तो श्रम एवं श्रमिक की अवधारणा मानव सभ्यता के विकास के प्रारंभिक काल से ही मौजूद रही है किन्तु आधुनिक संदर्भों में श्रमिक, मजदूर या कामगार शब्दों का इस्तेमाल यूरोप में औद्योगिक क्रांति के बाद होने लगा।

मार्क्सवाद और समाजवाद के दर्शन को कार्यरूप देने के क्रम में श्रमिक वर्ग राजनीति की भी धुरी बन गया और 'दुनिया के मजदूरो एक हो' जैसे नारे अनेक देशों में गूंजने लगे। समय बीतने के साथ श्रम के राजनीतिक संदर्भ धूमिल होते गए किन्तु श्रम एवं श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए लगभग सभी देशों में कानून बनाए गए। पूंजीवाद और वैश्वीकरण के आगमन के बाद श्रमिकों के अधिकारों और कर्तव्यों को लेकर नई बहस छिड़ी और पूंजी तथा टेक्नोलॉजी की बढ़ती ताकत और प्रभाव के चलते श्रमिकों का महत्व पहले की अपेक्षा घटता दिखाई दे रहा है। श्रम के महत्व में ऐसा उतार-चढ़ाव तो परिस्थितियों के अनुरूप होता रहता है किन्तु उत्पादन प्रक्रिया में श्रमिकों की बुनियादी भूमिका हमेशा बरकरार रहेगी।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादन पर अधिक बल दिया गया तथा औद्योगिक संबंधों व श्रमिकों की काम करने की स्थितियों की बेहतरी की दिशा में समय-समय पर अनेक कानूनी प्रावधान किए गए। इन कानूनी प्रावधानों का लाभ संगठित क्षेत्र के मजदूरों को तो मिला किन्तु असंगठित क्षेत्र के कामगार शोषण तथा मेहनत की तुलना में कम पगार जैसी ज्यादतियों के शिकार होते रहे। इसके अलावा आर्थिक उदारीकरण के बाद उद्योगों में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ने से श्रम कानूनों में बदलाव या संशोधन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी क्योंकि अब अर्थव्यवस्था का मुख्य लक्ष्य मानव श्रम की बजाय पूंजी तथा टेक्नोलॉजी होने लगा। हाल में सरकार ने संसद में दो श्रम संशोधन विधेयक पेश किए जिनमें नई परिस्थितियों के प्रकाश में श्रमिक संबंधों में बदलावों का प्रावधान किया गया है।

देश के श्रम परिदृश्य में दो बातें विशेष रूप से ध्यान खींचने वाली हैं। ये हैं संगठित और असंगठित क्षेत्र में विषमता तथा दोनों क्षेत्रों में पुरुषों और स्त्रियों की स्थिति में लगभग अन्याय की सीमा तक असमानता। संगठित क्षेत्र में फिर भी कानूनी और मजदूर संघों के विरोध के डर से महिला श्रमिकों के लिए कुछ हद तक सुरक्षा तथा वेतन आदि की गारंटी मिली हुई है किन्तु असंगठित क्षेत्र में महिलाओं को दोहरी मार झेलनी पड़ती है। पहली तो यह है कि असंगठित क्षेत्र में कानूनी उपायों तथा सामूहिक विरोध की संभावनाओं के अभाव के कारण पुरुषों की तरह उन्हें भी बहुतसी वे सुविधाएं तथा

लेखक आकाशवाणी से अपर महानिदेशक समाचार के पद से सेवानिवृत हैं। कहानी, कविता और स्त्री विमर्श पर कई पुस्तकें प्रकाशित। प्रमुख पुस्तकें: भारतीय नारी, कितनी जीती कितनी हारी, स्त्री अस्मिता के प्रश्न, हार में जीत, पानी की लकीर आदि। ईमेल: sctis_subhas@yahoo.co.in

सुरक्षा उपाय उपलब्ध नहीं हैं जो संगठित क्षेत्र के श्रमिकों को उपलब्ध हैं। दूसरी यह कि, महिला होने के कारण उन्हें अतिरिक्त रूप से शोषण, असमानता तथा अन्याय का शिकार होना पड़ता है। हम जानते हैं कि समाज की लगभग सभी गतिविधियों में न्याय की तुला का पलड़ा पुरुषों की ओर झुका हुआ है। महिलाओं को अधिक श्रम करना पड़ता है तथा रोजगार देने से लेकर उनके श्रम के मूल्यांकन तक में भेदभाव किया जाता है।

आजादी के बाद महिला साक्षरता की दर में वृद्धि और स्त्री अधिकारों की रक्षा के लिए सरकार द्वारा किए गए कानूनी व प्रशासनिक उपायों के फलस्वरूप संगठित क्षेत्र की महिला कर्मियों की कार्य स्थितियों, वेतन तथा संख्या में कुछ सुधार हुआ है। किन्तु आज भी देश में कुल श्रम बल में महिलाओं की हिस्सेदारी केवल 24 प्रतिशत है। विभिन्न कार्यालयों, कंपनियों, बैंकों आदि में उच्च प्रबंधकीय पदों पर केवल 14 प्रतिशत महिलाएं आसीन हैं। यदि हम महिला श्रम के मामले में विश्व में भारत की स्थिति पर नज़र डालें तो हमारा सिर श्रम से नहीं शर्म से झुक जाता है। 134 देशों में श्रम के क्षेत्र में लैंगिक समानता के पैमाने पर भारत का 120वां स्थान है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा एकत्र आंकड़ों के अनुसार देश की 86 प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जिनके श्रम का आर्थिक मूल्यांकन न के बराबर है और वे वित्तीय दृष्टि से पूरी तरह दूसरों पर यानी पुरुषों पर निर्भर हैं। इसका एक बड़ा कारण यह है कि औरतों के घर में किए जाने वाले कामों जैसे कि खाना-पकाना, कपड़े धोना, साफ-सफाई और बच्चे पालना को औपचारिक रूप से श्रम नहीं माना जाता और उसकी कोई कीमत नहीं आंकी जाती। 2011-12 में संकलित इन आंकड़ों से यह तथ्य सामने आया है कि कामकाजी औरतों की संख्या पहले से बढ़ी है लेकिन कुल श्रम बल में इनका अनुपात कम हो गया है। यह जनसंख्या में वृद्धि और इसके फलस्वरूप श्रम बल में अधिक पुरुषों के शामिल होने के कारण हुआ है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि देश में कुल कामगारों में महिला श्रमिकों की हिस्सेदारी केवल 24 प्रतिशत है। इनमें भी अधिकतर श्रमिक असंगठित क्षेत्र में हैं जहां न्यूनतम वेतन, कार्य स्थितियों तथा रोज़गार की गारंटी जैसी सुविधाओं के बारे में कोई व्यवस्थित तंत्र नहीं है। इस क्षेत्र में मुख्यतया कृषि, पशुपालन, निर्माण, घरेलू काम, दुकानों पर काम तथा अन्य छोटे-मोटे संस्थानों में रोज़गार को शामिल किया जा सकता है। सबसे अधिक महिला श्रमिक कृषि क्षेत्र में काम करती हैं, लेकिन इसमें भी विडंबना यह है कि खेती-बाड़ी में महिला श्रमिकों के व्यापक योगदान के बावजूद उन्हें किसान नहीं माना जाता। जो महिलाएं पारिवारिक तौर पर खेत की मालिक हैं वे भी केवल शारीरिक श्रम करती हैं और किसान की प्रतिष्ठा व अधिकारों से वंचित रहती हैं। किसान की परिभाषा के अन्तर्गत न आने के कारण किसानी करने के बावजूद महिलाओं को किसान क्रेडिट कार्ड और प्रशिक्षण आदि नहीं मिल पाते। दिहाड़ी पर काम करने वाली महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम पगार दी जाती है। इसके अलावा उन्हें खेतों में काम करने के साथ-साथ घर का कामकाज भी संभालना होता है और बच्चे भी पालने पड़ते हैं, जिसके चलते उनका वास्तविक श्रम पुरुषों से कहीं अधिक हो जाता है। 2011 में महिला किसान स्वामित्व कानून पारित किया गया किन्तु इसके बावजूद कृषि क्षेत्र की अधिकतर महिला श्रमिक असमानता, भेदभाव तथा आर्थिक व शारीरिक शोषण से मुक्त नहीं हो पाई हैं।

देश के श्रम परिदृश्य में दो बातें विशेष रूप से ध्यान खींचने वाली हैं। ये हैं संगठित और असंगठित क्षेत्र में विषमता तथा दोनों क्षेत्रों में पुरुषों और स्त्रियों की स्थिति में लगभग अन्याय की सीमा तक असमानता। संगठित क्षेत्र में फिर भी कानूनी और मज़दूर संघों के विरोध के डर से महिला श्रमिकों के लिए कुछ हद तक सुरक्षा तथा वेतन आदि की गारंटी मिली हुई है किन्तु असंगठित क्षेत्र में महिलाओं को दोहरी मार झेलनी पड़ती है।

कृषि के बाद निर्माण क्षेत्र में सबसे अधिक महिला श्रमिक काम करती हैं। इनमें भवन निर्माण से लेकर सड़कों, पुलों, बांधों, रेल पटरियों तथा अन्य प्रतिष्ठानों का निर्माण शामिल है। ये काम निजी और सरकारी दोनों क्षेत्रों में होता है। कृषि की भांति निर्माण क्षेत्र में भी महिला श्रमिकों के श्रम का मूल्यांकन भेदभावपूर्ण रहता है और एक जैसे काम के लिए उन्हें पुरुषों से कम पगार दी जाती है। उन्हें शारीरिक रूप से दुर्बल मानते हुए हल्के काम दिए जाते हैं जिसके आधार पर उन्हें कम पगार देने को सही ठहराने का प्रयास किया जाता है। इस क्षेत्र की एक विडंबना यह है कि केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग, राज्यों के लोक निर्माण विभागों तथा सार्वजनिक क्षेत्र की निर्माण कम्पनियों द्वारा श्रम के लिए न्यूनतम वेतन के निर्धारण के बावजूद महिला श्रमिकों को शोषण का शिकार होना पड़ता है, क्योंकि अधिकतर इमारतों तथा कार्यों का निर्माण ठेकेदारों से कराया जाता है जो न्यूनतम वेतन की शर्तों की अवहेलना करते हैं। इन श्रमिकों को काम के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होना पड़ता है जिससे उनके जीवन में स्थायित्व नहीं आ पाता और वे अपनी बुनियादी सुविधाओं तथा बच्चों के भविष्य पर ध्यान नहीं दे पातीं।

असंगठित क्षेत्र की तीसरी सबसे बड़ी कड़ी है घरेलू काम-काज यानी चौका-बर्तन करना। ये काम मुख्यतया शहरों में होता है जिसे गांवों या पिछड़े व आदिवासी इलाकों से आने वाली लड़कियां तथा महिलाएं करती हैं। इसमें भी महिलाओं के श्रम का मूल्यांकन अन्यायपूर्ण होता है तथा उनकी मेहनत के मुकाबले बहुत कम पगार दी जाती है। किसी तरह की नियामक व्यवस्था न होने के कारण महिला श्रमिक की मजबूरी का फायदा उठाकर उन्हें कम वेतन दिया जाता है। इसमें प्लेसमेंट एजेंसियों की भी काली भूमिका रहती है जो लड़कियों के निर्धारित वेतन का एक बड़ा हिस्सा हड़प लेती हैं। घरेलू काम में लगी महिला श्रमिकों की सबसे बड़ी चुनौती है स्वयं को यौन शोषण से बचाना। घरों में निजी चार दीवारी के भीतर काम करने, विशेषकर 24 घंटे काम करने की स्थिति में यौन शोषण की आशंका बढ़ जाती है।

और भी अनेक छोटे-मोटे काम हैं जिनमें श्रम करने वाली महिलाएं बिना किसी नियमन व्यवस्था के काम करने को विवश हैं। इस सिलसिले में सेक्स वर्करों यानी वेश्याओं का उल्लेख करना भी समीचीन होगा। इस क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय है क्योंकि इनके काम को समाज हिकारत की

नज़र से देखता है और इनकी समस्याओं और स्थितियों पर विचार करना ही वर्जनाओं की श्रेणी में आता है। ये श्रमिक गुलामों की तरह अपने मालिकों के इशारे पर चलते हुए अपने शरीर को बेचती हैं। ये एकदम अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में काम करती हैं तथा इस हालत में भी नहीं होतीं कि अपनी और अपने बच्चों की देखरेख कर सकें। एक अनुमान के अनुसार देश में 50 लाख से अधिक सेक्स वर्कर हैं। हालांकि कुछ स्वयंसेवी संगठनों द्वारा इन बदनाम महिला श्रमिकों और उनकी संतानों की भलाई के लिए कार्यक्रम चलाए जाते हैं किन्तु उनका प्रभाव नगण्य है और वे आज भी समाज के एक अपमानित और उपेक्षित वर्ग की शोषित व पीड़ित श्रमिक हैं। इन्हें वेश्या की बजाय सेक्स वर्कर या यौन कर्मी की संज्ञा देने का उद्देश्य भी उन्हें अपेक्षाकृत आत्म-सम्मान से जीने आ अवसर देना है।

असंगठित क्षेत्र की महिला श्रमिकों की स्थिति का एक कलुषपूर्ण पक्ष है बाल श्रम। शहरी मध्य वर्ग का एक बड़ा तबका पैसे बचाने के उद्देश्य से कम उम्र की लड़कियों को काम पर रखता है। यह गैर-कानूनी तो है ही साथ ही अमानवीय भी है। मासूम बच्चियां खेलने-कूदने की उम्र में मेहनत-मशक्कत करती हैं और शिक्षा से वंचित रहती हैं। कई बार इनका यौन शोषण भी होता है जिससे उनका जीवन बर्बाद हो जाता है। बाल श्रम कानून तो बना हुआ है किन्तु इसे क्रियान्वित करने पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। कुछ स्वयंसेवी संस्थाएं बाल श्रमिक लड़कियों की मदद का प्रयास करती रहती हैं किन्तु यह कुप्रथा धड़ल्ले से चल रही है।

ऐसा नहीं है कि असंगठित क्षेत्र की महिला श्रमिकों की स्थिति में सुधार लाने के लिए कोई प्रयास नहीं किए गए हैं। केन्द्र और राज्य सरकारों ने इनके लिए आवास, बीमा, स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था जैसे अनेक कार्यक्रम चलाए हैं। कई स्वयंसेवी संस्थाएं भी सरकार से प्राप्त वित्तीय सहायता से महिला श्रमिकों के कल्याण के कार्यक्रम चलाती हैं। उदाहरण के लिए कृषि और निर्माण के कार्यों में श्रम करने वाली महिलाओं के बच्चों के लिए उनके कार्यस्थलों के निकट स्कूल और शिशु गृह चलाए जाते हैं। इसी तरह सेक्स वर्करों की स्वास्थ्य जांच तथा इलाज की व्यवस्था के साथ-साथ बच्चों की पढ़ाई के केन्द्र चलाए जा रहे हैं। महिला श्रमिकों को उनकी शिक्षा, दक्षता तथा रुचि के अनुसार विभिन्न शिल्पों का प्रशिक्षण भी दिया जाता है ताकि वे बेहतर स्थितियों में काम कर सकें या अपना काम-धंधा शुरू कर सकें। इस दृष्टि से स्वयं सहायता समूह योजना बहुत कारगर सिद्ध हो रही है। इस योजना के अन्तर्गत कुछ महिलाएं अपना एक ग्रुप बनाकर बैंकों से लघु ऋण ग्रहण कर सकती हैं जिसकी मदद से पापड़, लिफाफे आदि बनाने से लेकर पशुपालन और बागवानी जैसे काम शुरू करके अपने पांव पर खड़ी हो सकती हैं। सरकार ने हाल में एक ऐसा कानून पारित किया है जिसके अन्तर्गत बड़ी कम्पनियों के लिए अपने लाभ का एक निश्चित भाग सामाजिक उद्देश्यों पर खर्च करना अनिवार्य किया गया है। इस योजना के तहत कम्पनियां महिला श्रमिकों तथा उनके बच्चों के लिए रहन-सहन और शिक्षा आदि की बेहतर सुविधाएं उपलब्ध कराने पर धन खर्च कर सकती हैं।

आज भी देश में कुल श्रम बल में महिलाओं की हिस्सेदारी केवल 24 प्रतिशत है। विभिन्न कार्यालयों, कंपनियों, बैंकों आदि में उच्च प्रबंधकीय पदों पर केवल 14 प्रतिशत महिलाएं आसीन हैं।

गांवों में मनरेगा असंगठित क्षेत्र की महिला श्रमिकों के लिए बहुत बड़ा वरदान साबित हुआ है। यह संगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए अब तक का सबसे सार्थक और कारगर कानून है। इसके अन्तर्गत जहां एक ओर साल में कम से कम 100 दिन के रोज़गार की गारंटी है, वहीं काम पाने वाले श्रमिकों में कम से कम 50 प्रतिशत महिलाओं का होना जरूरी है। काम के स्थानों के पास बुनियादी सुविधाओं की व्यवस्था का प्रावधान है। सबसे बढ़िया बात यह है कि पगार का भुगतान सीधे श्रमिक के बैंक खाते में किया जाता है जिससे भ्रष्टाचार की संभावना काफी कम हो जाती है। हाल में शुरू की गयी प्रधानमंत्री जन धन योजना भी असंगठित क्षेत्र की महिला कामगारों को आर्थिक दृष्टि से सशक्त बनाने में सहायक हो सकती है इससे महिलाएं बैंक खातों में बचत करने के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर कर्ज भी ले सकती हैं लेकिन ये योजनाएं असंगठित कामगारों को न्याय दिलाने में पूरी तरह सफल नहीं हैं।

सच तो यह है कि हमारे देश में असंगठित क्षेत्र का श्रमिक खुले आसमान में खड़ी फसल की तरह है जिसके संरक्षण की समुचित व्यवस्था नहीं है। इनमें महिला श्रमिक तो और भी अधिक क्षीण स्थिति में हैं। श्रमशील आबादी के इतने बड़े हिस्से का इस तरह उपेक्षित और शोषित रहना न केवल देश के लिए बल्कि हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए भी चिंताजनक है। सरकार को इस उपेक्षित वर्ग के हितों की रक्षा के लिए अधिक कानूनी तथा प्रशासनिक उपाय करने होंगे। इन सबसे भी अधिक आवश्यक है महिलाओं को कमज़ोर और हीन समझने की सामाजिक मानसिकता को बदलना। इसी सोच के चलते उन्हें कम वेतन दिया जाता है तथा उनकी क्षमताओं और श्रम के मूल्य को कम करके आंका जाता है। पुरुषों तथा समूचे समाज को महिलाओं के प्रति समानता तथा सम्मान का व्यवहार करना होगा तभी महिला श्रमिकों को न्यायोचित मेहनताना मिल सकेगा और उन्हें अपनी क्षमता सिद्ध करने के अधिक अवसर उपलब्ध हो सकेंगे।

आवश्यकता इस बात की है कि श्रम कानूनों में किए जा रहे संशोधनों में असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों, विशेषकर महिला श्रमिकों के हितों पर भी ध्यान दिया जाए। यह सही है कि इतने व्यापक असंगठित क्षेत्र को रेगुलेट करना सरकार के लिए सरल नहीं है। किन्तु इन श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, बीमा जैसी योजनाएं चलाकर तथा उद्योगों व अन्य संबंधित पक्षों में जागरूकता लाकर महिला श्रमिकों को समान पगार देने तथा उनके लिए अतिरिक्त सुविधाएं जुटाने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के साथ भेदभाव और अन्याय पर नज़र रखने के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों की समितियां गठित की जा सकती हैं जिनमें विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिष्ठित महिलाएं भी शामिल हों। आशा की जानी चाहिए कि नई सरकार इस दिशा में आवश्यक कदम उठाएगी ताकि असंगठित क्षेत्र की महिला श्रमिक अपनी क्षमताओं का उपयोग करते हुए अपने परिवार की खुशहाली के साथ देश के विकास में सक्रिय भूमिका निभा सकें। ❑

पलायनः मजबूरी या सहारा

तरुण कुमार शर्मा

भारत की अर्थव्यवस्था में असंगठित श्रमिकों की बहुतायत है। पलायन मजबूरी है ग्रामीण अल्पशिक्षित / शिक्षित आबादी की लेकिन यही पलायन आधार बन जाता है असंगठित अर्थव्यवस्था का। उस असंगठित अर्थव्यवस्था का जो देश की 90 प्रतिशत से अधिक आर्थिक गतिविधियों की कमान अपने हाथ में रखती है। यानी वही पलायन एक ओर अभिशाप तो एक ओर वरदान लेकिन कामगार का भला तो किसी सूरत में नहीं। ऐसे में पलायन के कारणों व समाधान की खोजबीन जरूरी हो जाती है

भारत के स्वतंत्र एवं कल्याणकारी राज्य में आज भी लगभग एक तिहाई नागरिक गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। यह संख्या और अधिक भी हो सकती है यदि गरीबी निर्धारण की प्रति व्यक्ति प्रति दिन आय की परिभाषाएं हास्यास्पद न हों। समावेशी वृद्धि द्वारा सरकारें निर्धन व्यक्तियों को मुख्यधारा में लाने का प्रयास करती हैं। इसके बाद भी कई व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में रहकर अपना, अपने परिवार का भरण पोषण नहीं कर पाते हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में यह ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़कर शहरी क्षेत्रों की ओर चले जाते हैं। इनमें से बहुत कम होते है जिन्हें संगठित क्षेत्र में रोजगार प्राप्त हो पाता है। अधिकांश व्यक्ति असंगठित क्षेत्रों में ही कार्य करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से बढ़ते पलायन को जनगणना के आंकड़ों द्वारा समझा जा सकता है। (देखें-तालिका 1)

ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन के संकेतक

पलायन को भारत की जनगणना में ग्रामीण व शहरी जनसंख्या प्रतिशत, साक्षरता दर, घनत्व, लिंगानुपात आदि आंकड़ों के आधार पर समझा जा सकता है। भारत की जनगणना में पलायन के आंकड़े दो प्रकार से संग्रहित किये जाते हैं। पहला यदि पलायन जन्म स्थान के आधार पर हो एवं दूसरा व्यक्ति के पूर्व जनगणना में उसके निवास स्थान के आधार पर हुआ पलायन है। पलायन स्थायी या आंशिक भी हो सकता है। कई व्यक्ति रोजगार या किसी अन्य कारण से समय समय पर अपने निवास स्थान बदलते रहते हैं।

सन् 2001 की जनगणना में भारत की कुल जनसंख्या 102.9 करोड़ थी, जिसमें ग्रामीण जनसंख्या 74.3 करोड़ और शहरी जनसंख्या 28.6 करोड़ थी। सन् 2011 की जनगणना में भारत की कुल जनसंख्या बढ़कर 121 करोड़ हो गई, जिसमें ग्रामीण जनसंख्या 83.3 करोड़ और शहरी जनसंख्या 37.7 करोड़ हो गई। सन् 2001 की तुलना में सन् 2011 में कुल जनसंख्या में से शहरी जनसंख्या का प्रतिशत 27.81 प्रतिशत से बढ़कर 31.16 प्रतिशत हो गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पहली बार देश की कुल शहरी जनसंख्या में हुई वृद्धि ग्रामीण जनसंख्या की तुलना में अधिक है। सन् 2001 की जनगणना में ग्रामीण जनसंख्या कुल जनसंख्या की 72.19 प्रतिशत थी जो सन् 2011 में घटकर कुल जनसंख्या का 68.84 प्रतिशत रह गई है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या में इस परिवर्तन का एक बड़ा

तालिका 1: भारत की जनसंख्या के आंकड़े

सन् 2001 की जनगणना		सन् 2011 की जनगणना		
आधार	**जनसंख्या**	**प्रतिशत**	**जनसंख्या**	**प्रतिशत**
ग्रामीण जनसंख्या	74.3 करोड़	72.19	83.3 करोड़	68.84
शहरी जनसंख्या	28.6 करोड़	27.81	37.7 करोड़	31.16
कुल जनसंख्या	**102.9 करोड़**		**121 करोड़**	

(स्रोतः जनगणना 2001 एवं 2011 के आंकड़े)

लेखक मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर, राजस्थान में सहायक आचार्य हैं। इससे पूर्व वह सेंटर फॉर आर्गेनाइजेशन डवलपमेंट, हैदराबाद और आईएमएस लर्निंग रिसोर्सेस, मुंबई में कार्य कर चुके हैं। औद्योगिक/संगठनात्मक मनोविज्ञान व समान मनोविज्ञान उनके रुचि के विषय हैं। संगठनात्मक वातावरण, जीवन की गुणवत्ता आदि विषयों पर शोध प्रकाशित। ईमेलः tarun.udpr@gmail.com

कारण ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन है।

सन् 1901 से सन् 2011 की जनगणना तक देश की शहरी जनसंख्या में वृद्धि ही हुई है। सन् 1901 में शहरी जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या का 10.8 प्रतिशत थी, सन् 1951 में यह बढ़कर 17.3 प्रतिशत और सन् 2011 में 31.16 प्रतिशत हो गई है।

तालिका 2: भारत की जनसंख्या वृद्धि दर (प्रतिशत में)

	1991-2001	2001-2011	अन्तर
भारत	21.5	17.6	-3.9
ग्रामीण	18.1	12.2	-5.9
शहरी	31.5	31.8	0.3

(स्रोत: भारत की जनगणना के आंकड़े)

तालिका-2 से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या वृद्धि दर 1991-2001 में 18.1 प्रतिशत थी जो कि 2001-2011 में 5.9 प्रतिशत घट कर 12.2 प्रतिशत हो गई। भारत की कुल जनसंख्या वृद्धि दर में इस अवधि में 3.9 प्रतिशत की कमी होने के बावजूद भी शहरी जनसंख्या में 0.3 प्रतिशत की वृद्धि ही हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का पलायन भी इसका एक प्रमुख कारण है।

सन् 2001 से सन् 2011 के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता में सुधार का प्रतिशत शहरी क्षेत्रों से लगभग दोगुना है। सन् 2001 में ग्रामीण साक्षरता 58.7 प्रतिशत थी जो कि 2011 में बढ़कर 68.9 प्रतिशत हो गई। साक्षरता में 10.2 प्रतिशत की यह वृद्धि भी ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन का एक मुख्य कारण है। शिक्षित व्यक्ति के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में उपर्युक्त रोजगार की उपलब्धता कम होती है।

तालिका 3: भारत में नगरों की संख्या

	2001 की जनगणना	2011 की जनगणना	अन्तर
वैधानिक नगर	3799	4041	242
सेन्सस नगर	1362	3894	2532
कुल नगर	**5161**	**7935**	**2774**

(स्रोत: जनगणना 2001 एवं 2011 के आंकड़े)

शहरी क्षेत्र की मूलभूत इकाई: नगर

भारत की जनगणना में पूरे देश में नगर की संख्या सम्बन्धित जानकारी एकत्रित की जाती है। नगर शहरी क्षेत्र की एक मूलभूत इकाई है। भारत की जनगणना में नगर दो प्रकार से वर्गीकृत किए गए हैं -

वैधानिक नगर: वे सभी क्षेत्र जिनमें नगर पालिका, निगम या छावनी हो या वह अधिसूचित शहरी क्षेत्र हों।

सेन्सस नगर: ऐसे सभी क्षेत्र जो निम्न मानदण्डों को पूर्ण करते हों:

अ. 5000 की न्यूनतम जनसंख्या हो।

ब. उस क्षेत्र के 75 प्रतिशत पुरुष गैर-कृषि कार्यों में लगे हों।

स. उस क्षेत्र का घनत्व 400 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. हो।

तालिका-3 से यह पता लगता है कि वैधानिक रूप से निर्धारित नगर तो 242 ही बढ़े हैं, लेकिन क्षेत्र की जनसंख्या, घनत्व एवं रोजगार की प्रकृति के आधार पर निर्धारित किये जाने वाले सेन्सस नगर की संख्या 1362 से बढ़कर 3894 हो गई हैं। इसका मतलब यह है कि कुछ क्षेत्र विशेष रहने की दृष्टि से पसंद किये जा रहे हैं, चाहे वे वैधानिक रूप से नगर निर्धारित न भी हों।

अन्य सभी क्षेत्र जो शहरी श्रेणी में नहीं आते हैं, ग्रामीण क्षेत्र कहलाते हैं, ग्रामीण भारत की मूलभूत इकाई गांव है। 2001 में गांवों की संख्या 6,38,588 थी जो 2011 में 2279 गांवों की वृद्धि के साथ 6,40,867 हो गई है। गांवों में हुई वृद्धि नगर की संख्या में हुई वृद्धि की तुलना में अत्यन्त कम हैं।

यह स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या में वृद्धि हो रही हैं। इस वृद्धि के तीन संभावित कारण हैं -

- ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन
- उस क्षेत्र की जनसंख्या में नये जन्मों से हो रही वृद्धि
- शहरी क्षेत्र में नये स्थानों/क्षेत्रों का शामिल होना

2011 की जनगणना में सम्पूर्ण भारत की जनसंख्या में औसत वृद्धि 17.6 प्रतिशत है जबकि शहरी भारत में यह वृद्धि 31.8 प्रतिशत है। अगर सिर्फ नये जन्म होने के कारण ही जनसंख्या में वृद्धि हो रही होती तो इन दोनों की जनसंख्या में हो रही वृद्धि के प्रतिशत में इतना अन्तर नहीं होना चाहिये था। वैधानिक रूप से सन् 2001 से सन् 2011 के दौरान 242 नगर ही नये शामिल हुए हैं। जबकि इस अवधि में सेन्सस नगरों की संख्या अधिक बढ़ी है, जिसका आधार जनसंख्या, जन घनत्व एवं गैर कृषि कार्यों में संलग्नता है। अत: यह स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या बढ़ने का सबसे बड़ा कारण ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन ही है।

शहरी क्षेत्रों में 2001 की जनगणना में लिंगानुपात 900 था जो बढ़कर 2011 में 926 हो गया। इसमें भी संभावित कारण विवाह के पश्चात् महिलाओं का ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन हो सकता है क्योंकि शहरी क्षेत्रों में 0-6 वर्ष आयु की श्रेणी में लिंगानुपात 2001 में 906 से घटकर 2011 में 902 ही रह गया है। हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों में इस आयु श्रेणी में लिंगानुपात में अधिक कमी हुई है।

पलायन के मुख्य कारण

पलायन के मुख्य कारणों में शहरी क्षेत्रों में विवाह हो जाना, रोजगार, नौकरी, व्यवसाय, उच्च शिक्षा, परिवार के कल्याण हेतु, गरीबी, परिवार के मुखिया या किसी अन्य सदस्य का स्थानान्तरण, मुलभूत सुविधाओं की ग्रामीण क्षेत्रों में कमी आदि प्रमुख कारण शामिल हैं। इसमें भी पुरुष मुख्यत: रोजगार के लिये एवं महिलाएं विवाह के कारण पलायन करती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के लिये क्रमश: रोजगार एवं विवाह सबसे बड़े कारण हैं।

पलायन के कारकों को मुख्यत: दो श्रेणियों में रखा जा सकता है -

अनाकर्षक कारक - ये वे कारण हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों के नकारात्मक कारक हैं जिसकी वजह से व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं रहना चाहता है। इन्हें पुल (धक्का देने वाले) कारक भी कहते हैं। इन कारकों में गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा-चिकित्सा सुविधाओं की कमी, आय का कोई साधन न होना, आय के सीमित अवसर होना, भूमिविहीन होना, योग्य जीवन साथी की तलाश, सूखा पड़ना या अन्य प्राकृतिक आपदाएं इत्यादि हैं।

आकर्षक कारक - ये वे कारण हैं जो शहरी क्षेत्रों में रहने के लिये व्यक्ति को आकर्षित करते हैं। इन्हें पुश (खींचने वाले) कारक भी कहते हैं। शहरी क्षेत्रों में बेहतर नौकरी, रोजगार के अवसर, बेहतर शिक्षा,

तालिका 4: वर्ष 2004-05 के लिये सांस्थानिक इकाई स्तर पर औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्र के लिये रोजगार का वितरण

क्षेत्र/संस्था का प्रकार		रोजगारों की संख्या			रोजगारों का प्रतिशत		
		औपचारिक	अनौपचारिक	कुल	औपचारिक	अनौपचारिक	कुल
औपचारिक क्षेत्र	सरकारी	1.66	0.84	2.5	3.0	1.5	4.5
	निजी कम्पनी	0.51	0.86	1.37	0.9	1.5	2.5
	घरेलू	0.25	4.4	4.65	0.5	7.9	8.4
अनौपचारिक क्षेत्र		0.7	47.07	47.13	0.1	84.6	84.7
कुल रोजगार		**2.49**	**53.16**	**55.65**	**4.5**	**95.5**	**100**

(स्रोत: कोली व सिन्हाराय पेपर)

चिकित्सा सुविधाएं, अधिक वेतन/ आमदनी, व्यवसाय के अवसर आदि।

असंगठित क्षेत्र

असंगठित क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है। भारत की अर्थव्यवस्था में असंगठित श्रमिकों की बहुतायत है। वर्ष 2007-08 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 93 प्रतिशत रोजगार कर रहे व्यक्ति या तो असंगठित क्षेत्र में कार्यरत रहे या स्व-रोजगार कर रहे थे। देश के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा इस क्षेत्र से ही आता है। सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग का एक बहुत बड़ा समूह इसी असंगठित क्षेत्र से रोजगार हेतु जुड़ा हुआ है। पिछले दो दशकों में असंगठित क्षेत्र के विकास के फलस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था में विकास हुआ है।

असंगठित और अनौपचारिक क्षेत्र की परिभाषा के सम्बन्ध में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहस होती रही है। भारत में असंगठित क्षेत्र की पहली आधिकारिक परिभाषा 1980 में ***केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन*** द्वारा दी गई। इस परिभाषा के अनुसार वे सभी संचालित इकाइयां जो किसी वैधानिक एक्ट या कानूनी प्रावधान के तहत नहीं आती हैं या जो नियमित खाते नहीं रखती हैं, असंगठित क्षेत्र में आती हैं।

असंगठित और अनौपचारिक शब्द प्राय: समान अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। ***नेशनल सेम्पल सर्वे आर्गेनाइजेशन (एनएसएसओ) 1999*** ने इसमें विभेद करते हुए बताया कि अनौपचारिक क्षेत्र में अपंजीकृत एकल स्वामित्व या साझेदारी वाले उद्यम शामिल होते हैं जबकि असंगठित क्षेत्र में इन उद्यमों के साथ सहकारी समितियां, ट्रस्ट, निजी एवं लिमिटेड कम्पनियां भी शामिल होती हैं। इस प्रकार अनौपचारिक क्षेत्र असंगठित क्षेत्र का एक उप-भाग माना जा सकता है।

असंगठित क्षेत्रों के उद्यमों हेतु निर्मित राष्ट्रीय आयोग (एनसीईयूएस) द्वारा स्वीकृत असंगठित क्षेत्र की परिभाषा के अनुसार असंगठित क्षेत्र में वे सभी अपंजीकृत निजी उद्यम शामिल हैं जिनका स्वामित्व व्यक्तिगत या घरेलू हो एवं जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में एकल स्वामित्व या साझेदारी से करते है एवं जिनमें दस से भी कम श्रमिक कार्य करते हैं। एनसीईयूएस द्वारा सभी कृषि कार्यों को, चाहे व्यक्तिगत हो या साझेदारी में, को भी असंगठित क्षेत्र का भाग माना गया है। इनमें सहकारी कृषि या संगठित कृषि, पौधारोपण से जुड़े कार्य आदि शामिल नहीं हैं। **एनसीईयूएस** द्वारा भारत में रोजगार को चार श्रेणियों में बांटा गया है -

अ. संगठित क्षेत्र में औपचारिक रोजगार
ब. संगठित क्षेत्र में अनौपचारिक रोजगार
स. असंगठित क्षेत्र में औपचारिक रोजगार
द. असंगठित क्षेत्र में अनौपचारिक रोजगार

इस प्रकार असंगठित क्षेत्र की परिभाषा में भिन्नताएं हैं। वे उद्यम जो पंजीकृत नहीं होते हैं, जिन पर कानूनी प्रावधान लागू नहीं होते हैं, निजी स्वामित्व वाले, घरेलू या साझेदारी में होते है, नियमित खाते नहीं रखते है, इस श्रेणी में आते है।

भारत में असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों एवं उद्यमों दोनों की संख्या अधिक होने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था इस क्षेत्र पर निर्भर करती है। असंगठित क्षेत्र का विश्वसनीय तरीकों द्वारा उपलब्ध हुए आंकड़ों द्वारा अध्ययन किया जाना आवश्यक महसूस किया गया। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग ने असंगठित क्षेत्र सांख्यिकी के अध्ययन हेतु प्रो. आर राधाकृष्ण की अध्यक्षता में एक कमेटी भी बनाई।

एनएसएसओ की 2011 में प्रस्तुत एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 2004-05 से 2009-10 के दौरान असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की संख्या बढ़ी है जबकि नियमित रोजगार में लगे व्यक्तियों की संख्या में कमी हुई है। कोली व सिन्हाराय द्वारा किये गये अध्ययन के आधार पर तालिका-1 में दिये गये आंकड़े सामने आए।

कौशल विकास: असंगठित क्षेत्र की महत्ती आवश्यकता

भारत अपनी युवा शक्ति की क्षमताओं का सम्पूर्ण एवं समुचित उपयोग तभी कर सकेगा यदि युवा श्रम में वांछित कौशल का विकास हो जिससे कि देश का युवा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध होने वाले अवसरों का लाभ उठा सके। एनएसएसओ के अनुसार 2004-05 के दौरान देश में 15-29 आयु वर्ग के व्यक्तियों में केवल 11.5 प्रतिशत व्यक्तियों ने ही किसी न किसी प्रकार का औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया था या कर रहे थे। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों में से मात्र 2.5 प्रतिशत व्यक्तियों ने औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया था। एनसीईयूएस ने अपनी एक रिपोर्ट में 2021-22 तक औपचारिक प्रशिक्षण

तालिका 5: विभिन्न क्षेत्रों में असंगठित श्रम की भागीदारी (वर्ष 2004-05)

क्षेत्र	प्रतिशत
कृषि एवं वानिकी	99.9
मत्स्य	98.7
खनन	64.4
उत्पादन	87.7
बिजली, गैस, पानी सप्लाई	12.4
खुदरा एवं थोक व्यापार	98.3
होटल एवं रेस्तरां	96.7
परिवहन, भण्डारण एवं संचार	82.2
शिक्षा	37.9
स्वास्थ्य एवं समाजसेवा	55.1
लोक प्रशासन एवं रक्षा	2.6

प्राप्त व्यक्तियों का प्रतिशत 2.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत करने की अनुशंसा की। भारत में असंगठित क्षेत्र विषमरूपी है जिसमें भिन्न व्यक्तियों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं में अत्यधिक विभिन्नताएं हैं। इन आवश्यकताओं का विश्लेषण कर उचित नीति निर्माण की आवश्यकता है। जिस प्रकार देश में बेरोजगारी की समस्या विकराल रूप लेती जा रही है, यदि असंगठित क्षेत्र की समस्याओं, चुनौतियों पर पूर्ण ध्यान नहीं दिया जायेगा तो आने वाले समय में यह क्षेत्र भी संतृप्त हो सकता है। इसीलिये इस क्षेत्र के योजनाबद्ध विस्तार एवं सुधार पर पूर्ण ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

पलायन एवं असंगठित क्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन का असंगठित क्षेत्र से गहरा सम्बन्ध है। शहरी क्षेत्रों में प्रवास कर रह रहे अधिकांश व्यक्ति इसी असंगठित क्षेत्र में कार्य करते हैं लेकिन भारत का अनौपचारिक क्षेत्र इतना बड़ा नहीं है कि पलायन के द्वारा नवागंतुकों के निरन्तर प्रवाह को झेल पाने में समर्थ हो सके। यदि श्रम की उपलब्धता अधिक होगी तो श्रम की कीमत में उसी अनुपात में कमी होगी। इससे व्यक्ति कम मजदूरी पर काम करने को बाध्य होंगे। एनएसएसओ 2004 की एक रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में असंगठित क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के प्रतिशत में अधिक अंतर नहीं है। ग्रामीण में कुल रोजगाररत व्यक्तियों में से 82 प्रतिशत व्यक्ति असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं जबकि शहरी क्षेत्र में यह प्रतिशत 72 है। ग्रामीण असंगठित क्षेत्र में कृषि की प्रमुखता है जबकि शहरी असंगठित क्षेत्र में गैर कृषि कार्यों की बहुलता रहती है।

तालिका 5 में वर्णित क्षेत्रों में से अधिकांश में कामगार क्षेत्रों में जहां वह विशुद्ध रूप से गांवों में निवास करते हैं वहीं बिजली, गैस आदि की आपूर्ति व व्यापारों के अंतिम पायदान पर कार्यरत कर्मी प्राय: ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन कर शहरों में पहुंचते हैं। इन क्षेत्रों के ऊपरी पायदानों पर शहरी निवासी होते हैं लेकिन निचले पायदान पर अंतर आ जाता है। इसके अतिरिक्त होटल-रेस्त्रां, आटो-रिक्सा आदि में भी कर्मशील कामगार ग्रामीण क्षेत्रों के अल्पशिक्षित लोग होते हैं और शहरों के शिक्षित। संभ्रात तबका तो ऐसे कामों को अपनाने में अपनी तौहीन समझता है। इस तरह असंगठित क्षेत्र के इस बहुत बड़े हिस्से का कारोबार पलायन के भुक्तभोगियों को आधार बनाकर संपन्न होता है।

ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन करने को मजबूर होकर रोजगार प्राप्ति हेतु शहर गये व्यक्तियों, श्रमिकों, कामगारों में ज्ञान, कौशल, प्रशिक्षण की कमी होती है। इस प्रकार असंगठित क्षेत्र उन व्यक्तियों के लिये वरदान है, जिन्हें संगठित क्षेत्र में रोजगार नहीं मिल पाता है। इस प्रकार गांवों से पलायन कर गये व्यक्तियों के लिये असंगठित क्षेत्र एक मजबूत सहारे के रूप में सामने आता है। ❑

संदर्भ:

- असंगठित क्षेत्र सांख्यिकी हेतु बनाई गई समिति की रिपोर्ट, राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग, भारत सरकार, फरवरी 2012
- रमेश कोली एवं अनिन्दिता सिन्हाराय, 'शेयर ऑफ इन्फार्मल सेक्टर एण्ड इन्फार्मल एम्प्लायमेंट इन जीडीपी एण्ड एम्प्लायमेंट'
- भारत की जनगणना 2001 व 2011 के आंकड़े

योजना का फेसबुक पृष्ठ अब हिंदी में भी

प्रिय पाठकों, योजना के फेसबुक पृष्ठ पर मिल रहे आपके स्नेह व सर्मथन के लिए हम आपका आभार प्रकट करते हैं। हमारे अंग्रेजी पृष्ठ को अब तक 60,000 से ज्यादा और हिंदी पृष्ठ को तीन महीने में 6,500 से ज्यादा लाइक्स मिल चुकी है।

फेसबुक पर हमसे मिलते रहें और लगातार हमारा उत्साह बढ़ाएं। हमारा पता है:

योजना जर्नल: (https://www.facebook.com/yojanaJournal)

योजना हिंदी: https://www.facebook.com/pages/योजना हिंदी

इस ऑनलाइन मंच के जरिए

पाठक हमारी ओर से तत्क्षण सूचनाएं और जानकारियां

पा सकते हैं तथा अपनी राय और सुझावों से अवगत भी करा सकते हैं।

सामाजिक-आर्थिक वितरण में समानता जरूरी

सत्य प्रकाश

असंगठित क्षेत्र के कारोबारियों को सरकारी बैंकों से साधारण तौर पर ऋण नहीं मिल पाता है और बाजार से पांच प्रतिशत प्रति माह की ब्याज दर से पूंजी जुटाते हैं। कुछ गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थान भी असंगठित क्षेत्र के लोगों को कीमती सामान रेहन या गिरवी रखने के बाद ऋण देते हैं। केंद्र सरकार की हाल में शुरू की गयी प्रधानमंत्री जन धन योजना असंगठित क्षेत्र के कामगारों को औपचारिक या सरकारी वित्तीय ढांचे से जोड़ने में कामयाब हो सकती है

आंकड़ों के अनुसार अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले लोग स्व रोजगार और वेतनभोगी हैं। वेतनभोगी प्रतिदिन या एक नियत अवधि के लिए अनुबंधित होते हैं। वेतनभोगी कामगारों का प्रतिशत 42 और स्वरोजगार का प्रतिशत 58 है। स्वरोजगार वाले छोटी इकाईयों में काम करते हैं जिनमें छह से कम लोग काम करते हैं। अनौपचारिक क्षेत्र में सबसे अधिक हिस्सेदारी इन्हीं की है। असंगठित क्षेत्र में औसत मजदूरी 225 रुपये प्रतिदिन है जबकि संगठित क्षेत्र में यह आंकडा 401 रुपये प्रति दिन का है।

अनौपचारिक क्षेत्र की संरचना मौजूदा सामाजिक ढांचे में निहित है। इस क्षेत्र में काम करने वाले अधिकांश लोग समाज के पिछड़े, निचले और वंचित वर्ग से संबंधित हैं। इनको सामान्य वित्त व्यवस्था के तहत लाभ नहीं मिल पाता है। एक अनुमान के अनुसार अपनी वित्त जरूरतों को पूरा करने के लिए इस क्षेत्र को केवल चार प्रतिशत पूंजी बैंकों से मिल पाती है। शेष पूंजी संबंधियों, रिश्तेदारों और सूदखोरों से जुटाई जाती है।

अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र का प्रदर्शन कार्पोरेट या संगठित क्षेत्र से बेहतर रहा है। अनौपचारिक क्षेत्र का अर्थव्यवस्था में योगदान संगठित क्षेत्र से अधिक होता है। यह क्षेत्र रोजगार के अवसर पैदा करने, विदेशी मुद्रा अर्जित करने और औद्योगिक उत्पादन में योगदान देने में संगठित क्षेत्र को काफी पीछे छोड़ देता है। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वेक्षण के वर्ष 2011-12 के सर्वेक्षण के अनुसार गैर कृषि असंगठित क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में हिस्सेदारी लगभग 50 प्रतिशत थी जबकि रोजगार के 90 प्रतिशत अवसर इसी क्षेत्र में मौजूद थे। एक अनुमान के अनुसार अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र में 46 करोड़ लोग कार्यरत हैं और इनमें से भी 24 करोड़ 20 लाख स्वरोजगार करते हैं।

अमेरिका के हार्वर्ड बिजनेस स्कूल के एक अध्ययन के मुताबिक भारत में असंगठित क्षेत्र उद्योगों का मालिकाना ढांचा भी संगठित क्षेत्र से भिन्न प्रकार का है। ग्रामीण क्षेत्र में 61 प्रतिशत और शहरों में 57 प्रतिशत अनौचारिक कार्यस्थलों का स्वामित्व अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों के हाथों में हैं। ये लोग मूल रूप से गांवों के परंपरागत पेशों से संबद्ध हैं और शहरों में आकर इन्होंने परंपरागत पेशों को नए रूप में अपना लिया है। अध्ययन में कहा गया है कि स्वतंत्रता के बाद से एससी, एसटी और ओबीसी वर्ग ने राजनीतिक रूप से मजबूती प्राप्त की है और राजनीतिक संस्थाओं में अपना प्रतिनिधित्व हासिल किया है लेकिन सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में केवल ओबीसी वर्ग ही अपना प्रतिनिधित्व बना पाया है और एससी और एससी को राजनीतिक प्रतिनिधित्व के अनुरूप अन्य क्षेत्रों में सफलता नहीं मिली है। इसी अध्ययन में कहा गया है कि भारत के असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में रोजगार की बेहद संभावनाएं हैं। इस क्षेत्र में पिछड़े और वंचितों वर्ग के लोगों को स्वरोजगार के लिए प्रेरित करके उनका सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण किया जा सकता है। यह उपाय एससी और एसटी वर्ग के लोगों को आरक्षण देने के उपाय से बेहतर साबित होगा।

बाजार का अध्ययन करने वाली संस्था क्रेडिट सुईस का मानना है कि विकास के अभाव और सरकार की पहुंच नहीं होने के

लेखक वरिष्ठ पत्रकार है। संप्रति संवाद समिति यूनीवार्ता में विशिष्ट संवाददाता है। लगभग एक दशक से ज्यादा समय से संसदीय गतिविधियों व नीतिगत विषयों पर लेखन कर रहे हैं। ईमेल: satyamni@gmail.com

तालिका 1: एससी, एसटी और अन्य वर्ग की खुदरा कारोबार और विनिर्माण उद्योग में भागीदारी*

	एससी	एसटी	अन्य
खुदरा कारोबार			
शहर	36.7	34.5	34.5
ग्रामीण	32.3	27.4	33.3
विनिर्माण उद्योग			
शहर	23.0	26.0	28.0
ग्रामीण	25.2	21.3	21.3

* प्रतिशत में

कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र का योगदान लंबे समय तक महत्वपूर्ण बना रहेगा। विशेषज्ञों का मानना है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से औपचारिक या संगठित होने में अभी कम से कम आधी सदी का समय लगेगा। इसलिए विकास का बेहतर रास्ता यह है कि वित्तीय संसाधनों तक असंगठित क्षेत्र की पहुंच को आसान बनाया जाए। फिलहाल असंगठित क्षेत्र के 90 प्रतिशत लोगों की वित्तीय प्रणाली तक पहुंच नहीं है। एक अध्ययन के अनुसार संस्थागत वित्त स्रोतों तक असंगठित के 2.6 प्रतिशत एससी और 3.6 एसटी कारोबारी ही पहुंच पाते हैं। गैर एससी और एसटी कारोबार का आंकड़ा भी 3.6 प्रतिशत तक ठहर जाता है। बैंक अपंजीकृत कारोबारियों को वित्त सहायता उपलब्ध नहीं कराते हैं जबकि असंगठित के अधिकतर कारोबारी अपंजीकृत होते हैं।

अनौपचारिक क्षेत्र में अपंजीकृत गैर एससी और एसटी कारोबारी का हिस्सा 77 प्रतिशत, एससी कारोबारी का हिस्सा 88 प्रतिशत और एसटी कारोबारी का हिस्सा 87 प्रतिशत है। असंगठित क्षेत्र के कारोबारियों को सरकारी बैंकों से साधारण तौर पर ऋण नहीं मिल पाता है और बाजार से पांच प्रतिशत प्रति माह की ब्याज दर से पूंजी जुटाते हैं। कुछ गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थान भी असंगठित क्षेत्र के लोगों को कीमती सामान रेहन या गिरवी रखने के बाद ऋण देते हैं। केंद्र सरकार की हाल में शुरू की गयी प्रधानमंत्री जन धन योजना असंगठित क्षेत्र के कामगारों को औपचारिक या सरकारी वित्तीय ढांचे से जोड़ने में कामयाब हो सकती है।

असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र की आवश्यकता और महत्ता को रेखांकित करते हुए केंद्रीय वित्त मंत्री अरुण जेटली ने वित्त वर्ष 2014-15 का आम बजट पेश करते हुए कहा कि लघु, छोटे और मध्यम एसएमई. स्तर के उद्योग धंधे देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। औद्योगिक उत्पादन और रोजगार सृजन में उनकी भागीदारी महत्वपूर्ण है। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि ज्यादातर एसएमई एसटी, एससी और ओबीसी वर्ग के लोग संचालित करते हैं। इस वर्ग को वित्त पोषण करना बेहद जरूरी है। खासतौर से समाज के निचले वर्ग को सबल बनाने की जरूरत है।

सरकार ने असंगठित क्षेत्र के कामगारों की जरूरतों को ध्यान रखते हुए कई कल्याणकारी योजना आरंभ की है। इनमें आम आदमी बीमा योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना, असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम एवं राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा निधि और सामाजिक सुरक्षा समझौते शामिल है। सामाजिक सुरक्षा समझौते विदेशी सरकारों के साथ किए गए समझौते हैं जिनमें संबद्ध देशों में काम करने वाले भारतीय कामगारों को सामाजिक सुरक्षा लाभ दिया जाता है। ये समझौते तकरीबन 15 देशों के साथ किए जा चुके हैं।

केंद्र सरकार की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए कर्मचारी भविष्य निधि संगठन ने एक उप समिति गठित करने का फैसला किया है जो अनौपचारिक क्षेत्र के कामगारों को सामाजिक सुरक्षा, चिकित्सा और अन्य लाभ देने के उपाय तलाशेगी। समिति के दायरे में कामगारों को पेंशन और ग्रैच्युटी जैसे लाभ देने के रास्ते तलाशना भी है। यह समिति असंगठित कामगारों की समस्याओं का व्यापक अध्ययन करेगी और उन्हें कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के दायरे में लाने के उपाय सुझाएगी। इनमें निर्माण क्षेत्र, चाय एवं काफी के बागान, घरेलू नौकर, रेहड़ी पटरी पर सामान बेचने वाले, फेरी लगाने वाले, स्व रोजगार करने वाले, मछुआरे, सरकारी एवं निजी क्षेत्र में दिहाड़ी या अनुबंध पर काम करने वाले लोग भी शामिल हैं। इसके अलावा सरकार ने कर्मचारी भविष्य निधि के अस्पतालों में चिकित्सा लाभ अर्जित करने की सीमा 6500 रुपये प्रति माह के वेतन से बढ़ाकर 15000 रुपये प्रति माह कर दी है। इससे तकरीबन 50 लाख और श्रमिकों को यह लाभ मिल सकेगा।

अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों में सबसे बड़ा हिस्सा दुकानदारों का है। ये गली मोहल्लों में रहकर सीमित दायरे में

1450 करोड़ रुपये का कोष और 12 साल में 12 पेंशन!

दिल्ली में दिल्ली भवन एवं अन्य श्रमिक कल्याण बोर्ड तकरीबन 1450 करोड़ रुपये बटोरने के बाद अपने 12 साल के कार्यकाल में अभी तक केवल 12 मजदूरों को पेंशन जारी कर सका है। बोर्ड का गठन दिल्ली सरकार ने सितंबर 2002 में किया और इसका उद्देश्य दिल्ली में कार्यरत निर्माण मजदूरों का पंजीकरण कर उनको श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराना निर्धारत किया गया। जून, 2014 में जारी आंकड़ों के अनुसार बोर्ड के पास 1450 करोड़ रुपये से अधिक का कोष जमा है। यह कोष श्रमिकों के अंशदान से बनता है। पिछले 12 साल में बोर्ड ने 591 श्रमिकों की मदद की है। इनमें से कार्यस्थल पर दुर्घटना में मारे गए 86 मजदूरों के परिजनों को वित्तीय सहायता के रूप में 31 लाख 60 हजार रुपये दिए गए हैं। मातृत्व लाभ केवल 58 महिला श्रमिकों को दिया जा सका। मात्र छह मजदूरों को चिकित्सा के लिए मदद दी गयी। सिर्फ 12 मजदूरों को पेंशन जारी की जा सकी और पांच मजदूरों को विवाह के लिए मदद दी गयी। शिक्षा के लिए 353 श्रमिकों को सहायता दी गयी और आवश्यक वस्तुएं खरीदने के लिए 15 श्रमिकों को पैसा दिया गया। बोर्ड ने इस अवधि में श्रमिकों के कल्याण के लिए केवल 56 लाख सात हजार रुपये व्यय किए। निर्माण मजदूर अधिकार अभियान के संयोजक थानेश्वर दयाल आदिगौड ने बताया कि दिल्ली में लगभग 10 लाख निर्माण मजदूर हैं।जिनमें से बोर्ड ने 30 जून 2014 तक केवल दो लाख 18 हजार 683 श्रमिकों का ही पंजीकरण किया है। हालांकि बोर्ड ने दिल्ली में श्रमिकों के कल्याण के लिए 18 योजनाएं बनाई हैं लेकिन इनका क्रियान्वयन नियमित तौर पर नहीं हो पा रहा है।

काम करते हैं। इन्हीं के साथ फेरी लगाने वाले, रेहड़ी पटरी वाले और अपने छोटे वाहन चलाने वाले लोग भी शामिल हैं। देशभर के छोटे-बड़े शहरों में फैली थोक मंडियों और बाजारों में काम करने वाले मजदूर और पल्लेदार भी असंगठित क्षेत्र का हिस्सा हैं। मुख्य रूप से मंडियों और बाजारों में बोझा ढोने वाले मजदूरों की गिनती छोटे दुकानदारों या एसएमई के साथ की जाती है। लेकिन इनमें एक बड़ा हिस्सा ऐसे लोगों का है जो किसी के साथ काम नहीं करते हैं बल्कि अपना अलग काम करते हैं। हालांकि ये लोग तीन से छह लोगों के समूह में काम करते हैं।

श्रमिक संघों का कहना है कि सरकार को असंगठित क्षेत्र के कामगारों के लिए समग्र नीति बनानी चाहिए और अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को स्वीकार करते हुए व्यवस्था में उचित भागीदारी देनी चाहिए। सरकार को विशेष रूप से निर्माण क्षेत्र, घरेलू नौकरों, मंडियों में काम करने वाले पल्लेदारों और रेहड़ी पटरी वालों पर ध्यान देना चाहिए। दुकानदारों और छोटे व्यापारियों के संगठन अखिल भारतीय व्यापार संघ का कहना है कि सरकार को असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले लोगों को उचित मान सम्मान देते हुए नीति निर्माण में भागीदारी देनी चाहिए और राजस्व में उनकी हिस्सेदारी को देखते हुए सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करानी चाहिए। निर्माण मजदूरों के संगठनों के संघ निर्माण मजदूर अधिकार अभियान के अनुसार पूरे निर्माण उद्योग में मजदूर पंजीयन को अनिवार्य बनाना चाहिए और श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा लाभ देने के लिए सरकार को संबंधित कंपनियों से अंशदान लेना चाहिए। नेशनल एसोसिएशन आफ स्ट्रीट वेंडर्स आफ इंडिया ने रेहड़ी पटरी और फेरी लगाने आजीविका कमाने वालों के लिए नियमित व्यवस्था करने की मांग की है।

अनौपचारिक क्षेत्र में अपंजीकृत गैर एससी और एसटी कारोबारी का हिस्सा 77 प्रतिशत, एससी कारोबारी का हिस्सा 88 प्रतिशत और एसटी कारोबारी का हिस्सा 87 प्रतिशत है। असंगठित क्षेत्र के कारोबारियों को सरकारी बैंकों से साधारण तौर पर ऋण नहीं मिल पाता है और बाजार से पांच प्रतिशत प्रति माह की ब्याज दर से पूंजी जुटाते हैं।

हालांकि संसद ने समय समय पर असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र के लिए कई कानून बनाए हैं लेकिन ये कानून असंगठित क्षेत्र की समग्रता को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि क्षेत्र विशेष की जरूरत को देखकर बने हैं। इनमें चाय बागानों के श्रमिकों, निर्माण मजदूरों और रेहड़ी पटरी पर सामान बेचने वालों के लिए अलग अलग कानून हैं। जानकारों का कहना है कि सरकार को असंगठित क्षेत्र की श्रम शक्ति का व्यापक अध्ययन कराना चाहिए और एक देशव्यापी योजना तैयार करनी चाहिए तथा श्रमिकों के लिए बने कानूनों को लागू करने की व्यवस्था करनी चाहिए। कर्मचारी भविष्य निधि संगठन इसमें केंद्रीय भूमिका निभा सकता है और असंगठित क्षेत्र के सभी कामगारों को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करा सकता है। ❑

(पृष्ठ 10 का शेषांश)

संदर्भः

● **अदनान एस 2013:** जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज 40 (1): 87-128. ● **बसिल ई 2013:** कैपिटलिस्ट डेव्लपमेंट आफॅ इंडियन इकॉनमी, रट्लिज ● **डि बर्सगोल एवं एस गौड़ा 2012:** http://siteresources.worldbank.org ● **भल्ला एस 2014:** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 15 फरवरी, वर्ष XLIX अंक 7 पृष्ठ 43.50 ● **चक्रवर्ती अंजन, अजित चौधरी एवं स्टीफन कुलेनबर्ग 2008:** कैम्ब्रिज जर्नल ऑफ इकॉनमिक्स 33(6)ए 1169-186 ● **चम्पका आर, आगामी: इंडियाज कैपिटलिज्म:** ओल्ड एंड न्यू, पालग्रेव ● **चटर्जी ई आगामी:** भारत में विद्युत नीति व भारतीय राज्य 1991-2013: डीफिल थीसिस, ऑक्स्फोर्ड विश्वविद्यालय ● **चटर्जी पी 2008:** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 43(16): 19-25 ● **छिब्बर वी 2003:** लॉक्ड इन प्लेस, प्रिंसटन विश्वविद्यालय ● **फर्नांडिज वी 2008:** डीफिल थीसिस, ऑक्स्फोर्ड विश्वविद्यालय ● **फर्नांडिज वी 2012:** अ न्यू फेमिनिस्ट फ्रेमवर्क बर्लिंगटन, वीटी एंड सरे: एश्गेट ● **गुएरिन आई,** डि स्पेलिएर एवं जी वेंकट सुब्रह्मण्याम, आगामी डेव्लपमेंट एंड चेंज ● **गुप्ता ए 1995:** अमेरिकन एथनॉलोजिस्ट 22ए 28 ● **हैरिस-व्हाइट बी 2003:** इंडिया वर्किंग, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस ● **हैरिस-व्हाइट बी 2003:** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 1 अप्रैल, पृष्ठ 1241-6 ● **हैरिस-व्हाइट बी (सं) आगामी:** फोर डिकेड्स ऑफ चेंज इन तमिलनाडु, नयी दिल्ली, स्प्रिंगर ● **हैरिस-व्हाइट बी आगामी:** इंडिया एज अ पायोनियर आफॅ इनोवेशन: कंस्ट्रेन्स एंड आपर्ट्युनिटी, पेंसिलवेनिया विवि ● **हैरिस-व्हाइट बी, वेंडी ओल्सेन, पेनी वेरा सांसो एवं वी सुरेश 2013:** इकॉनमी एंड सोसायटी, 42(3): 400-431 रट्लिज द्वारा पुनर्मुद्रित ● **हैरिस-व्हाइट बी एवं जी रोडिगो 2013:** http://www.southasia.ox.ac.uk/ ● **हैजल पी, सी पॉल्टन, एस. विगिन्नस एवं ए डोरवर्ड 2007:** विमर्श पत्र 42, वाशिंगटन, आईएफपीआरआई ● **हैंसमैन आर 2000:** ऑर्गनाइजिंग अगेंस्ट ऑड्स वीमेन इन इंडियाज इन्फॉर्मल सेक्टर, न्यूयार्क, मंथली रिव्यू प्रेस ● **जयराज ए एवं बी हैरिस 2006:** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 23 दिसंबर, वर्ष XLI अंक 51 पृष्ठ ● **जन एम ए एवं बी हैरिस-व्हाइट 2012:** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, विशेषांक 29 दिसंबर, वर्ष XLVIL अंक 52 पृष्ठ 39-52 ● **झा पी एस 2013:** संडे गार्जियन, 09 नवंबर ● **कार डी 2010:** www.gfinte-grity.org ● **कविराज एस 1988:** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, विशेषांक, नवंबर, पृष्ठ 2429-2444 ● **कुमार अरूण 1999:** द ब्लैक इकॉनमी इन इंडिया, नयी दिल्ली, पैंग्विन ● **कुमार अविनाश 2014:** क्रिमनलाइजेशन ऑफ पॉलिटिक्स: कास्ट, लैंड एंड द स्टेट इन बिहार, नयी दिल्ली, रावत प्रकाशन ● **महेन्द्र देव एस 2014:** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2 अगस्त, वर्ष XLIX अंक: 50 पृष्ठ 50-52 ● **मणि एम, जी मोदी एवं एम सुकुमार 2013:** http://www.south -asia.ox.ac.uk ● **मेनन एस 2013:** बिजनस स्टैंडर्ड, 6 अप्रैल, http://www.businesss-tandard.com ● **मोहन आर 2002:** शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस ● **नस्कर एस 1988:** द नेशनल, 31 अगस्त ●**पटनायक पी 2012:** http://www.youtube.com/watch?v=kVy39RVvV_c4 ●**योजना आयोग 2009:** अतिवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास चुनौतियों पर विशेषज्ञ समूह ● **प्रकाश ए 2014:** दलित कैपिटल: स्टेट, मार्केट एंड सिविल सोसायटी इन अर्बन इंडिया, नयी दिल्ली, रट्लिज ● **प्रकाश ए आगामी (2014):** http://www.southasia.ox.ac.uk/ ● **प्रकाश ए एंड बी हैरिस 2010:** आईएचडी ऑक्सफैम वर्किंग पेपर 8, नयी दिल्ली ● **रघुराम टी एल 2009:** इल्लिगल कोल माइनिंग इन झारखंड एंड कंट्रोल स्ट्रेटजीज, एक्सएलआरआई, जमशेदपुर ● **राजशेखर एम 2013-14:** a) http://mrajshekhar.wordpress.com/tag/aadhaar b) http://mrajshekhar.wordpress.com/tag/dbt/ c) http://mrajshekhar.wordpress.com/tag/financial-inclusion/ ● **राव सी एच एच 2009:** इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, XLIV(13): 16-21. ● **रॉय आर 1996:** आईडीएस बुलेटिन, वर्ष 27, अंक 2, पृष्ठ 22-30 ● **शंकरन के 2008:**http://wiego.org/sites/wiego ● **सान्याल के 2007:** नयी दिल्ली, रट्लिज इंडिया ● **शर्मा ए (सं) 2014:** इंडिया लेबर एंड इंप्लॉयमेंट रिपोर्ट, इंस्टिट्यूट ● फॉर ह्यूमन डेवेलपमेंट एंड एकेडमिक फाउंडेशन, नयी दिल्ली ● **सिंह एन 2014:** ओपन, 20 जनवरी, पृष्ठ 33-38 ● **सिंहा ए 2007:** नयी दिल्ली, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस ● **डि सोतो एच 2003:** द मिस्ट्री ऑफ कैपिटल, न्यूयार्क, बेसिक बुक्स ● **श्रीनिवासन के 1988:** लंदन, रट्लिज ● **श्रीनिवासन एम वी 2010:** पीएचडी थीसीस, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय ● **सुंदरेशन जे 2013:** पीएचडी थीसीस, लंदन स्कूल ऑफ इकॉनमिक्स

CAREER LAUNCHER

सिविल सेवा अभ्यर्थियों

सिविल सेवा परीक्षा 2015 की तैयारी के लिए आज ही नामांकन कराऐं।

CL हॉल ऑफ फेम

सिविल सेवा '13 की प्रारंभिक परीक्षा का कट ऑफ -241 (समान्य श्रेणी) था
आप 241 में से 180 से भी अधिक अंक GS II (CSAT) में ही प्राप्त कर सकते हैं
बहुत से CL विद्यार्थियों ने ऐसा कर दिखाया

CL पंजीकरण संख्या	विद्यार्थी का नाम	यूपीएससी अनुक्रमांक	CSAT प्राप्तांक (200 में से)	CSAT प्रतिशत	सिविल सेवा (प्रा.) 2013 के कट ऑफ (241) में CSAT के प्राप्तांक का प्रतिशत
1988094	अभिषेक आनंद	225650	194.18	97.1	80.6
2699229	राज कमल रंजन	220538	190.83	95.4	79.2
5619304	श्रुजीत वेलुमुला	044017	190	95.0	78.8
5619556	शेख रहमान	181495	190	95.0	78.8
5619239	प्रशांत जैन	322447	190	95.0	78.8
5619441	रविंदर जैन	327293	190	95.0	78.8
494563	शरत थोटा	083223	190	95.0	78.8
5293707	आशीष सांगवान	011764	188.33	94.2	78.1
5597674	रानाधीर अल्लू	136150	187.5	93.8	77.8
2387378	श्रीकांत रेड्डी	188130	187.5	93.8	77.8
5619612	गरूण सुमित सुनील	361061	187.5	93.8	77.8
2387056	प्रतीक वमसी गुर्रम	164567	187.5	93.8	77.8
5597676	मुरलीधर कोमीशेट्टी	033471	187.5	93.8	77.8
5597844	अर्पित शर्मा	103316	187.5	93.8	77.8

और भी बहुत से...

CSAT '15 के लिए CL से जुड़ें और अपनी सफलता सुनिश्चित करें

सिविल सेवा परीक्षा '13 के टॉप **10** में से **6** CL विद्यार्थी हैं

गौरव अग्रवाल — CL पंजीकरण संख्याः 3540934
रचित राज — CL पंजीकरण संख्याः 1035692
साक्षी साहनी — CL पंजीकरण संख्याः 5293711
जॉनी टी वर्गीज — CL पंजीकरण संख्याः 5293820
दिव्यांशु झा — CL पंजीकरण संख्याः 4088566
मेघा रूपम — CL पंजीकरण संख्याः 10017630

और भी बहुत से...

85 CL विद्यार्थियों ने सिविल सेवा परीक्षा 2013 में सफलता प्राप्त की

CL | Civil Services Test Prep

/CLRocks

www.careerlauncher.com/civils

नये बैचों की जानकारी हेतु अपने निकटतम् CL सिविल केंद्र से संपर्क करें

मुखर्जी नगरः 204/216, द्वितीय तल, विराट भवन/एमटीएनएल बिल्डिंग, पोस्ट ऑफिस के सामने, फोन - 41415241/46
ओल्ड राजेन्द्र नगरः 18/1, प्रथम तल, अग्रवाल स्वीट्स के सामने, फोन - 42375128/29
बेर सरायः 61बी, ओल्ड जे. एन. यू. कैम्पस के सामने, जवाहर बुक डिपो के पीछे, फोन - 26566616/17

इलाहाबादः 19 बी/49, भूतल, कमला नेहरू मार्ग, यूनिवर्सिटी स्टेडियम गेट के सामने, मनमोहन पार्क चौराहा, फोन - (0)9956130010

YH - 189/2014

विकास पथ

डिजिटल इंडिया

भारत सरकार ने डिजिटल इंडिया कार्यक्रम को स्वीकृति प्रदान कर दी है, जिसका उद्देश्य सभी ग्राम पंचायतों को ब्रॉडबैंड इंटरनेट से जोड़ना, ई-गवर्नेंस को प्रोत्साहित करना और भारत को संयोजित ज्ञान अर्थव्यवस्था में रूपांतरित करना है।

इसके प्रथम चरण को 2019 तक कार्यान्वित करना है और इसके लिए 113,000 करोड़ रुपये के अनुमानित बजट की व्यवस्था है। इसे तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर अपना ध्यान केन्द्रित करना है, ये तीन क्षेत्र हैं: सभी नागरिकों को डिजिटल पहचान, मोबाइल फोन एवं बैंक खाते, सुरक्षित एवं निरापद साइबर स्पेस द्वारा उपयोगिता के रूप में डिजिटल आधारभूत संरचना या मांग किये जाने पर वास्तविक समय में मोबाइल और ऑनलाइन अभिशासन और सेवाएं उपलब्ध कराना तथा इलेक्ट्रॉनिक एवं कैशलेस वित्तीय अंतरण एवं साइबर स्पेस में सभी तरह के प्रमाणपत्र तथा दस्तावेज़ को डालकर नागरिकों का डिजिटल सशक्तीकरण।

डिजिटल इंडिया परिकल्पना करता है कि 2.5 लाख गांव ब्रॉडबैंड एवं फ़ोन से जोड़े जायेंगे, दूर संचार में उपयोग होने वाली वस्तुओं की खपत शून्य तक आ जायेगी, 2.5 लाख स्कूल, सभी विश्वविद्यालय वाई-फ़ाई से जुड़ेंगे, सार्वजनिक वाई-फ़ाई हॉट स्पॉट नागरिकों के लिए उपलब्ध होगी और इससे प्रत्यक्ष रूप से 1.7 करोड़ लोगों को और अप्रत्यक्ष रूप से 8.5 करोड़ लोगों को रोज़गार मिलेगा। देश के 1.7 करोड़ नागरिकों को आईटी, टेलीकॉम एवं इलेक्ट्रॉनिक्स में जॉब देने के लिए प्रशिक्षण देना अन्य बिन्दुओं में शामिल है, इससे ई-शासन और ई-सेवा मुहैया कराना आसान हो जाएगा। पोस्ट ऑफ़िस को बहुसेवा केन्द्र बनाना, स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में इंटरनेट का उपयोग, ऑनलाइन चिकित्सा परामर्श सहित ऑनलाइन मेडिकल रिकॉर्ड और ऑनलाइन दवा की आपूर्ति जारी करना और रोगी सूचना के लिए अखिल भारतीय विनिमय की व्यवस्था करना भी योजनाओं में शामिल है। पायलट परियोजनाएं 2015 में शुरू होंगी और पूरे भारत में इसके कार्यान्वयन को हासिल करने का लक्ष्य 2018 तक रखा गया है। कार्यक्रम के कार्यान्वयन पर प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक पैनल द्वारा सीधे नज़र रखी जाएगी।

गणित, भाषा कौशल में सुधार

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने छात्रों के गणित और भाषा कौशल में सुधार के लिए पूरे भारत में एक नई योजना की शुरुआत की है। 'पढ़े भारत, बढ़े भारत' योजना का लक्ष्य स्कूली बच्चों के बीच जल्दी पढ़ने, लिखने और गणित कौशल की आदत को बढ़ाना है। इससे संख्यात्मक दक्षता में सुधार लाने में मदद मिलेगी और उनके तर्क करने की क्षमता का विकास होगा। योजना के भाग के रूप में हर साल 500 घंटे भाषा कौशल और 300 घंटे गणित में सुधार के लिए समर्पित किये जायेंगे। गुणवत्ता बढ़ाने वाले कार्यक्रमों के लिए 2014-15 के दौरान राज्यों और संघ शासित राज्यों को 2,352.57 करोड़ रुपये आवंटित किये गये हैं।

टीबी दवा प्रतिरोध सर्वेक्षण का शुभारंभ

सरकार ने हाल ही में टीबी दवा प्रतिरोध पर अब तक के सबसे बड़े सर्वेक्षण की शुरुआत की है। 'प्रथम राष्ट्रीय टीबी दवा प्रतिरोध सर्वेक्षण', दवा प्रतिरोधी टीबी से निपटने के लिए एक रणनीति तैयार करने के लिए अधिकारियों को सक्षम बनायेगा और नए और पहले से इलाज कराये रोगियों के बीच टीबी दवा प्रतिरोध की एक सांख्यिकीय रूप से प्रतिनिधि राष्ट्रीय अनुमान भी उपलब्ध करायेगा। यह सर्वेक्षण डब्लूएचओ और यूएसएआईडी के सहयोग से कराया जाएगा,जो 120 यूनिट और 24 राज्यों में किये गए 5214 नमूनों के साथ अब तक के सबसे बड़े सर्वे आकार वाला सर्वेक्षण होगा। जिन रोगियों का सर्वेक्षण किया जाना है उनमें पहली बार उपचार करा रहे और पुनरुपचार करा रहे दोनों तरह के रोगी शामिल होंगे। उनके प्रतिरोध स्तर 13 और रोधी टीबी दवा के विरुद्ध देखा जाएगा।

बीमारियों का बोझ कम हो, इसके लिए सरकार और देश भर के डॉक्टरों को आपस में जोड़ने की योजना है, इसके लिए एक पूलिंग संसाधनों की स्थापना का लक्ष्य है। इसके अंतर्गत सरकारी चिकित्सक और निजी प्रैक्टिस कर रहे डॉक्टर भी शामिल किये जायेंगे। स्वास्थ्य मंत्री के अनुसार, 'इस भंडारण का उपयोग सभी चिकित्सकों, आईसीएमआईर द्वारा अन्वेषण के परिणाम और अन्य संगठनों को नये चिकित्सकीय ज्ञान पर सूचनाओं के विस्तार के लिए किया जा सकता है। इससे टीबी रोगियों को फ़ायदा होगा अगर डॉक्टर उनका इलाज कर रहा है तो वह उन्हें प्रभावशाली चिकित्सा के तरीकों और नवाचार के बारे में बताता है, जिसके बारे में वो अवगत नहीं होते हैं।'

एक वर्ष में 390,000 बहु दवा प्रतिरोध (एमडीआर) के आंकड़े में भारत का हिस्सा 99,000 बहु दवा प्रतिरोध (एमडीआर) है,जो कुल संख्या का 25 प्रतिशत है। अतिसंवेदनशील टीबी की अपेक्षा इस तरह की टीबी से जुड़ी मृत्यु दर ज्यादा है। अब 'एक्स्ट्रीमली ड्रग-रेसिस्टेंट टीबी' नामक टीबी एक बड़ी चुनौती बनकर उभरी है। भारत में प्रतिवर्ष 64,000 बहु दवा प्रतिरोधक टीबी रोगियों की संख्या बढ़ती जा रही है और यह वैश्विक आंकड़े में सबसे ज्यादा है।

प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ. साधना राउत, अपर महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए इंटरनेशनल-प्रिंट-ओ-पैक लिमिटेड, बी-206, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-1, नयी दिल्ली-110020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. परिसर, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 से प्रकाशित। संपादक: जयसिंह

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2012-14
Reg.No. D.L.-05/3231/2012-14 at RMS, Delhi
23 सितम्बर 2014 को प्रकाशित • 29-30 सितम्बर 2014 को डाक द्वारा जारी

Licenced under U (DN)-55/2012-14
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

तृतीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण 2014-15

Code No. 811 **Price ₹ 135.00**

Just Released

नवीनतम आँकड़ों एवं तथ्यों का समावेश

बैंकिंग सेवाओं के लिए उपयोगी

वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर सहित

केन्द्रीय बजट, रेल बजट 2014-15 | **आर्थिक समीक्षा 2013-14**

- मौद्रिक एवं साख नीति : 2014-15
- निर्धनता पर रंगराजन समिति की रिपोर्ट- 2014
- भारत पर विदेशी कर्ज (दिसम्बर 2013)
- राष्ट्रीय आय के नवीनतम आँकड़े 2013-14
- विदेशी व्यापार : 2013-14
- विदेशी व्यापार नीति : 2013-14
- भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं
- विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं
- कृषि, उद्योग, मुद्रा-बैंकिंग, परिवहन, संचार, विदेशी व्यापार एवं ऋण, बेरोजगारी के अद्यतन आँकड़े
- भारत में संचालित रोजगारपरक एवं निर्धनता निवारण कार्यक्रम
- जनगणना 2011 के अन्तिम आँकड़े

विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिए भी उपयोगी

प्रतियोगिता दर्पण
2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा-282 002 फोन : (0562) 4053333, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
• E-mail : care@pdgroup.in • Website : www.pdgroup.in
• नई दिल्ली 23251844/66 • हैदराबाद 66753330 • पटना 2673340 • कोलकाता 25551510 • लखनऊ 4109080

YH-184/2014